व्याचक्रे येन भाषा बहुविकल्पपदा मैथिलैर्बध्यमाना,
कायस्थालेख्यरीतिः प्रचयजविकला येन संशोधिता च।
चित्रीचक्रेऽथ रीतिर्विशकलितगुणा कर्षकाणां च येन,
जी० ए० ग्रेयर्सनाख्यं गुणिगणगणितं को न जानाति विद्वान् ॥ १ ॥
प्रेयांसो यस्य विज्ञाः सरसकृतकविताः संस्कृतापूतचित्ताः,
द्रष्टव्यं यस्य ग्रन्था बुधजनरचिता भाषणीयं सुभाषा।
कर्त्तव्यं चोपकारो झटिति खलु सतामर्जनीयं सुकीर्तिः,
जी० ए० ग्रेयर्सनाख्यं गुणिगणगणितं को न जानाति विद्वान् ॥ २ ॥

भूमिका।

श्रीमान् गोलोकवासी हरिश्चन्द्र जी का जो घनिष्ठ सम्बन्ध हिंदी भाषा साथ था और है उस के कहने की मुझ को आवश्यकता नहीं, क्योंकि हिंदी रसिक मात्र एक स्वर से यही कहते आये हैं कि हिंदी के मुख्य प्रचारक श्री हरिश्चन्द्र जी हैं। पक्षपात शून्य हो कर विचार करने से भी यही सिद्ध होता है, कारण इन के पूर्व की जो हिंदी है उस में ऐसा सहज माधुर्य्य नहीं पाया जाता। जो लोग विवेकी हैं वे इसे अवश्य स्वीकार करेंगे कि श्री हरिश्चन्द्र जी ने उस चिर से नई भाषा को जो ग्रामीण स्त्री के वेष में थी, सुधार कर सुसम्पन्न नागरी कर के नागरी शब्द को सार्थ कर दिखलाया। हिंदी भाषा ने उन के समय में वह लावण्य वो माधुर्य्य धारण किया कि लोग देखते ही मुग्ध हो जाते हैं, और जिन लोगों को बाल्यावस्था से मियां जी की तख्ती लिखने का अभ्यास था वे भी इसी पर लट्टू हुए फिरते हैं, अधिक कहां तक कहूं उन्हीं ने इस की आकृति ऐसे ढांचे में खींची कि सब में हिंदी का समादर होने लगा। निस्सन्देह वह हिंदी भाषा के सौभाग्य के लिये भालसिन्दूर कहे जा सकते हैं और यही कारण है जो अच्छे लोग कहते हैं कि श्री हरिश्चन्द्र जी के ज्योतिर्लीन होने ही से हिंदी विधवा हो गई। इस से मेरा यह अभिप्राय न समझियेगा कि हिंदी के लिखने वाले रहे नहीं गये, नहीं! अब भी कई एक हिंदी के लिखने वाले महाशय ऐसे हैं कि जिन के लेख उत्तम विषयों से पूर्ण और मधुर होते हैं किन्तु उस बूंद से भेंट नहीं। आप ही लोग निष्पक्षपात हो कहिए कि इस दो वर्ष में कौन ऐसे ग्रन्थ छपे हैं कि जिन से सर्व्वमण्डली के लोगों के दांत खिल उठे हों वा पुस्तक विक्रेताओं की दूकानों पर लूट मची हो। सच तो यों है कि हिंदी भाषा की पीयूषधारा का स्रोत बंद हो गया, गम्भीर और सर्व्वोपकारी लेखों की महानिधि लुट गई, कविता निरवलम्ब, तथा कई एक रसों के विषय में मैं मुक्त कण्ठ से कह सकता हूं कि निरवयव हो गये। उस अनेक लाधारीचन्द्र की लेखचन्द्रिका को रसिक सुजन चकोरगण बड़ी प्रीति से खते और अन्तःकरण से प्रसन्न होते थे। हिंदी भाषा का ऐसा कौन सा तज्ञ होगा जो चातक की भांति उन के लेखरूपी स्वाति का प्यासा न रहा हो। जो लोग सदैव इस बात के उत्सुक रहा करते थे कि कोई विषय उन के

हस्तकमल का देख पड़ पर अब वह कमल ही नहीं रहा सुगन्धि उठे कहां से। यह नियम है कि जब जो वस्तु किसी को सुलभ होती है उस का उतना अधिक आदर नहीं होता परन्तु जब वही अप्राप्य हो जाती है तो जी ललचता रहता और पश्चात्ताप होता है, ठीक वही दशा हम लोगों की हुई। इस समय जब कोई पद अथवा लेख श्री हरिश्चन्द्र जी का लिखा हुआ आंखों के आगे पड़ जाता है तो आंखें आंसू टपकाए बिना नहीं रहतीं और इस से हम भली भांति जानते हैं कि उस मोहिनी मूर्त्ति के प्रेमियों की क्या दशा होती होगी। अतएव हम लोगों का प्रधान कर्त्तव्य यही है कि उस अनुपमेय और सर्व्वश्रेष्ठ कवि के लिखे हुए चित्रों को देख २ सदा अपने चित्त को बहलाते रहैं। उन के अनेक ग्रन्थ जिन की संख्या सैकड़ों कही जा सकती है उन के मनोविनोद के लिये क्या कम हैं, परन्तु बड़ी आपत्ति तो यह है कि उन के बनाये हुए ग्रन्थों में से कितने अधूरे, बिना छपे और बहुतेरे छप जाने पर भी अलभ्य हो गये हैं, और कोई नाम उन का पाया नहीं जाता। सम्प्रति मैंने यह संकल्प किया है कि यथाशक्य उन के रचित, सम्पादित, तथा संग्रहित ग्रन्थ और विषयों को एकत्रित कर के एक संग्रह मुद्रित करूं, सम्भव है कि उस के द्वारा लोगों का अनेक उपकार हो। मैं जहां तक सोचता हूं इस से अधिक उत्तम उन का कोई अन्य स्मारक चिन्ह नहीं हो सकता। यह वह स्मारक चिन्ह है कि जो असंख्य वा अनन्त काल को नहीं मिट सकता। क्या हुआ जो लोगों ने उन के उपकारों के पलटे में उन का कोई स्मारक चिन्ह स्थापित नहीं किया, वह स्वयं अपना ऐसा स्मारक छोड़ गये हैं कि जो उन की कीर्त्ति के उज्ज्वलित रखने के लिये बहुत हैं और ये उन के ऐसे सुपात्र, दीर्घायु और आनन्द-सन्तान हैं कि जिन से उन को स्वर्गका अक्षय सुख प्राप्त होता रहैगा, इस लिये हम लोगों को भी उन का संरक्षण सर्व्वथा विधेय है। सम्प्रति जितने सुशिक्षित देश हैं, वहां की प्रथा लोगों की यही है कि जो लोग धुरीण पण्डित, कवि अथवा विद्वान होते हैं उन के निर्म्माण किये हुए ग्रन्थों का समुदाय लोकोपचार के लिये एकत्र प्रकाशित किया जाता है। देखिए विलायत के जगत् प्रसिद्ध कवि शेक्सपीयर, गोल्डस्मिथ, मिल्टन, और स्काट् प्रभृति विद्वन्मण्डली का एक २ संग्रह सारे संसार में फैल रहा है। यद्यपि इन में से इस समय एक भी वर्त्तमान नहीं हैं, किन्तु संसार छोड़े सैकड़ों वर्ष हो गये पर उन की ख्याति सम्प्रति उस से भी अधिक

है, जो उन के जीवन काल में कदाचित् प्राप्त रही होगी। हमारे भारत-हो में यदि महामान्य कविशिरोमणि महात्मा कालिदास, श्रीहर्ष, भूति प्रभृति महाशयों के अनुपम तथा रुद्ग्रन्थ अलभ्य होते तो आज न समस्त भूमण्डल पर प्रख्यात क्यों होते। कोई संदेह नहीं कि नाम के तरस्थायी होने का इस से सुगम दूसरा उपाय नहीं है, अतः मेरी इच्छा है भारतवर्ष के अमूल्य रत्न श्री हरिश्चन्द्र जी के समस्त सुकृतियों को एकत्रित करके अपने सुजन स्वदेशियों के हाथ में सौंप कर इस बात की प्रार्थना करूं कि वे लोग उस परमोपकारी देशहितैषी महाशय की अक्षय कीर्त्ति के स्थापन करने का प्रयत्न करैं और जिस ने अपने जीवन धन को देशोपकार में समाप्त किया उस के प्रत्युपकार को एक साथ ही न भूल जांय।

श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के ग्रन्थों की संख्या इतनी अधिक है कि यदि वे सब एक साथ मुद्रित किये जांय तो लोगों को उन की ग्राहकता सुलभ नहीं हो सकती और विस्तृत भी होंगे, इस से मैंने उन को मासिक पत्रिका द्वारा क्रमशः छापने का प्रबन्ध किया है। इस से साधारण लोगों को सुभीता होगा। मैंने यह भी प्रबन्ध किया है कि एक २ विषय पृथक् २ खण्ड में प्रकाशित होता रहै, जैसे पहिले नाटक छपना आरम्भ होगा तो जब तक उन के बना हुए सब नाटक न छप लेंगे दूसरे प्रकरण में हाथ न लगाया जायगा। मेरी यह अभिलाषा निरन्तर दो वर्ष से चली आती है परन्तु कई कारण ऐसे हुए कि जिन से आज तक संयोग न हुआ। सब से भारी झमेला इस में मुद्रणस्वत्व अर्थात् कापी राइट (copy-right) का पड़ गया था और वह यह था कि भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी ने अपने सब ग्रन्थों का स्वत्व मुझ को दे दिया था परन्तु कई एक महाशयों ने अपनी चालाकी से दो एक पुस्तकें बिना मेरी अथवा बाबू साहिब की आज्ञा प्राप्त किये हुए छाप लीं। परिणाम उस का यह हुआ कि अदालत का मुंह देखना पड़ा, परन्तु धन्य है न्यायवान् ईश्वर को जिस ने अन्त में दूध का दूध और पानी का पानी कर दिखाया और पटने के जज ने १७ वीं डिसम्बर १८८६ को मेरी डिकरी दी और बीच में कूदने वाले मुंह का मुंह ले बैठ रहे। दूसरा कारण इस विलम्ब का यह भी हुआ कि श्री हरिश्चन्द्र जी के बहुतेरे अप्राप्य ग्रन्थ तथा विषयों के संग्रह करने में विशेष प्रयास करना पड़ा; इस से आशा है कि सज्जन लोग मेरे इस विलम्ब को क्षमा दृष्टि से देखेंगे।

इस लेख के समाप्त करने से पूर्व मैं उस अखिललोकनायक जग
को अनेकानेक धन्यवाद देता हूं कि जिस की सीधी चितवन से मैं पूर्ण
रथ हुआ चाहता हूं और इस शुभकार्य के आरम्भ करने का अवसर मेरे
आया। मुझे विश्वास है कि जब उस ने इतनी कृपा की है तो वह इस
निर्व्विघ्न समाप्ति पर भी ध्यान देगा।

मुझे उचित है कि इस स्थान पर मैं अपने उन शुभचिन्तक तथा स
सहायकों की कृतज्ञता भी शुद्धान्तःकरण से स्वीकृत करूं कि जिन से मुझ
को इस विषय में अनेक सहायता प्राप्त हुई है। ऐसा न करने से कृतघ्न
सिर चढ़ैगी, इस लिये निम्न लिखित महाशयों को मैं अपनी अन्तरात्मा
धन्यवाद देता हूं:—

श्री ५ महाराजाधिराजकुमार श्री लाल खड्गबहादुर मल्ल जी को, जि
से हम को सदा विविध साहाय्य मिला और मिलता रहता है।

गोरखपुर के प्रधान रईस और आनरेरी मजिस्ट्रेट दर्जः १ आनरेबुल रा
दुर्गा प्रसाद साहिब बहादुर को जिन्हों ने श्री हरिश्चन्द्र जी के वसीयतनामे
द्वारा मुझ को अधिक साहाय्य दिया।

काशीवासी सज्जन शिरोमणि पं० व्यास रामशङ्कर शर्म्मा को, क
इन्हीं के विशेष प्रयत्न से मुद्रणस्वत्व और भारतभूषण श्री हरिश्चन्द्र जी
विविध पुस्तकें तथा जीवनचरित्रादि प्राप्त हुए और होने की आशा है।

हमारे दो सुयोग्य कृपालु योरोपियन महाशय भी धन्यवादार्ह हैं, उ
में से एक गया प्रान्त के मजिस्ट्रेट मि० जी० ए० ग्रियर्सन साहिब बहादुर
एम० आर० ए० एस्० और दूसरे बिहार प्रदेश के शिक्षाविभाग के इंस्पे
मि० जानवान सोमरन पोप साहिब बहादुर हैं।

श्री युत जी० ए० ग्रियर्सन साहिब का हिन्दी भाषा का अनुराग सराह-
नीय और प्रसिद्ध है। यह इन्हीं का प्रसाद है जो आज श्री हरिश्चन्द्रकला
प्रकाशित की गई। इन को अभीष्ट है कि जहां तक हिन्दी भाषा के अ
ग्रन्थ मिल सकें उन का उत्तम रीति से प्रचार किया जाय।

मिस्टर जानवान सोमरन पोप साहिब को भी असंख्य धन्यवाद है कि
ने अनुग्रह पूर्वक बिहार प्रदेश के मिडिल स्कूलों में श्री हरिश्चन्द्रकला की ए
प्रति के खरीदे जाने की आज्ञा प्रचलित कर दी है, जिस से मेरा उत्साह
गुणित और कला के निर्विघ्न प्रकाशित होने की पूरी आशा होती है:

ग्रन्थसूची ।

जगत उजागर औ नागर त्यौं नागरी को गयो कविराज सुनि कठिन हियो करो ।
भारत को प्रेमी अरु नेमी हू बिलोकि ताहि ताके जस पुंजन को गानहू कियो करो ॥
ताकी कवितान को वितान एक माहि गांथि कीनो है प्रकास या पै नजर दियो करो ।
चहकि चहूंदिसि तें रसिक चकोरगन हरिचन्दकला के पियूष कों पियो करो ॥

बुध को हिय बारिधि सो उमंगे हुलसै अति प्रीतिहु की कमला ।
अति कूरन की कलुषी कविताहु चली मति ज्यों कुलटा अबला ॥
चुप ठानो सबै तिमि चोर चलांकहु नाहि करैं किहुं को जो भला ।
रस साने अमन्द अनन्द करो या नई उनई हरिचन्द कला ॥

...स विविध भाव द्वारा [illegible]

[illegible]न्तु हंसाते जायंगे ॥ (उदाहरण नहीं) ॥

[illegible] आदि की प्रतिच्छाया

प्रतिकृति कहते हैं । इसी का नामान्तर अन्त:पटी वा चित्रपट

हास

---

(१) आशी:-नाटक में जो आशिर्वाद कहा जाय । यथा शाकुन्तल में 'ययातेरेव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुसताभव' ।

(२) 'प्रकरी नायकस्य स्यान्नाटकीय फलान्तरम्' ।

(३) 'गुणाख्यानं विलोभनं' यथा वेणीसंहार में 'नाथ किं दुष्करं तुए परिकुपिते' ।

(४) 'सम्फेटो रोष भाषणम्' यथा वेणीसंहार में 'राजा-अरे मरुत्तनय ! [illegible]र पुरतो निन्दितमप्यात्मकर्म श्लाघयसि' ।

(५) संधि यथा—'मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहृतिः । इति पंचास्य [illegible]

समर्पण।

हे मायाजवनिकाच्छन्न! जगत नाटक सूत्रधार! सर्वांगरंग नायक! नट नागर!

जिसने इस इतने बड़े संसार नाटक को रच कर खड़ा किया है जगदन्त: पाती वस्तु मात्र उसी को समर्पणीय हैं विशेष कर नाटक सम्बन्धी और वह भी उसी के एक अभिमानी जन की।

नाथ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्य जीवन का अन्तिम अंक हो चुकता किन्तु न जाने क्या सोच कर और किस पर अनुग्रह कर के उस की आज्ञा नहीं हुई। नहीं तो यह ग्रन्थ प्रकाश भी न होने पाता। यह भी आप ही का खेल है कि आज इस के प्रकाश का दिन आया। जब प्रकाश होता है तो [illegible]

नाटक।

अथवा

दृश्य काव्य।

नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। नट कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपना वा किसी वस्तु के स्वरूप का फेर देना। वा स्वयं दृष्टि रोचन के अर्थ फिरना। नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्त्तन करके राजादिक का स्वरूप धारण करते हैं वा वेशविन्यास के पश्चात् रंगभूमि में स्वकीय कार्य साधन के हेतु फिरते हैं। काव्य दो प्रकार के हैं दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है जो कवि की वाणी को उस के हृदयंगत आशय और हावभाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे। जैसा कालिदास ने शकुन्तला में भ्रमर के आने पर शकुन्तला का सूधी चितवन से कटाक्षों का फेरना जो लिखा है उस को प्रथम चित्रपटी द्वारा उस स्थान का, शकुन्तला वेश सज्जित स्त्री द्वारा उसके रूप यौवन और वनोचित शृंगार का, उस के नेत्र सिर हस्त चालनादि द्वारा उसके अंगभंगी और हावभाव का, तथा कवि कथित वाणी को उसी के मुख से कथन द्वारा काव्य का, दर्शकों के चित्त पर खचित कर देना जो दृश्यकाव्यत्व है। यदि श्रव्य काव्य द्वा[illegible]

भाण की भांति एक अंक में। इस में दो पुरुष आकार बात कर सकते हैं और अपनी वार्त्ता में विविध भाव द्वारा किसी का प्रेम वर्णन करेंगे किन्तु हंसाते जायंगे॥ (उदाहरण नहीं)॥

[illegible] उपवन आदि की प्रतिच्छाया

द्वारा [illegible] प्रतिकृति कहते हैं। इसी का नामान्तर अन्तःपटी वा चित्रपट

(१) आशी: नाटक में जो आशिर्वाद कहा जाय। यथा शाकुन्तल में 'ययातिव शर्मिष्टा पत्युर्बहुमताभव'।

(२) 'प्रकरी नायकस्य स्यान्नाटकीय फलान्तरम्'।

(३) 'गुणाख्यानं विलोभनं' यथा वेणीसंहार में 'नाथ किं दुष्करं तुए परिकु[illegible]ने'।

[illegible] 'सम्फेटो रोष भाषणम्' यथा वेणीसंहार में 'राजा-अरे मरुत्तनय! [illegible] पुरतो निन्दितमप्यात्मकर्म श्लाघयसि'।

[illegible] संधि यथा—'मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहृतिः। इति पंचास्य[illegible]

नाटकत्व नहीं शेष रहा है यथा भांड़, इन्द्रसभा, रास, यात्रा, लीला और झांकी आदि। पारसियों के नाटक महाराष्ट्रों के खेल आदि यद्यपि काव्य मिश्र हैं तथापि काव्यहीन होने के कारण वे भी भ्रष्ट ही समझे जाते हैं। काव्यमिश्र नाटकों को दो श्रेणी में विभक्त करना उचित है। प्राचीन और नवीन—

अथ प्राचीन।

प्राचीन समय में अभिनय नाट्य, नृत्य, नृत्त, तांडव और लास्य इन पांच भेद में बटा हुआ था। इन में नृत्य भाव सहित नाचने को, नृत्त केवल नाचने को और तांडव और लास्य भी एक प्रकार के नाचने ही को कहते हैं। इस से केवल नाट्य में नाटक आदि का समावेश होगा; शेष चारो नाचने वालों पर छोड़ दिए जायंगे। नाट्य रूपक और उपरूपक में दो भेदों से बटा है। रूपक के दश भेद हैं। यथा,—

१ नाटक

काव्य के सर्वगुण संयुक्त खेल को नाटक कहते हैं। इसका नायक वा कोई महाराज (जैसा दुष्यन्त) वा ईश्वरांश (जैसा श्रीराम) वा प्रत्यक्ष परमेश्वर (जैसी श्री कृष्ण) होना चाहिए। रस शृङ्गार वा वीर। अंक पांच के ऊपर और दस के भीतर। आख्यान मनोहर और अत्यन्त उज्ज्वल होना चाहिए। उदाहरण शाकुन्तल वेणीसंहार आदि॥

२ प्रकरण

है। नायक कोई अवतार * वा वीर होना चाहिए। अन्य नाटक की अपेक्षा छोटा। 'उदाहरण धनंजय विजय॥'

५ समवकार

यह तीन अंक में हो। इस में १२ तक नायक हो सकते हैं। कथा दैवी हो। छन्द वैदिक हों। युद्ध आश्चर्य माया इत्यादि इस में दिखलाई जाती हैं। उदाहरण भाषा में नहीं है॥

६ डिम

यह भी वैसा ही किन्तु इस में उपद्रव दर्शन विशेष होता है। अंक चार नायक देवता वा दैत्य वा अवतार। (उदाहरण नहीं)॥

७ ईहामृग

चार अंक, नायक ईश्वर वा अवतार। नायिका देवी। प्रेम इत्यादि वर्णित होता है। नायिका द्वारा युद्धादि कार्य सम्पादन होता है। (उदाहरण नहीं)॥

८ अंक

एक ही अंक में खेल दिखलाना। नायक गुणी और आख्यान प्रसिद्ध हो। (उदाहरण नहीं)॥

९ वीथी

भाण की भांति एक अंक में। इस में दो पुरुष आकार बात कर सकते हैं और अपनी वार्त्ता में विविध भाव द्वारा किसी का प्रेम वर्णन करैंगे किन्तु हंसाते जायंगे॥ (उदाहरण नहीं)॥

... ७पमन आदि की प्रतिच्छाया

हास प्रतिच्छाति कहते हैं। इसी का नामान्तर अन्तःपटी वा चित्रपट

---

(१) आशीः नाटक में जो आशिर्वाद कहा जाय। यथा शाकुन्तल में 'ययारिव शर्मिष्ठा पत्युर्वहुमताभव'।

(२) 'प्रकरी नायकस्य स्यान्नाटकीय फलान्तरम्'।

(३) 'गुणाख्यानं विलोभनं' यथा वेणीसंहार में 'नाथ किं दुष्करं तुए परिकु... ने'।

... 'सम्फेटो रोष भाषणम्' यथा वेणीसंहार में 'राजा-अरे मरुत्तनय! ...र पुरतो निन्दितमप्यात्मकर्म श्लाघयसि'।

... संधि यथा—'सुखं प्रतिसुखं गर्भो विमर्ष उपसंहतिः। इति पंचास्य

इस में एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते। उदाहरण। हास्यार्णव, वैदिकी हिंसा, अन्धेर नगरी।

महानाटक

नाटक के लक्षणों से पूर्ण ग्रन्थ यदि दश अंकों में पूर्ण हो तो उस को महानाटक कहते हैं।

अथ उपरूपक

उपरूपक के अठारह भेद हैं। यथा नाटिका, त्रोटक, गोष्टी, सट्टक, नाट्य-रासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित (श्रीरा-सिका), शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका।

नाटिका

नाटिका में चार अंक होते हैं और स्त्री पात्र अधिक होते हैं तथा नाटि-का की नायिका कनिष्ठा होती है अर्थात् नाटिका के नायक की पूर्व प्रण-यिनी के वश में रहती है। उदाहरण रत्नावली, चन्द्रावली इत्यादि।

त्रोटक

इस में सात आठ नौ या पांच अंक होते हैं। और प्रति अंक में विदूषक होता है। नायक दिव्य मनुष्य होता है। उदाहरण विक्रमोर्वशी।

गोष्टी

नौ या दस साधारण मनुष्य और पांच छ स्त्री जिस में हों और कैशिकी वृत्ति तथा एक ही अंक हो। (उदाहरण नहीं)।

सट्टक

कार नाट्य के दो भेद और माने हैं यथा नाटिका और तोटक। मल्लिका मारुत प्रकरणकार दंडी कवि रूपकमात्र को मिश्रकाव्य नाम से व्यवहृत करते हैं।

अथ नवीन भेद

आज कल योरप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और बंग देश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं वह सब नवीन भेद में परिगणित हैं। प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारम्बार दृश्यों के बदलने में है और इसी हेतु एक एक अंक में अनेक अनेक गर्भांकों की कल्पना की जाती है क्योंकि इस समय में नाटक के खेलों के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है। इन अंक और गर्भांकों की कल्पना यों होनी चाहिए, यथा पांच वर्ष के आख्यान का एक नाटक है तो उस में वर्ष वर्ष के इतिहास के एक एक अंक और उस अंक के अंतःपाती विशेष २ समयों के वर्णन का एक एक गर्भांक। अथवा पांच मुख्य घटना विशिष्ट कोई नाटक है तो प्रत्येक घटना के सम्पूर्ण वर्णन का एक एक अंक और भिन्न भिन्न स्थानों में विशेष घटनांतःपाती छोटी छोटी घटनाओं के वर्णन में एक एक गर्भांक। ये नवीन नाटक मुख्य दो भेदों में बटे हैं—एक नाटक, दूसरा गीति रूपक। जिन में कथा भाग विशेष और गीति न्यून हों वह नाटक और जिस में गीति विशेष हों वह गीतिरूपक। यह दोनों कथाओं के स्वभाव से अनेक प्रकार के हो जाते हैं किन्तु उन के मुख्य भेद इतने किये जा सकते हैं यथा—१ संयोगांत—अर्थात

भांति जिस [illegible] , वन वा उपवन आदि की प्रतिच्छाया [illegible] प्रतिद्वाति कहते हैं। इसी का नामान्तर अन्तःपटी वा चित्रपट अंत [illegible]

---

(१) आशीः नाटक में जो आशिर्वाद कहा जाय। यथा शाकुन्तल में 'ययातेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमताभव'।

(२) 'प्रकरी नायकस्य स्यान्नाटकीय फलान्तरम्'।

(३) 'गुणाख्यानं विलोभनं' यथा वेणीसंहार में 'नाथ किं दुष्करं तुए परिकुं[illegible]रे'।

[illegible] 'सम्फेटो रोष भाषणम्' यथा वेणीसंहार में 'राजा-अरे मरुत्तनय ! [illegible]र पुरतो निन्दितमप्यात्मकर्म श्लाघयसि'।

[illegible] संधि यथा—'मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहृतिः। इति पंचास्य

विवाह सम्बंधी कुरीति निवारण, अथवा धर्म संबन्धी अन्यान्य विषयों में संशोधन इत्यादि। किसी प्राचीन कथा भाग का इस बुद्धि से संगठन कि देश की उससे कुछ उन्नति हो इसी प्रकार के अंतर्गत है। [इसके उदाहरण सावित्री चरित्र, दुःखिनीबाला, बाल्यविवाहविदूषक, जैना- कामवैसाहीपरिणाम, जयनारसिंह की चक्षुदान इत्यादि] देश वत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़नेवाले वा देखनेवालों के हृदय में स्वदे- शानुराग उत्पन्न करना है और ये प्रायः करुणा और वीररस के होते हैं। [उदाहरण भारत जननी, नीलदेवी, भारत दुर्दशा इत्यादि]। इन पांच उद्देशों को छोड़ कर वीरसख्य इत्यादि अन्य रसों में भी नाटक बनते हैं।

अथ नाटक रचना।

प्राचीन समय में संस्कृत भाषा में महाभारत आदि का कोई प्रख्यात वृत्तान्त अथवा कवि प्रौढ़ोक्ति सम्भूत, किम्बा लोकाचार संघटित, कोई कल्पित आख्यायिका अवलम्बन करके, नाटक, प्रभृति दशविध रूपक और नाटिका प्रभृति अष्टादश प्रकार उपरूपक लिपि बद्ध होकर, सहृदय सभास- द लोगों के तात्कालिक रुचि अनुसार से, उक्त नाटक नाटिका प्रभृति दृश्य- काव्य किसी राजा के अथवा राजकीय उच्चपदाभिषिक्त लोगों की नाट्यशा- ला में अभिनीत होते थे।

पुराकाल के अभिनयादि के सम्बन्ध में तात्कालिक कवि लोगों की और दर्शक मण्डली की जिस प्रकार रुचि थी वे लोग तदनुसार ही नाटकादि [illegible] लोगों का चित्त विनोदन कर गये हैं [illegible] रुचि [illegible]त

आधुनिक समाजिक लोगों की मतपोषिका होंगी वह सब अवश्य ग्रहणहोंगी। नाव्य कला कौशल दिखलाने को देश काल और पात्रगण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी उचित है। पूर्वकाल में लोकातीत असम्भव कार्य की अवतारना सभ्यगण को जैसी हृदय हारिणी होती थी वर्तमान काल में नहीं होती।

अब नाटकादि दृश्यकाव्य में अस्वाभाविक सामग्री परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य मण्डलीको नितांत अरुचिकर है, इस लिये स्वाभाविकी रचना ही इस काल के सभ्यगण को हृदय ग्राहिणी है, इससे अब अलौकिक विषय का आश्रय कर के नाटकादि दृश्य काव्य प्रणयन करना उचित नहीं है। अब नाटक में कहीं आशीः (१) प्रभृति नाव्यालंकार, कहीं 'प्रकरी,' (२) कहीं 'विलोभन,' (३) कहीं सम्फेट,' (४) कहीं 'पंच सन्धि,' (५) वा ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं बाकी रही। संस्कृत नाटक की भांति हिन्दी नाटक में इन का अनुसन्धान करना, वा किसी नाटकांग में इन को यत्नपूर्वक रख कर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रख कर आधुनिक नाटकादि की शोभा सम्पादन करने से उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है। संस्कृत नाटकादि रचना के निमित्त महामुनि भरत जी जो सब नियम लिख गये हैं उन में जो हिन्दी नाटक रचना के नितांत उपयोगी हैं और इस काल के सहृदय सामाजिक लोगों की रुचि के अनुयायी हैं वे ही नियम यहां प्रकाशित होते हैं।

अथ प्रतिकृति (Scenes)

किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, बन वा उपवन आदि की प्रतिच्छाया दिखलाने को प्रतिकृति कहते हैं। इसी का नामान्तर अन्तःपटी वा चित्रपट

---

(१) आशीः नाटक में जो आशिर्वाद कहा जाय। यथा शाकुन्तल में 'ययातेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमताभव'।

(२) 'प्रकरी नायकस्य स्यान्नाटकीय फलान्तरम्'।

(३) 'गुणाख्यानं विलोभनं' यथा वेणीसंहार में 'नाथ किं दुष्करं तुए परिकुने'।

[illegible] 'सम्फेटो रोष भाषणम्' यथा वेणीसंहार में 'राजा-अरे मरुत्तनय! [illegible] पुरतो निन्दितमप्यात्मकर्म श्लाघयसि'।

[illegible] संधि यथा—'मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहृतिः। इति पंचास्य [illegible]

वा दृश्य वा स्थान है (६)। यद्यपि महामुनि भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र में, चित्र पट द्वारा प्रासाद, वन उपवन किम्वा शैल प्रभृति की प्रतिच्छाया दिखाने का कोई नियम स्पष्ट नहीं लिखा है, किन्तु अनुधावन करने से बोध होता है कि तत्काल में भी अन्तःपटी परिवर्त्तन द्वारा, वन उपवन वा पर्वतादि की प्रतिच्छाया अवश्य दिखलाई जाती थी। ऐसा न होता तो पौर जानपदमार्ग के अपवादभय से श्रीराम कृत सीता परिहार के समय में उसी रंगस्थल में एक ही बार अयोध्या का राजप्रासाद और फिर उसी समय वाल्मीकि का तपोवन कैसे दिखलाई पड़ता, इस से निश्चय होता है कि प्रतिकृति के परिवर्त्तन द्वारा पूर्वकाल में यह सब अवश्य दिखलाया जाता था। ऐसे ही अभिज्ञान शाकुंतल नाटक के अभिनय करने के समय सूत्रधार एक ही स्थान में रह कर परदा बदले बिना कैसे कभी तपोवन और कभी दुष्यन्त का राज प्रासाद दिखला सकैगा (७)। यही सब बात प्रमाण हैं कि उस काल में भी चित्रपट अवश्य होते थे। ये चित्रपट नाटक में अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु हैं और इन के बिना खेल अत्यन्त नीरस होता है॥

(८) जवनिका वा बाह्यपटी (Drop Scene)

कार्य अनुरोध से समस्त रंगस्थल को आवरण करने के लिए नाट्यशाला

---

(६) वर्त्तमान समय में जहां जहां ये दृश्य बदलते हैं उसी को गर्भांक कहते हैं।

(७) मुद्राराक्षस में भी कई उदाहरण इस के प्रत्यक्ष मिलते हैं। मलयकेतु राक्षस से मिलने जाता है यह कह कर उसी अंक में कहते हैं कि आसन पर बैठा राक्षस दिखलाई पड़ा। स्मशान से चन्दनदास को ले कर चांडाल कुछ बढ़ कर पुकारता है कि भीतर कौन है अमात्य चाणक्य से कहो इत्यादि। अर्थात् पूर्व के दोनों दृश्य बदल कर राक्षस के और चाणक्य के घर के दृश्य दिखलाई पड़े। यह न हो तब तो नाटक निरे व्यर्थ हो जाते हैं जैसा रास में महाराष्ट्रों के नाटक में शतरंजी और मशालची को दिखला कर नायिका नायक कहते हैं कि अहा देखो! यह फुलवारी वा नदी कैसी सुन्दर है, से जहां पात्र जैसे स्थान का अपने वाक्य में वर्णन करें वा जिस स्थान वह कथा हो उस का चित्र पीछे पड़ा रहना बहुत ही आवश्यक है

(८) इस परदे पर कोई सुन्दर मनोहर नदी पर्वत नगर इत्या वा किसी प्रसिद्ध नाटक के किसी अंक का चित्र दिखलाना अच्छ

के सम्मुख जो चित्र प्रक्षिप्त रहता है उसका नाम जवनिका वा वाह्यपटी है। जब रंगशाला में चित्रपट परिवर्तन का प्रयोजन होता है इस समय यह जवनिका गिरा दी जाती है। संस्कृत नाटकों में जवनिकापतन का नियम देखने से और भी प्रतीत होता है कि अन्तःपटी परिवर्तन द्वारा गिरि नदी आदि की प्रतिच्छाया उस काल में भी अवश्य दिखलाई जाती थी॥

"ततः प्रविशन्त्यपटीक्षेपेनाप्सरसः"

अर्थात् फेर जवनिका विना गिराए ही उर्व्वशी विरहातुर अप्सरा गण ने रंगस्थल में प्रवेश किया इत्यादि दृष्टान्त ही इस के प्रमाण हैं।

अथ परस्तावना।

नाटक की कथा आरंभ होने के पूर्व नटी विदूषक किम्वा पारिपार्श्वक सूत्रधार से मिलकर प्रकृत प्रस्ताव विषयक जो कथोपकथन करैं, नाटक के इतिवृत्त सूचक उस प्रस्ताव को प्रस्तावना कहते हैं। नाटक की नियमावली में मुनिवर भरताचार्य ने पांच प्रकार की प्रस्तावना लिखी हैं। वह पांचों प्रणाली अति आश्चर्य भरित और सुन्दर हैं। उसमें से चार हिन्दी नाटक में भी व्यवहार की जा सकती हैं। सूत्रधार के पार्श्वचर बन्धु को पारिपार्श्वक कहते हैं। पारिपार्श्वक की अपेक्षा नट कुछ न्यून होता है। अब पूर्व लिखित पांच प्रकार की प्रस्तावना लिखते हैं।

यथा १ उद्घातक, २ कथोद्घात, ३ प्रयोगातिशय, ४ पारिवर्त्तक, और ५ अवगलित।

अथ उद्घातक।

सूत्रधार प्रभृति की बात सुनकर अन्य प्रकार अर्थ प्रतिपादनपूर्व्वक जहां पात्र प्रवेश होता है उसे उद्घातक प्रस्तावना कहते हैं।

उदाहरण। मुद्राराक्षस।

सूत्र०। प्यारी मैंने जोतिःशास्त्र के चौसठों अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो रसोई तो होने दो। पर आज गहन है यह तो किसी ने तुम्हें धोखाई दिया है। क्योंकि।

चन्द्रबिम्बपूरन भए, क्रूर केतु हठ दाप।

बल सों करि है ग्रास कह—

(नेपथ्य में)

मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रास कर सकता है?

जेहि बुध रच्छत आप।

यहां सूत्रधार ने तो ग्रहण का विषय कहा था किन्तु चाणक्य ने चन्द्र शब्द का अर्थ चन्द्रगुप्त प्रगट कर के प्रवेश करना चाहा इसी से उद्घातक प्रस्तावना हुई।

अथ कथोद्घात।

जहां सूत्रधार की बात सुन कर उस के साथ वाक्य के अर्थ का सम्मिग्रहण कर के पात्र प्रविष्ट होते हैं उसे कथोद्घात कहते हैं।

यथा रत्नावली में सूत्रधार के इस कहने पर कि ईश्वरेच्छा से द्वीपान्तर किम्बा समुद्र के मध्य की वस्तु भी सहज में मिल जाती है, यौगंधरायन का आना।

यहां सूत्रधार के वाक्य का मर्म यह था कि जिस नाटक में द्वीपान्तर की नायिका आती है खेला जायगा इसी को समझ कर अन्य नट मन्त्री बन कर आया।

अथ प्रयोगातिशय।

एक प्रयोग करते करते घुणाक्षरन्याय से दूसरे ही प्रकार का प्रयोग कौशल में प्रयुक्त और उसी प्रयोग का आश्रय कर के पात्र प्रवेश करें तो उस को प्रयोगातिशय प्रस्तावना कहते हैं।

जैसे कुन्दबाला नामक नाटक में सूत्रधार ने नृत्य प्रयोग के निमित्त अपनी भार्या को आह्वान करने के प्रयोग विशेषद्वारा सीता और लक्ष्मण का प्रवेश सूचित किया। इस प्रकार से नाटक की प्रस्तावना शेष होने पर पात्र प्रवेश और नाटकीय इतिवृत्त की सूचना होगी।

अथ चर्चरिका।

जब जब एक एक विषय समाप्त होगा जवनिका पात कर के पात्रगण अन्य विषय दिखलाने को प्रस्तुत होंगे तब पटीक्षेप के साथ ही नेपथ्य में चर्चरिका आवश्यक है, क्योंकि बिना उस के अभिनय शुष्क हो जाता है। जहां बहुत स्वर मिल कर कोई बाजा बजे या गान हो उस को चर्चरिका कहते हैं। इस में नाटक की कथा के अनुरूप गीतों का वा रागों का बजना योग्य है। जैसे सत्य हरिश्चन्द्र में प्रथम अंक की समाप्ति में जो चर्चरिका वह भैरवी आदि सवेरे के राग की और तीसरे अंक की समाप्ति पर जो वह रात के राग की होनी चाहिए।

कैशिकी, सात्वती, आरभटी, और भारतीवृत्ति।

अथ कैशिकीवृत्ति।

जो वृत्ति अति मनोहर स्त्री जनोचित भूषण से भूषित, और रमनी बाहुल्य नृत्य (८) गीतादि परिपूर्ण और भोगादि विविध विलास युक्त होती है उस का नाम कैशिकीवृत्ति है। यह वृत्ति शृङ्गार रस प्रधान नाटकों की उपयोगनी है।

---

(८) हिन्दुस्तान से नृत्यविद्या उठ गई, यह विद्या आगे इस देश में ऐसी प्रचलित थी कि सब अच्छे लोग इसको सीखते थे, इस्के शास्त्र अब तक कहीं कहीं लब्ध होते हैं और उनसे इस विद्या का महत्व प्रत्यक्ष प्रगट होता है, संगीत शास्त्र का यह एक अंग है, वाद्य नृत्य और गाना यह तीनों वस्तु जिसमें हो उस्को संगीत संज्ञा है। इस काल में हिन्दुस्तान में सङ्गीत शास्त्र जाननेवालों का कुछ आदर नहीं और लोग इस विद्या से लज्जा करते हैं परन्तु यही इस देश के दुर्द्दिन का उदाहरण है, अब भी भारतवर्ष के जिस प्रदेश में यह विद्या बच गई है वहां बहुत अच्छी है जैसा कि १८७१ ई० में श्री महाराज व्यङ्कटगिरि के संग एक नर्त्तकी शारदा नामकी आई थी। निस्सन्देह वह इस विद्या में बहुत प्रवीण थी नृत्त और नृत्य दोनों में अपूर्व्व काम करती थी, इस देश की नर्त्तकी तो केवल सुखावलोकन ही के योग्य होती हैं गुण तो उनके पास से भी नहीं निकलता परन्तु वह "यथानामस्तथागुणाः" को सत्य करती थी। नृत्त और नृत्य में यह भेद है कि "भवेद्भावाश्रयोन्ततः नृत्यस्तालसयाश्रयः" जिस्में भाव मुख्य वह नृत्त और जिस्में लय मुख्य वह नृत्य कहलाता है भाव नेत्र भौंह मुख और हाथ और स्वर से भी प्रगट होते हैं लय भी हाथ पैर गले और भौंह से रहती है। नृत्त के शास्त्रों में १०८ भेद लिखे हैं और लागडांट उड़प तिरप हस्तक भेद इत्यादि इसके अंग हैं, जिस्में केवल घुंघरू बजाने के ७ मुख्य भेद हैं लास्य और ताण्डव इसके दो मुख्य अंग हैं और यह नृत्त एक से लेकर बहुत से मनुष्यों से भी होता है, पुरुष और स्त्री दोनों इस के अधिकारी हैं परन्तु नृत्त भेद से किसी में केवल पुरुष किसी में केवल स्त्री और किसी में दोनों होते हैं, हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि यह विद्या सम्बन्धी सङ्गीत शास्त्र हम लोगों में फैले और यह प्रचलित मूर्खतामय लज्जा का कारण विषयरूपी सङ्गीत हमारे शत्रुओं को मिले।

अथ सात्वतीवृत्ति ।

जिस वृत्ति द्वारा शौर्य्य, दान ; दया और दाक्षिण्य प्रभृति से विरोचिता विविध गुनान्विता, आनन्द विशेषोद्भाविनी, सामान्य विलास युक्ता, विशोका और उत्साह वर्द्धिनी वाग्भंगी नायक कर्त्तृक प्रयुक्त होती है उस का नाम सात्वतीवृत्ति है । वीररस प्रधान नाटक में इस की आवश्यकता होती है ॥

अथ आरभटी ।

माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात ; प्रतिघात और बन्धनादि विविध रौद्रोचित कार्य्य जड़ित वृत्ति का नाम आरभटी है । रौद्ररस वर्णन के स्थल में इस वृत्ति पर दृष्टि रखनी चाहिए

अथ भारती ।

साधु भाषा बाहुल्य वृत्ति का नाम भारती वृत्ति है । वीभत्सरस वर्णन स्थल में यह व्यवहृत होती है । नाटककर्त्ता ग्रन्थ गुम्फन करने के समय यदि आद्यरस प्रधान नाटक लिखने की इच्छा करेंगे, तो उन को कैशिकीवृत्ति ही में समस्त वर्णन करना योग्य है । आद्यरस वर्णन करने के समय ताल ठोकना, मुद्गर घुमाना वा असिक्षेप प्रभृति विरोचितविषयक कोई भी वर्णन नहीं करना चाहिए । सात्वती प्रभृति वृत्तियों के पक्ष में भी ठीक यही चाल है ।

अथ उपक्षेप ।

अभिनय कार्य के प्रथम संक्षेप में समस्त नाटकीय विवरण कथन का नाम उपक्षेप है ।

पूर्वकाल में मुद्रायंत्र (१०) की सृष्टि नहीं हुई थी इस हेतु, रंगस्थल में नट नटी

---

(१०) यद्यपि छापे की विद्या बहुत दिनों से भारतवर्ष में प्रचलित है इस में कुछ सन्देह नहीं, किन्तु आजकल जैसी इसकी उन्नति है और इससे पत्र और पुस्तक आदि छप २ के प्रकाशित होते हैं, यह भी कभी यहां था कि नहीं सो कुछ निश्चय नहीं है । श्री कृष्ण के समय जब राजा शाल्वने द्वारवतीपुरी को आक्रमण किया, उस समय वहां यह बन्दोवस्त किया था कि "नचाऽमुद्रोऽभिनिर्याति नैवान्त: प्रविशेदपि" महाभारतवनपर्व ; अर्थात् बिना राजकीय नाम की मोहर छाप के कोई नगर से निकल नहीं सके और कोई भीतर भी न आवे, यहां स्पष्ट ही देख लीजिये कि छापे की मुद्रा से, एक जगह के अक्षर दूसरी जगह उतारे जाते थे । मुद्राराक्षस नाटक, जो राजा चन्द्रगुप्त के

सूत्रधार अथवा पारिपार्श्वक कर्तृक उपक्षेप का उल्लेख होता था। आज काल मुद्रायंत्र के प्रभाव से इसकी कुछ अवश्यकता नहीं रही। प्रोग्राम बांट देने ही से वह काम सिद्ध हो जायगा।

समसामयिक वा कुछ उत्तरवर्त्ती काल में बना है, यहां भी राक्षस नामाङ्कित मुद्रा प्रसिद्ध ही है, इस प्रकार यद्यपि मुद्रण विधि का मूल तो आर्य्यशास्त्रों में प्रायः मिलता है, किन्तु इस की उन्नति करके देशान्तरीय लोगों ने जैसा इस से लाभ उठाया है वैसा भारतीय आर्य्य लोगों ने कुछ भी नहीं किया, यह सभी कोई कह सकते हैं; अतएव यह मुद्रण विद्या देशान्तर ही से चली और अनार्य्य लोग ही इस के आद्य आचार्य्य हुए, यह बात हम को भी खुले मुंह कहनी पड़ती है।

छापा यन्त्र बनाने के निमित्त अनेक लोग ही सम्मान प्राप्त होने के योग्य हैं, किन्तु वास्तव इंग्लेण्ड देश के हार्लेम् नगर में यह यन्त्र पहले ही पहिले निर्मित हुआ, यह प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। उक्त नगर के शासनकर्त्ता लारेंस कोश्चर साहिब ने, शक १४४० चौदह चालीस में इस का निर्माण किया और आद्य प्रादुर्भावकर्त्ता के निमित्त, सब से प्रथम वही सम्माननीय हुआ। वह एक दिन, अपने समीपस्थ किसी बगीचे में जाके एक वृक्ष की गीली त्वचा काट के, उससे अपने नाम के अक्षर बना २ एक क्रीड़ा सी कर रहा था, वेही अक्षर काट काटके जब उस ने एक किसी कागज़ के ऊपर रख दिये थे, उसी समय एक वायु का झोंका आया और वे अक्षर जो उस वृक्ष के रस से गीले होरहे थे, उन की समस्त आकृति वायुवेग से हठात् उस कागज पर उपड़ आयी। साहिब ने जब उक्त घटना देखी तो पीछे अपनी विवेचना द्वारा वह और २ भी अनेक प्रकार की परीक्षा करने लगा, फिर उसने काष्ट के अक्षर बना के एक प्रकार सघन और द्रव वस्तु में उनको डुबा के छापा किया, तब और भी कुछ उत्तम छापा हुआ मालूम दिया, शेष में उसने शीशा एवं शीशा और रांग मिले हुए धातु से अक्षर बना के, यन्त्र के निमित्त एक स्वतन्त्र स्थान निर्माण किया। इस प्रकार उस काल से लेके आद्य पर्य्यन्त इस उत्तम मुद्रण विद्या की वृद्धि होती ही चली आती है। उक्त लारेंस साहिब के पास एक उस का नौकर "योहन्फस्तस्" नामक रहता था, उसने गुप्त भाव से अपने स्वामी की विद्या चुरायी और वहां से आके

पूर्वकाल में नाटक मात्र में उपक्षेप उपन्यस्त होता था यह नियम नहीं था क्योंकि सब नाटकों में उपक्षेप का उल्लेख दिखाई नहीं पड़ता। वेनीसंहार में इसका उल्लेख है किन्तु यह भीमकृतउपन्यस्त हुआ है यथा भीम:—

" लाक्षागृहानलविषान्नसभा प्रवेशै: प्राणेषुवित्तनिचयेषु च न: प्रहृत्य।
आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान् सुस्था भवन्ति मयि जीवतिधार्त्तराष्ट्रा: ?"

अथ प्ररोचना।

जिसके अनुष्ठान द्वारा अभिनय दर्शन में समाजिक लोगों की प्रवृत्ति जन्मती है उसका नाम प्ररोचना है। यह सूत्रधार, नट, पारिपार्श्वक वा नटी के द्वारा विगीत होती है।

अथ नेपथ्य।

रंगस्थ के पश्चाद् भाग में जो एक गुप्त स्थान रहता है उसका नाम नेपथ्य है। अलंकारयिता इसी स्थान में पात्रों को वेश भूषणादि से साजते हैं। जब रंग में आकाशवाणी, दैवीवाणी, अथवा और कोई मानुषीवाणी का प्रयोजन होता है तो वह नेपथ्य ही में से गाई या कही जाती है।

अथ उद्देश्यबीज।

गुम्फित आख्यायिका के समग्र मर्म्म का नाम उद्देश्यबीज है। कवि जो इस का साधन न कर सकेगा तो उसका ग्रन्थ नाटक में परिगणित न होगा।

अथ वस्तु।

नाटकीय इतिहास अथवा कोई विवरण विशेष का नाम वस्तु है। वस्तु दो प्रकार की हैं यथा—आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु।

मेण्डस नामक नगर में, उक्त मुद्रण विद्या का प्रकाश किया, अतएव वह उस देश में उस नूतन विद्या द्वारा विद्वान् और मायावी के नाम से स्वयं विख्यात हुआ।

भारतवर्षीय उन्नति के समय और उस के बाद जब यूनान और रोम देशीय लोगों की उंन्नति का समय आया तो, वहां भी केवल जो धनी और बड़े आदमी होते थे अथवा अधिक परिश्रम करते थे, वही हस्त लिखित पुस्तकों द्वारा विद्या उपार्जन कर सकते थे, किन्तु आज छापे द्वारा वि. विद्या विभूषित पुस्तकें, सर्वसाधारण को सहज ही में प्राप्त हो सकती. इससे मनुष्य समाज में एक नूतन युग सा आविर्भूत हुआ दिखायी दे इस में कुछ सन्देह नहीं। (ध० दि०)

अथ आधिकारिक वस्तु।

जो समस्त इतिवृत्ति का प्रधान नायक होता है उसको अधिकारी कहते हैं। अधिकारी का आश्रय करके जो वस्तु विरोचित होती है उसका नाम आधिकारिक वस्तु है। जैसा उत्तरचरित।

अथ प्रासंगिक वस्तु।

इस आधिकारिक इतिवृत्ति का रस पुष्ट करने के लिये प्रसंग क्रम में जो वृत्ति लिखी होती है, उसका नाम प्रासंगिक वस्तु है। जैसा बालरामायण में सुग्रीव विभीषणादि का चरित्र।

अथ मुख्य उद्देश।

प्रसंग क्रम से नाटक में कितनी भी शाखा प्रशाखा विस्तृत हों, और गर्भांक के द्वारा आख्यायिका के अतिरिक्त और कोई विषय वर्णित हो किन्तु मूल प्रस्तावनिष्कम्प रहै तो उसको रसपुष्टि करने को मुख्य उद्देश कहा जाता है।

अथ अभिनय।

कालकृत अवस्था विशेष के अनुकरण का नाम अभिनय है। अवस्था यथा, रामाभिषेक, सीता निर्वासन, द्रौपदी का केशभाराकर्षण इत्यादि।

अथ पात्र।

जो लोक राम युधिष्ठिरादि का रूप धारण करके, कथित अवस्था का अनुकरण करते हैं, उन लोगों को पात्र कहते हैं, नाटक के जो सब अंश स्त्रीगण कर्तृक प्रदर्शित होते हैं, उनमें भाव, हाव, हेला प्रभृति यौवन सम्भूत अष्टाविंशति प्रकार के अलंकार उन लोगों को अभ्यास नहीं करने पड़ते किन्तु पुरुष लोगों को स्त्री वेश धारण के समय अभ्यास द्वारा वह भाव दिखलाना पड़ता है।

अथ अभिनय प्रकार।

अभिनय चार प्रकार का होता है यथा—आंगिकाभिनय, वाचिकाभिनय, आहार्याभिनय और सात्विकाभिनय।

अथ आंगिकाभिनय।

केवल अंगभंगी द्वारा जो अभिनय कार्य साधन करते हैं, उसका नाम आंगिकाभिनय है। जैसे सती नाटक में नन्दी। सती ने शिव की निन्दा श्रवण करके देह त्याग किया यह सुन कर महावीर नन्दी ने जब त्रिशूल हस्त में लेकर के रंगस्थल में प्रवेश किया तब केवल आंगिकभाव द्वारा क्रोध दिखलाना चाहिए।

अथ वाचिकाभिनय।

केवल वाक्य विन्यास द्वारा जो अभिनय कार्य समाहित होता है उसका नाम वाचिकाभिनय है। यथा तोतले आदि का वेश।

अथ आहार्याभिनय।

वेष भूषणादि निष्पाद्य का नाम आहार्याभिनय है, जैसा सत्यहरिश्चन्द्र में चोबदार वा मुसाहिब ये लोग जब राजा के साथ रंगस्थल में प्रवेश करते हैं तो इनको कुछ बात नहीं करनी पड़ती। केवल आहार्याभिनय के द्वारा आत्मकार्य निष्पन्न करना होता है।

अथ सात्विकाभिनय।

स्तम्भ स्वेद रोमांच कम्प और अश्रु प्रभृति द्वारा अवस्थानुकरण का नाम सात्विकाभिनय है। जैसा सती का मृत देह देखकर नन्दी का व्यवहार और अश्रुपात इत्यादि।

अथ विमिश्राभिनय।

एक पात्र द्वारा जब कथित अभिनय में से दो वा तीन अथवा सब प्रदर्शित होते हैं तो उसको विमिश्राभिनय कहते हैं।

अथ अंगांगी भेद।

नाटक में जो प्रधान नायक होता है उसको समस्त इतिवृत्ति का अंगी कहते हैं। जैसे सत्यहरिश्चन्द्र में हरिश्चन्द्र।

अथ अंग

अंगी के कार्य साधक पात्रगण अंग कहलाते हैं। जैसे वीर चरित में सुग्रीव विभीषण अंगद इत्यादि।

अथ वैषम्यपात दोष

नाटक में अंगी को अवनत करके अंग का प्राधान्य करने से वैषम्यपात नामक दोष होता है।

अथ अंक लक्षण

नाटक के एक एक विभाग को एक एक अंक कहते हैं। अंग में वर्णित नायक नायिकादि पात्र का चरित्र और आचार व्यवहारादि दिखलाया जाता है। अनावश्यक कार्य का उल्लेख नहीं रहता। अंक में अधिक पद्य का समावेश दूषणावह होता है।

अथ अंकावयव

नाटक का अवयव वृहत होने से, एक रात्रि में अभिनय कार्य समाहित नहीं होगा। इस हेतु दश अंक से अधिक नाटक निर्माण विधि और युक्ति के विरुद्ध है। प्रथम अंक का अवयव जितना होगा द्वितीयांक का अवयव तदपेक्षा न्यून होना चाहिए। ऐसे ही क्रम क्रम से अंक का अवयव छोटा करके ग्रन्थ समाप्त करना चाहिए।

अथ विरोधक।

नाटक में जिन विषयों का वर्णन निषिद्ध है, उसका नाम विरोधक है।

उदाहरण।

दूराह्वान, अति विस्तृत युद्ध, राज्य देशादि का विप्लव, प्रबल वात्या, दन्तच्छेद, नखच्छेद, पक्षादि युक्तकाय जन्तु का अति वेग से गमन, नौका परिचालन और नदी में सन्तरण प्रभृति अघटनीय विषय।

अथ नायक निर्वाचन।

विनय, शीलता, वदान्यता, दक्षता, चिप्रता, शौर्य, प्रियभाषिता लोकरंजकता, वाग्मिता—प्रभृति गुण समूह संपन्न सद्वंश सम्भूत युवा को नायक होने का अधिकार है। नायक की भांति नायिका में भी यथा सम्भव वही गुण रहना आवश्यक है। प्रहसन आदि रूपक विशेष के नायकादि अन्य प्रकार के होते हैं।

अथ परिच्छद विवेक।

नाटकान्तरगत कौन पात्र कैसा परिच्छद पहरैं यह ग्रन्थकार कर्त्तृक उल्लिखित नहीं होता न किसी प्राचीन नाटककार ने इसका उल्लेख किया है। नाटक में किसी किसी स्थान में उत्तम परिच्छद का परिवर्त्तन दिखलाई पड़ता है। जैसा सत्यहरिश्चन्द्र में " दरिद्र वेष से हरिश्चन्द्र का प्रवेश "।

ऐसी अवस्था भिन्न स्पष्ट रूप से परिच्छद का वर्णन किसी स्थान में उल्लिखित नहीं रहता इससे अभिनय में वेश रचयिता पात्र गण का स्वभाव और अवस्था विचार करके वेश रचना कर दे। नैपथ्य कार्य सुन्दर रूप से निर्वाह के हेतु एक रसज्ञ वेष विधायक की आवश्यकता रहती है।

अथ देशकाल प्रवाह।

अति दीर्घकाल सम्पाद्य घटना सकल नाटक में अल्पकाल के मध्य में वर्णन करना यद्यपि दूषणावह नहीं है तथापि नाटक में देशगत और कालगत वैलक्षण्य वर्णन करना अतिशय अनुचित है।

अथ विष्कम्भक।

नाटक में विष्कम्भक रखने का तात्पर्य यह है कि नाटकीय वस्तु रचना में जो सब अंश अत्यन्त नीरस और आडम्बरात्मक हैं उनके सन्निवेशित होने से समाजिक लोगों को विरक्ति और अरुचि हो जाती है। नाटक प्रणेतृ गण इन घटनाओं को पात्र विशेष के मुख से संक्षेप में विनिर्गत कराते हैं।

अथ नाटक रचना प्रणाली

नाटक लिखना आरम्भ करके, जो लोग उद्देश्य वस्तु परंपरा से चमत्कार-जनक और अति मधुर वस्तु निर्व्वाचन करके भी स्वाभाविक सामग्री परिपोष के प्रति दृष्टिपात नहीं करते उनका नाटक नाटिकादि दृश्य काव्य लिखने का प्रयास व्यर्थ है क्योंकि नाटक आख्यायिकाकी भांति श्रव्य काव्य नहीं है।

ग्रन्थकर्त्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रगण की बात चीत रचना करै कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसी ही उसकी बात भी विरचित हो। नाटक में वाचाल पात्र की मितभाषिता, मितभाषी की वाचालता, मूर्ख की वाक्पटुता और पण्डित का मौनीभाव विड़म्बनामात्र है। पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है। नाटक में वाक्—प्रपंच एक प्रधान दोष है। रसविशेष द्वारा दर्शक लोगों के अन्तःकरण को उन्नत अथवा एक बारगी शोकावनत करने को समधिक वागाडम्बर करने से कभी उद्देश सिद्ध नहीं होता। नाटक में वाचालता अपेक्षा मित-भाषिता के साथ, वाग्मिता का ही सम्यक् आदर होता है। नाटक में प्रपञ्च रूप से किसी भाव को व्यक्त करने का नाम गौण उपाय है। और कौशल विशेषद्वारा थोड़ी बात में गुरुतर भाव व्यक्त करने का नाम मुख्योपाय है। थोड़ी सी बात में अधिक भाव की अवतारणा ही नाटक जीवन का महौषध है जैसा उत्तर राम चरित में महात्मा जनक जी आकर पूछते हैं 'क्वास्ते प्रजा वत्सलो रामः' यहां प्रजा वत्सल शब्द से महाराज जनक के हृदय के कितने विकार वोध होते हैं केवल सहृदयही इसका अनुभव करैंगे। चित्र कार्य के निमित्त जो जो उपकरण का प्रयोजन और स्थान विशेष की उच्च नीचता दिखलाने की जैसी आवश्यकता होती है वैसे ही वही उपकरण और उच्च नीचता प्रदानपूर्वक अति सुन्दर रूप से मनुष्य के बाह्यभाव और कार्य प्रणाली के चित्रकरण अपेक्षा सहज भाव से उसका मानसिक भाव और कार्य्यप्रणाली दिखलाना प्रशंसा का विषय है। जो इस भांति दूसरे के

अन्तरभाव व्यक्त करने को समर्थ हैं, उन्हीं को नाटककार सम्बोधन दिया जा सकता है और उन्हीं के प्रणीत ग्रन्थ नाटक में परिगणित होते हैं।

नाटक में अन्तर का भाव कैसे चित्र किया जाता है इसका एक अति आश्चर्य दृष्टान्त अभिज्ञान शकुंतल (११) से उद्धृत किया गया।

शकुंतला श्वशुरालय में गमन करेगी इस पर भगवान कण्व जिस भांति खेदप्रकाश करते हैं वह यह है।

कण्व (मन में चिन्ता करके)

---

(११) इस प्रसिद्ध नाटक के मंगलाचरण का श्लोक "यासृष्टुःसृष्टिराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्यविश्वं। या माहुस्सर्वबीजप्रकृतिरिति यथा प्राणिनः प्राणवन्तः प्रत्यक्षाभिः प्रसन्न स्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः" बहुत प्रसिद्ध है और सब टीकाकारों नेइसके अनेक अर्थ किए हैं तथापि मुझे ऐसा निश्चित होता है कि कालिदास ने चिति इत्यादि शब्दों से श्रीशिवजी का विराट स्वरूप वर्णन नहीं किया है क्योंकि उन मूर्त्तियों का 'प्रत्यक्षाभिः' यह विशेषण दिया है और लोग "या स्रष्टुः सृष्टिराद्या" इस का अर्थ आकाश करते हैं तो आकाश क्या अक्षि का विषय है इस्से मेरे ध्यान में आता है कि शिव जी की जो प्रत्यक्ष परम सुन्दरी मूर्त्ति है यह उसी का वर्णन है। जैसे :—

'यास्रष्टुश्सृष्टिराद्या' अर्थात् जल 'शीर्षे च मन्दाकिनी' जिस मूर्त्ति में जल सब के ऊपर है।

'वहतिविधिहुतंयाहविः' अर्थात् अग्नि, 'वन्दे सूर्य्यशशाङ्कवन्हिनयनं' जिस मूर्त्ति का एकमुख्य अंग अर्थात् नेत्र अग्नि है वा मुख वर्णन किया 'मुखोवै अग्निः, मुखादग्निः'।

'या च होत्री' अर्थात् यजमान स्वरूपा जो मूर्त्ति कर्म्म मार्ग स्थापन करने वाली है 'अभिवाद्योमहाकर्म्मातपस्वीभूतभावनः' 'सर्व्वकर्म्मा' 'सर्व्व यज्ञ क्रत' इत्यादि नाम प्रसिद्ध हैं, 'तं यज्ञ बर्हिर्षिप्रौक्षं पुरुषं' इत्यादि की दो तीन ऋचा में यज्ञोत्पत्ति कही है।

'ये द्वे कालस्त्रिधत्तः' अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य्य 'सूर्य्यशशाङ्कवन्हिनयनं' जिस की दो नेत्र स्वरूप मूर्त्तियां काल का विधान करती हैं और शिव के निमिष में प्रलयादिक होती हैं यह भी पुराण प्रसिद्ध वा सूर्य्य नेत्र चन्द्रमा सिर पर वा मन स्वरूप 'चन्द्रमा मन सो जातश्चक्षोस्सूर्य्यो अजायत'।

आहा आज शकुंतला पति गृह में जायगी यह सोचकर हमारा हृदय कैसा उत्कंठित होता है, अन्तर में जो वाष्प भर का उच्छ्वास हुआ है उससे वाग् जड़ता हो गई है, और दृष्टिशक्ति चिन्ता से जड़ीभूत हो रही है। हाय! हम वनवासी तपस्वी हैं सो जब हमारे हृदय में ऐसा वैक्लव्य होता है तो

'श्रुति विषय गुणायास्थिताव्याप्यविश्वं' अर्थात् वाणी स्वरूपी मूर्त्ति, जिस की वाणी वेद स्वरूप विश्व को अपने नियम में व्याप्त करके स्थित हैं क्योंकि शिव जी वाणी के अधि देवता 'वागीशः, 'अहं कलानां ऋषभोपि' 'विद्याकामस्तुगिरिशं' 'वाणी व्याकरणं यस्य' इत्यादि पुराण में प्रसिद्ध हैं वा वेदों की विषय हो कर जो मूर्त्ति एक देशावच्छिन्ना होकर भी विश्व को व्याप्त करके स्थित है 'सभूमिं सर्व्वतो वृत्वा अत्यतिष्टद्दशाङ्गुलम्' वा नाभि अंग का वर्णन किया है यस्य नाभिर्वै आकाशः 'नाभ्या आसीदंतरिक्षं' इत्यादि।

'यामाहुसर्व्वबीजप्रकृतिरिति' अर्थात् पृथ्वी सो पृथ्वी आपने भस्म स्वरूप से सर्व्वाङ्ग में धारण किया है 'भस्मोद्धूलित सर्व्वाङ्गः', 'भस्मोद्धूलित विग्रहः' इत्यादि वा पृथ्वी गङ्गा शिर नेत्र मुख नाभि इत्यादि अंगों को वर्णन करके चरण का वर्णन करते हैं जिस के चरण पृथ्वी स्वरूप हैं 'चरणे धरा' पद्भ्याम्भूमिः' इत्यादि।

'यया प्राणिनः प्राणवन्तः' अर्थात् आत्मा तो इस में मूर्त्ति ही में आत्मा का वर्णन इस हेतु किया जिस में भगवान के देह में आत्मा अलग है यह संदेह न हो क्योंकि 'यथा सैन्धवघनो' इत्यादि परमात्मा का स्वरूप है तो सब मूर्त्तियों का वर्णन करके व्यापकत्व और आत्म स्वरूपत्व कहा वा कानों का वर्णन मानों 'श्रोत्राद्वायुश्चप्राणश्च' वा आप प्राणायामस्थ हैं यह ध्यान किया है।

तो इन आठों मूर्त्तियों से विशिष्ट प्रत्यक्ष शिव जी का वर्णन कालिदास ने किया कुछ संसार स्वरूप भगवान का वर्णन नहीं है क्योंकि अन्त में भी 'नीललोहितः' विशेषण दिया है और यों मानने में क्रम से शिर पर गङ्गा फिर मुख और उनके यज्ञादिक कर्म्म और चन्द्रचूड़ तथा च नेत्र फिर वाणी का वा नाभि का और भस्मधारण का तथा चरण का और फिर मुख स्वरूप आत्मा का क्रमशः वर्णन हो गया तो मेरी बुद्धि में आता है कि कालिदास का अभिप्राय भी यही होगा क्योंकि 'प्रत्यक्षाभिः' का दोष और नाटक के उपसंहार में सगुण शिव नीललोहित करके वर्णन इत्यादि का इस अर्थ में विरोध नहीं आता॥

कन्या के वियोग के अभिनव दुःख में बिचारे गृहस्थों की क्या दशा होती होगी।

सहृदय पाठक ! आप विवेचना करके देखिए कि इस स्थान में कवि श्रेष्ठ कालिदास कुलपति कण्व ऋषि का रूप धारण करके ठीक उनका मानसिक भाव व्यक्त कर सके हैं कि नहीं ?

इसके बदले कालिदास यदि कण्व ऋषि का छाती पीटकर रोना वर्णन करते तो उनके ऋषि जनोचित धैर्य की क्या दुर्दशा होती अथवा कण्व का शकुन्तला के जाने पर शोक ही न वर्णन करते तो कण्व का स्वभाव मनुष्य स्वभाव से कितना दूर जा पड़ता। इसी हेतु कविकुलमुकुटमाणिक्य भगवान् कालिदास ने ऋषि जनोचित भाव ही में कण्व का शोक वर्णन किया।

नाटक रचना में शैथिल्य दोष कभी न होना चाहिए। नायक नयिका द्वारा किसी कार्य विशेष की अवतारना करके अपरिसमाप्त रखना अथवा अन्य व्यापार की अवतारना करके उसका मूलच्छेद करना नाटक रचना का उद्देश नहीं है। जिस नाटक की उत्तरोत्तर कार्य प्रणाली सन्दर्शन करके दर्शक लोग पूर्व पूर्व कार्य विस्मृत होते जाते हैं वह नाटक कभी प्रशंसा भाजन नहीं हो सकता। जिन लोगों ने केवल उत्तम उत्तम वस्तु चुन कर एकत्र किया है उनकी गुम्फित वस्तु की अपेक्षा जो उत्कृष्ट मध्यम और अधम तीनों का यथा स्थान निर्वाचन करके प्रकृति की भाव भंगी उत्तम रूप से चित्रित करने में समर्थ हैं वही काव्यामोदी रसज्ञ मंडली को अपूर्व आनन्द वितरण कर सकते हैं। कालिदास भवभूति और शेक्सपीयर प्रभृति नाटककार इसी हेतु पृथ्वी में अमर हो रहे हैं। कोई सामग्री संग्रह नहीं है, अथच नाटक लिखना होगा यह अलीक संकल्प करके जो लोग नाटक लिखने को लेखनी धारण करते हैं उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। यदि किसी को नाटक लिखने की वासना हो तो नाटक किस को कहते हैं, इसका तात्पर्य हृदयंगम करके नाटक रचयिता को सूक्ष्म रूप से ओतप्रोत भाव में मनुष्य की प्रकृति आलोचना करनी चाहिए। जो अनालोचित मानव प्रकृति हैं उनके द्वारा मानव जाति के अन्तर भाव सब विशुद्ध रूप से चित्रित होंगे, यह कभी सम्भव नहीं है। इसी कारण से कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल और शेक्सपियर के म्याकबेथ् और हमलेट इतने विख्यात होके पृथ्वी के सर्वस्थान में एकादर से परिभ्रमण करते हैं। मानव प्रकृति

की समालोचना करनी हो तो नाना देश में भ्रमण करके नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करै। तथा नाना प्रकार के समाज में गमन करके विविध लोगों का आलाप सुनै तथा नाना प्रकार के ग्रन्थ अध्ययन करे; बरंच समय में अश्व रक्षक, गोरक्षक, दास, दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करै। यह न करने से मानव प्रकृति समालोचित नहीं होती। मनुष्य लोगों की मानसिक वृत्ति परस्पर जिस प्रकार अदृश्य हैं उन लोगों के हृदलस्थभाव भी उसी रूप अप्रत्यक्ष हैं। केवल बुद्धि वृत्ति की परिचालना द्वारा तथा जगत के कतिपय वाह्य कार्य पर सूक्ष्म दृष्टि रखकर उसके अनुशीलन में प्रवृत्ति होना होता है। और किसी उपकरण द्वारा नाटक लिखना भख मारना है।

राजनीति, धर्मनीति- आन्वीक्षिकी, दंडनीति, सन्धि, विग्रह प्रभृति राजगुण; सज्जना चातुरी, आद्य करुणा प्रभृति रस, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव, तथा सात्विक भाव; तथा व्यय, वृद्धि, स्थान प्रभृति त्रिवर्ग की समालोचना में सम्यक रूप समर्थ हो तब नाटक लिखने को लेखनी धारण करै।

स्वदेशीय तथा भिन्न देशीय सामाजिक रीति व्यावहारिक रीति पद्धति का निदान फल और परिणाम इन तीनों का विशिष्ट अनुसन्धान, नाटक रचना का उत्कृष्ट उपाय है।

वेश और वाणी दोनों ही पात्र की योग्यतानुसार होनी चाहियें। यदि भृत्यपात्र प्रवेश करे तो जैसे बहूमूल्य परिच्छद उस के हेतु अस्वाभाविक है वैसेही पण्डितों के संभाषण की भांति विशेष संस्कृत गर्भित भाषा भी उस के लिये अस्वाभाविकी है। महामुनि भरताचार्य पात्र स्वभावानुकूल भाषण रखने का वर्णन अत्यन्त सविस्तर कर गये हैं; यद्यपि उन के नांदी रचनादि विषय के नियम हिन्दी में प्रयोजनीय नहीं किन्तु पात्र स्वभाव विषयक नियम तो सर्वथा शिरोधार्य हैं।

नाटक पठन वा दर्शन में स्वभाव रक्षा मात्र एक उपाय है जो पाठक और दर्शकों के मनः समुद्र को भाव तरंगों से आस्फालित कर देता है।

अथ विदूषक।

नाटक दर्शकगण विदूषक के नाम से अपरिचित नहीं किन्तु विदूषक का प्रवेश किस स्थान में योग्य है इसका विचार लोक नहीं करते। बहुत से

नाटक लेखकों का सिद्धांत है कि अथ इति की भांति विदूषक की नाटक में सहज आवश्यकता है किन्तु यह एक भ्रम मात्र है। वीर, वा करुणरस प्रधान नाटक में विदूषक का प्रयोजन नहीं रहता। शृङ्गार की पुष्टिके हेतु विदूषक का प्रयोजन होता है. सोभी सब स्थल में नहीं, क्योंकि किसी किसी अवसर पर विदूषक के बदले विट, चेट, पीठमर्द नर्मसखा प्रभृति का प्रवेश विशेष स्वाभाविक होता है। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार कुसुमवसंतादिक नाम धारी, नाटा, मोटा, वामन, कुबड़ा, टेढ़े अंगका वा और किसी विचित्र आकृति का, किम्वा हकला, तोतला, भोजनप्रिय मूर्ख, असंगत, किन्तु हास्य रस के अविरुद्ध बात कहने वाला विदूषक होना चाहिये और उसका परिच्छद भी ऐसा हो जो हास्य का उद्दीपक हो।

संयोग शृङ्गार वर्णन में इस की स्थिति विशेष स्वाभाविकी होती है।

अथ रस वर्णन।

शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, वीभत्स, शांत, भक्ति वा दास्य, प्रेम वा माधुर्य, सख्य, वात्सल्य, प्रमोद वा आनन्द।

शृङ्गार, संयोग और वियोग दो प्रकार का। यथा शकुन्तला के पहले दूसरे अंक में संयोग, पांचएं छठें अंक में वियोग।

हास्य, यथा भाण और प्रहसनों में।

करुणा, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में शैव्या के विलाप में, रौद्र, यथा धनंजय विजय में युद्ध भूमि वर्णन।

वीर रस ४ प्रकार। यथा दान वीर, सत्य वीर, युद्ध वीर, और उद्योग वीर दान वीर यथा सत्यहरिश्चन्द्र में 'जेहि पाली इक्ष्वाकु सों' इत्यादि। सत्यवीर यथा सत्यहरिश्चन्द्र में 'वेचि देह दारा सुअन' इत्यादि, युद्धवीर यथा नीलदेवी। (१२) उद्योग वीर मुद्रा राक्षस। भयानक अद्भुत और वीभत्स यथा सत्यहरिश्चन्द्र में श्मशान वर्णन।

शांत यथा प्रबोध चन्द्रोदय में, भक्ति यथा संस्कृत चैतन्यचन्द्रोदय में, प्रेम यथा चन्द्रावली में, वात्सल्य और प्रमोद के उदाहरण नहीं हैं।

अथ रस विरोध

नाटक रचना में विरोधी रसों को बहुत बचाना चाहिए। जैसे शृङ्गार के

(१२) मुद्राराक्षस में मुख्य अंगीभावसे कोई रस न पाकर मुझ को उद्योग वीर की कल्पना करनी पड़ी।

हास्य वीर विरोधी नहीं किन्तु अति करुणा बीभत्स रौद्र भयानक और शान्त विरोधी हैं तो जिस नाटक में शृङ्गाररस प्रधान अंगी भाव से हो उस में ये न आने चाहिए। अति करुणा लिखने का तात्पर्य यह कि सामान्य करुणा तो वियोग में भी वर्णित होगी किन्तु पुत्र शोकादिवत् अति करुणा का वर्णन शृङ्गार का विरोधी है। हां नवीन (ट्रेजिडी) योगान्त नाटक लेखक तो इस रस विरोध करने को बाधित हैं। नाटकों की सौन्दर्य रक्षा के हेतु विरोधी रसों को बचाना भी बहुत आवश्यक कार्य है अन्यथा होने से कवि का मुख्य उद्देश्य नाश हो जाता है।

अथ अन्य स्फुट विषय

नाटक रचना के हेतु पूर्वोक्त कथित विषयों के अतिरिक्त कुछ नायिका भेद और कुछ अलंकार शास्त्र जानने की भी आवश्यकता होती है। ये विषय रस-रत्नाकर भारती भूषण ललितलता आदि ग्रन्थों में विस्तर रूप से वर्णित हैं।

आज काल की सभ्यता के अनुसार नाटक रचना में उद्देश्य फल उत्तम निकलना बहुत आवश्यक है। यह न होने से सभ्यशिष्ट गण ग्रन्थ का तादृश आदर नहीं करते। अर्थात् नाटक पढ़ने वा देखने से कोई शीक्षा मिले। जैसे सत्यहरिश्चन्द्र देखने से आर्यजाति की सत्त प्रतिज्ञा, नीलदेवी से देशस्नेह इत्यादि शिक्षा निकलती हैं। इस मर्यादा की रक्षा के हेतु वर्त्तमान समय में स्वकीया नायिका तथा उत्तम गुण विशिष्ट नायक को अवलम्बन करके नाटक लिखना योग्य है। यदि इस के विरुद्ध नायिका नायक के चरित्र हों तो उसका परिणाम बुरा दिखलाना चाहिए। यथा नहुष नाटक में इन्द्राणी पर आसक्त होने से नहुष का नाश दिखलाया गया है। अर्थात् चाहे उत्तम नायिका नायक के चरित्र की समाप्ति सुखमय दिखलाई जाय किंवा दुश्च-रित्र पात्रों के चरित्र की समाप्ति कंटकमय दिखलाई जाय। नाटक के परि-णाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावैं।

अथ अभिनय विषयक अन्यान्य स्फुट नियम।

नाटक की कथा—नाटक की कथा की रचना ऐसी विचित्र और पूर्वा-पर होनी चाहिए कि जब तक अन्तिम अंक न पढ़े किम्वा न देखे यह प्रगट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा। यह नहीं कि 'सीधा एक को बेटा हुआ उसने यह किया वह किया'। प्रारम्भ ही में कहानी का मध्य बोध हो।

पात्रों के स्वर—शोक हर्ष हास क्रोधादि के समय में पात्रों को स्वर भी घटाना बढ़ाना उचित है। जैसे स्वाभाविक स्वर बदलते हैं वैसेही खेलन भी बदलें। 'आप ही आप' ऐसे स्वर में कहना चाहिए कि बोध हो कि धीरे धीरे कहता है किन्तु तब भी इतना उच्च हो कि श्रोतागण निष्कंटक सुन लें।

पात्रों की दृष्टि—यद्यपि परस्पर वार्त्ता करने में पात्रों की दृष्टि परस्पर रहैगी किन्तु बहुत से विषय पात्रों को दर्शकों की ओर देख कर कहने पड़ेंगे। इस अवसर पर अभिनय चातुर्य यह है कि यद्यपि पात्र दर्शकों की ओर देखें किन्तु यह न बोध हो कि वह बातें वे दर्शकों से कहते हैं।

पात्रों के भाव—नृत्य की भांति रंग स्थल पर पात्रों को हस्तक भाव वा मुख नेत्र भ्रू के सूक्ष्मतर भाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं स्वर भाव और यथा योग्य स्थान पर अंग भंगी भाव ही दिखलाने चाहिएं।

पात्रों का फिरना—एक यह साधारण नियम भी माननीय है कि फिरने वा जाने के समय जहां तक हो सके पात्रगण अपनी पीठ दर्शकों को बहुत कम दिखलावैं। किन्तु इस नियम पालन का इतना आग्रह न करें कि जहां पीठ दिखलाने की आवश्यकता हो वहां भी न दिखलावैं।

पात्रों का परस्पर कथोपकथन—पात्र गण आपस में वार्त्ता जो करें उन को कवि निरे काव्य की भांति न ग्रथित करे। यथा नायिका से नायक साधारण काव्य की 'भांति तुह्मारे नेत्रकमल हैं कुच कलश हैं' इत्यादि न कहैं। परस्पर वार्ता में हृदय के भाव बोधक वाक्य ही कहने योग्य हैं। किसी मनुष्य या स्थानादि के वर्णन में लम्बी चौड़ी काव्य रचना नाटक के उपयोगी नहीं होती।

अथ नाटकों का इतिहास।

यदि कोई हम से यह प्रश्न करे कि सब के पहिले किस देश में नाटकों का प्रचार हुआ तो हम क्षण मात्रका भी विलम्ब किये बिना मुक्त कंठसे कह देंगे भारत वर्ष में। इसका प्रमाण यह है कि जिस देश में संगीत और साहित्य प्रथम परिपक्व हुए होंगे वहीं प्रथम नाटक का भी प्रचार हुआ होगा। हम नहीं समझ सकते कि पृथ्वी की और कोई जाति भी भारतवर्ष के सामने इस विषय में मुंह खोले। आर्यों का परम शास्त्र वेद संगीत और साहित्यमय है। और जाति में संगीत साहित्य प्रमोद के हेतु होते हैं किन्तु हमारे पूज्य आर्य महर्षियों ने इन्हीं शास्त्रों द्वारा आनन्द में निमग्न हो कर परमेश्वर की उपासना की है। यहां तक कि हमारे तीसरे वेद साम की संज्ञा ही गान है

और किसके यहां धर्म संगीत साहित्य मय है ? हमारे यहां लिखा है—

वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं प्रयच्छति ॥ १ ॥
काव्यालापाश्च येकेचित् गीतिकान्यखिलानिच ।
शब्दरूपधरस्यैते विष्णोरंशाः महात्मनः ॥ २ ॥

तो जब हमारे धर्म की मूलही में संगीत और साहित्य मिले हैं तब इसमें क्या सन्देह है कि इस रस के प्रथमाधिकारी आर्यगण ही हैं। इसके अतिरिक्त नाटक रचना में रंग नट इत्यादि जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे सब प्राचीन काव्य, कोष, व्याकरण और धर्म शास्त्रों में पाए जाते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि नाटक रचना हमारे आर्यगणों पर पूर्व काल ही से विदित है।

सर्वदा नट लोगों के ही द्वारा ये नाटक नहीं अभिनीत होते थे आर्य राजकुमार और कुमारीगण भी इस को सीखते थे। महाभारत के खिल हरिवंश पर्व के विष्णु पर्व के ९३ अध्याय में प्रद्युम्न साम्बादि यादवराज-कुमारों का वज्रनाभ के पुर में जाना और वहां नट बन कर (कौबेररम्भा-भिसार) नाटक खेलना बहुत स्पष्ट रूप से वर्णित है। वहां लिखा है कि जब प्रद्युम्न आदिक वीर वज्रनाभ के पुर में गये तो भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने कुमारों को नाटक करने की आज्ञा दे कर भेजा था। प्रद्युम्न सूत्रधार थे साम्ब विदूषक थे और गद पारिपार्श्वक थे। यहां तक कि स्त्रियां भी गाने बजाने का साज ले कर साथ गई थीं। पहिले दिन इन लोगों ने रामजन्म नाटक किया जिस में लोमपाद राजा की आज्ञा से गणिका लोगों का शृङ्गी ऋषि को ठग कर लाना बहुत अच्छी रीति से दिखलाया गया था। दूसरे दिन फिर रम्भाभिसार नाटक किया (१३) इस में पहिले इन लोगों ने नेपथ्य बांधा (१४) फिर स्त्रियों ने भीतर से बड़े सुन्दर स्वर से गान किया (१५)

---

(१३) 'भैमापि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा। कार्यार्थं भीम कर्माणो नृत्यार्थं सुपचक्रमुः ॥ इत्यादि २१ श्लोक से ३२ तक।

(१४) अर्थात् बिना नेपथ्य के महाराष्ट्रों की भांति शतरंजी और मश्-हरी क्षेपभरोसे नाटक नहीं खेला।

(१५) इस से विदित हुआ कि वाह्यपटी उठने के पहले गान होना भी प्राचीन रीति है।

पीछे गंगा जी के वर्णन में प्रद्युम्न गद और साम्ब ने मिल कर नान्दी गाया (१६) और तदनन्तर प्रद्युम्नजी ने विनय के श्लोक पढ़ कर सभा को प्रसन्न किया (१७) और तब नाटक आरम्भ हुआ। इस में शूर नामक यादव रावण बना, मनोवती नाम्नी स्त्री रम्भा (१८) प्रद्युम्न नल कूबर और साम्ब विदूषक। इसी प्रकारण से यह बात सिद्ध होती है कि केवल नट ही नहीं प्राचीन काल से आर्यकुल में बड़े बड़े लोगभी इस विद्याको भली भांति जानते थे (१९)

(१६) नांदी विषयक दृढ़ नियम उसी काल से प्रचलित है।

(१७) विनय के श्लोक पढ़े अर्थात् प्रस्तावना हुई।

(१८) इससे एक बात यह बहुत बड़ी प्रमाण हुई कि प्राचीन काल में स्त्री का वेष स्त्री लेती थीं।

(१९) अब के लोगों को नाटक के अनुशीलन वा अनुकरण करने में उत्साह नहीं होता वरन इसको तुच्छ और बुरा समझ के इससे दूर भागते हैं और नाटक करने वाले चतुरों को लोग साधारण ढोल बजाने वाले नट जान कर इस काम में अपनी घृणा प्रकाश करते हैं, परन्तु बड़े शोच की बात है कि जो सब से अच्छी वस्तु है और जिसके करने वाले लोग महा सभ्यता के निकेतन हैं इन्हीं दोनों बातों में देश के कुसंस्कार से लोगों को अरुचि हो गई। नाटकों का अभिनय करना सहृदय जनों के समाज को कितनी प्रीति देने वाला, देश को कुचालों को सुधारनेवाला और कैसा कुशल करने वाला है इसका सब गुण उन नाटक देखनेही से उन पर प्रगट होजायगा और इसी भांति प्रतिकूलता के बन्धन से छूटकर अनुकूलता भूषण से भूषित होकर नाटक दर्शनरूपी अलौकिक कुसुम कानन में घूमने फिरने से अनिर्वचनीय आनन्द पावेंगे और उसके काव्यों के वायु के ठंढे और सुगन्धित झकोरों से उनके जी की कली खुलजायगी। नाटकों के अभिनय करने में जो स्वच्छन्दता होती है उसे छोड़ कर उससे देशका कितना उपकार होता है कि हम लिख नहीं सकते देखिए जो कि यदि एकबड़ाराजा वा कोई धनी अथवा कोई पण्डित किसी बुरे काम में प्रवृत्त होय तो उसको हम लोग सभा में कभी शीघ्र न देसकेंगे और जो कुंस्कार की दावाग्नि बहुत काल से प्रगट होकर हम लोगों के मंगलमय सभ्यता बन को जला रही है उस महा दावाग्नि को हम लोग दोष कथन वारि से घर बैठे बुझाना चाहैंगे तो कभी न बुझैगी इस से अब हम लोगों को कुशलता के उद्योगबीजों को अवश्य बोना चाहिए और वह किसी एक मनुष्य के यत्न से अभी अंकुरित न होगी परन्तु यदि नाटकों

मध्य समय के नाटक।

मध्य समय के नाटककारों में कवि कुलगुरु भगवान् कालिदास

के अभिनय का आरम्भ होजायगा तो यह सब कुचाल आप से आप छूट जायगी और इसी भांति फिर सब लोग अच्छी बातों से रुष्ट न होकर उसके प्रचार में प्रयत्न करेंगे॥

जैसे वेश्याऽऽसक्त पुरुषों का वेष धारण करने वाले नटों से वेश्याऽऽसक्त पुरुषों को घृणा होगी और कुलटत्व दोष निवारण के हेतु कुलटा वेष धारी नट के आने से उस का दुर्दशा का दिखाना, मद्यपों के वेष से मद्यपों की बुरी अवस्था का अनुभव कराना इसी भांति जुवारी, झूठ बोलने वाले, ऋणी अपने बन्धुओं से विरोध करनेवाले, वृथा आचरण करनेवाले, वृथा व्यय करनेवाले, कर्कश बोलनेवाले और मूर्खों के वेष और सम्भाषण से इन की दुर्दशा दिखाने से अनायासही पूर्व्वोक्त दुर्दशावाले मनुष्य सभा में बातों ही के चोट से चैतन्य होजाएंगे और इस रस रूपी उपदेश से सावधान होकर बुरी बातों से बचैंगे। और जो नाटक करना कोई बुरी बात होती तो सभ्य-शिरोमणि विद्यासागर अंगरेज़ लोग इस के होने में क्यों प्रयत्न करते और बड़ी २ रंगशालाओं में नित्य नित्य बड़े २ अधिकारी लोग क्यों वेश धारण करके नाटकाभिनय करते? जो कहो कि यह नाटक भरतखंड के हेतु एक नई बात है सो नहीं देखिए पूर्व्वकाल में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने पुत्र शाम्ब और श्रीप्रद्युम्न को और अपने छोटे भाई गद को एक बड़े समाज के साथ नाटक करने की आज्ञा दिया था और उन लोगों ने रामाभिनय नाटक किया था और इसी भांति से भरतखंड भूषण श्रीमहाराजविक्रमादित्य और महाराज भोज के समय इस का सम्पूर्ण रूप से प्रचार था इस में विशेष प्रमाण का कुछ काम नहीं है उस समय के शकुन्तला और रत्नावली इत्यादि नाटक अब भी प्रमाण आदर्शरूप से वर्तमान हैं और पढ़नेवालों को अपूर्व्व आनन्द देते हैं अहा! हे नाटक विरोधी मानवगण आपलोग इस चमत्कार-कार्य्य में क्यों उत्साह नहीं बढ़ाते और इस आनन्दमय रस समुद्र में क्यों नहीं स्नान करते और बड़े २ महात्मा वीर रसिक शिरोमणि दुष्यन्त युधिष्ठिर राम और वत्सराज ऐसे लोगों के साक्षात दर्शन और उनके गुण स्वभाव श्रवण की इच्छा क्यों नहीं करते? इस हेतु अब यही हमारी प्रार्थना है कि आप लो इस बात को सुन कर कान में रुई देके न बैठें जहां तक हो सके इस

(२०) मुख्यतम हैं। भवभूति (२१) और धावक दूसरी श्रेणी में हैं। राजशेखर, जयदेव, भट्टनारायण दंडी (२२) इत्यादि तीसरी श्रेणी में हैं। अब जितने नाटक प्रसिद्ध हैं उन में मृच्छकटिक सब से प्राचीन है। इसके पीछे के शकुन्तला और विक्रमोर्वशी बने हैं। यहां पर एक बड़ी प्रसिद्ध बात का विचार करना है। प्रायः सभी प्राचीन इतिहास लेखकों ने लिखा है कि श्रीहर्ष कालिदास के पूर्व हुआ, क्योंकि मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने धावक का नाम लिया है, किन्तु राजतरंगिणी में हर्ष नामक जो राजा हुआ है वह विक्रमादित्य (२३) के कई सौ वर्ष पीछे हुआ है। अनंत-

---

की उन्नति में प्रयत्न करें जिस से हमारे इस देश वासियों का उपकार हो।

(२०) पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः। अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव ॥ १ ॥

(२१) भवभूतिः संबंधात् भूधर भूरेव भारती भाति। एतत्कृत कारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥ १ ॥

(२२) जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्। कवी इतिततोव्यासे कवयस्त्वयि दंडिनि ॥ १ ॥

प्रसिद्ध कवि कालिदास और दंडी को सर्द्धिनी दो स्त्रियां भी कवि हुई थीं। यथा—'नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता। वृथैव दंडिना प्रोक्तं सर्व शुक्ला सरस्वती॥, तथा 'सरस्वतीव कर्णाटीं विजयां का जयत्यसौ। या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम् ॥ १ ॥'

भास नामक कोई कवि नाटककार हुआ है किन्तु उस का नाटक प्रसिद्ध नहीं है। 'सूत्रधार-कृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ १ ॥' 'भासोहासः कवि कुलगुरुः कालिदासो विलासः ॥१॥

(२३) विक्रमादित्य के समय में इतिहासों के देखने से अत्यन्त गोलमाल मालूम होता है। परन्तु जिस विक्रमादित्य का सम्वत चलाया है वह १८ सौ से ऊपर हुए यह ठीक है परन्तु राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द (३) ने अपने इतिहास तिमिरनाशक तीसरा खंड में यों लिखा है।

यहां तक कि सन् ईसवी से ५७ बरस पहले विक्रम उज्जैन के शैव राजा ने दिल्ली फ़तह करके अपना अमल काश्मीर तक पहुंचाया और बौद्धमत को बड़ा धक्का लगाया ब्राह्मणों ने फिर बल पाया इस ने पण्डितों का नवरत्न बनाया कालिदास सब का शिरोमणि था उसी के समय में कुमार संभव

देव नामक राजा भोज के समय में था। अनन्त का पुत्र कलस हुआ जिस ने आठ बरस राज्य किया। इसका पुत्र हर्ष था जिसने कई दिन साथ राज्य किया था। कनिङ्हम के मत से हर्ष सन १०८८ ई० में और विल्सन के मत से १०५४ ई० में हुआ था। यद्यपि राजतरंगिणीकार ने हर्ष को

ग्रन्थ बना मृच्छकटिक नाटक भी सन् ईसवी के आरम्भ ही में रचा गया उस से उस समय का हाल बहुत मालूम होता है उस में वसंत नाम एक वेश्या के मकान की तारीफ़ लिखी है चौकठ रंगी हुई झाड़ू दी हुई पानी छिड़का हुआ बंदनवार बंधी हुई बालाखाना बलंद पीले झंडे गमलों में आम के पौधे पहले चौक में वेदपाठी ब्राह्मणों की तरह दर्बान ऊंघते कव्वे दही भात खाकर यज्ञ के बचे हुए खाने से बेपर्वा दूसरे चौक में इस्तबल उस में रथ के बैल लड़ाई के मेढ़े और बंदर बंधे हुए हाथी भात और घी के गोले खाते हुए तीसरे चौक में जवान जूआ खेलते हुए चौथे चौक में नाच गाना नाटक बाजा पांचवें चौक में रसोई तेल और हींग की बू से महका हुआ जानवरों की खालें धोई जाती हैं मिठाई और पकवान बन रहे हैं छठे चौक में दर्बाज़ा मिहराबदार जौहरी सुनार पटवे गहने बना रहे हैं हक्काक अपना काम कर रहे हैं कोई केसर की थैली सुखला रहा है कोई मुश्कनाफ़े हिलाता है कोई चन्दन का इत्तर निकाल रहा है कोई और और खुशबू की चीजें बना रहा है सातवें चौक में चिड़ियाखाना कबूतर तोते मैना कोयल मौजूद आठवें चौक में उस वेश्या का भाई रेशमी कपड़े पहने गहनों से चमचमाता हुआ लोटपोट कर रहा है मानों उस के हड्डी के जोड़ ही उखड़ गये हैं और उस की मा जामदानी का कपड़ा पहने तेल से चमकाते हुए पैरों में जूता ऐसी मोटी कि शायद वहां उसे बैठा कर उस मकान की दीवार बनायी थी बाग़ में बसंत टहल रही थी उस की सवारी के रथ पर पर्दे पड़े हुए थे चारुदत्त ब्राह्मण इस वेश्या का यार था चोरी करना भी विद्या में गिना जाता था एक ब्राह्मण चोर दीवार में जनेऊ से नाप कर शास्त्र के मूजिब स्वस्तिक और घड़े की शकल पर सेंध लगा रहा है राजा वेश्या के पीछे बाज़ार में दौड़ता है उसे घायल करता है एक बौद्ध भिक्षुक बचाता है आर्यक अहीर जिस की आंखें तांबे के रंग की लिखी हैं राजा को मार कर उज्जैन की गद्दी पर आप बैठता है जो हो इस में संदेह नहीं कि विक्रम के

कवि लिखा है और रिङ्गण और विल्हण कवि भी इस के समय में लिखे हैं

समय में शक (शक लोग नाग की पूजा करते थे और नाग ही उन का चिन्ह था कौन जाने यही यहां नागवंशियों की जड़ हुए हों रामगढ़ सिरगुजा के नागवंशी राजा अब तक अपनी मुहर में नागका चिन्ह खुदवाते हैं यूनान का पुराना इतिहासवेत्ता हेरोदोतस लिखता है कि शक लोग अपने तईं एक ऐसी स्त्री की औलाद बतलाते थे जिस का नीचे का धड़ सांप का था इसी से शायद इस देश वालों को नागकन्या का खयाल बंधा) हूण जट (Jits, Getes Geæ, Gæti तैमूर के समय तक यह तातार में वहां की एक कौम गिनी जाती थी) इत्यादि तातारी कौमों ने इस देश पर भारी चढ़ाई की थी और विक्रम ने उन से अच्छी लड़ाई जीती बरन इसीलिये वह शकारी कहलाया (विक्रम नाम के इतने आठ से अधिक) राजा हुए हैं कि उनके इतिहास मिलजुल जानेके कारन बहुत गड़बड़ होगये हैं यहां तक कि अकसर साहिब लोग संवत् को विक्रम का चलाया नहीं मानते हैं क्योंकि उस समय उज्जैन में किसी बड़े महाराजाधिराज विक्रम का कहीं कुछ पक्का पता नहीं मिलता एक बड़ा विक्रम सन् ५०० और ६०० ईसवी के बीच में महाराजाधिराज हुआ मातृगुप्त को भेज के कश्मीर फतह किया वहां का राजा तोरमान कैद हो गया लेकिन विक्रम के मरने पर और मातृगुप्त के काशीवास करने को चले आने पर तोरमान के बेटे प्रवरसेन ने कश्मीर से निकल कर विक्रम के बेटे शीलादित्य को कैद कर लिया और जिस तरह नादिरशाह दिल्ली से तख़ताउस ले गया था विक्रम का बत्तीस पुतलियों वाला सिंहासन उठा ले गया एक साहिब ऐसा भी अनुमान करते हैं कि यही संवत् गुप्तों के राज से चला था बीच में लुप्त हो गया था फिर किसी गुप्त विक्रम ने जारी किया इसी से विक्रम का कहलाया कौन जाने यही बड़ा विक्रम दूसरा चंद्रगुप्त विक्रम रहा हो. वराहमिहिर का समय सन् ५८७ ईसवी ठीक निश्चय हो गया है वह इसी विक्रम के समय में हुआ जिस ने सन् ५०० और ६०० के बीच में राज किया और अमरसिंह को कोशकर्त्ता और कालिदास कवि भी वराहमिहिर के साथ इसी विक्रम की सभा के रत्न थे एक पण्डितमातृगुप्तही को कालिदास ठहराते हैं) लेकिन सन् ईसवी से कोई २६ बरस पहले यहां सिंध मालवा इत्यादि देशों में तातारियों का राज हो गया था इन के सिक्कों से जो मिलते हैं मालूम होता है कि वह

किन्तु धावक का नाम तथा रत्नावली इत्यादि के बनने का प्रसंग कोई नहीं लिखा। राजतरंगिणीकार के मत से हर्ष के समय अत्यन्त उपद्रव रहा और चारों ओर राजकुमार तथा उच्चकुल के लोगों के रुधिर की नदी बहती थी। हर्ष श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वति की भांति मूर्ति पूजा के भी विरुद्ध था इसी हेतु प्रजा उसको तुरुष्क पुकारती थी। इन बातों से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि या तो धावकवाला श्रीहर्ष दूसरा है कश्मीर का नहीं

आग पुजते थे क्योंकि उन के देवता अर्देथो (Ardethro) अर्थात् अग्निदेव की जो उन पर तसवीर है उस के कंधों से अग्नि की शिखा निकल रही है और फिर पिछले सिक्कों पर शिव की मूर्ति भी त्रिशूल हाथ में लिये नंदी के सहारे से खड़ी है परंतु आंख दो और सिर में अग्नि की शिखा प्रज्वलित दूसरी ओर उन्हीं सिक्कों पर हलिओस (Helios) अर्थात् हरि: अर्थात् सूरज माओ (Mao) अर्थात् माह अर्थात् चांद और नानाइआ (Nanaia) अर्थात् नानदेवी खुदा हुआ है इसी नानदेवी को अब अफ़ग़ानिस्तान वाले बीबी नानी कहते हैं और याज्ञवल्क्य स्मृति में इन्हीं सिक्कों को नानक वा नाणक (इस दलील से यह ग्रन्थ विक्रम से पीछे बना मालूम होता है) लिखा है कनर्की राजा का जो सिक्का मिला है उस पर बुद्ध की मूर्ति है लेकिन अग्नि की शिखा के साथ यह वही राजा है जिसे बौद्ध और ब्राह्मणों ने कनिष्क (पिशावर के पास मनिकयाला का स्तूप इसी कनिष्क का बनवाया है सन् ईसवी से ३३ बरस पहले के रूसी सिक्के उस में से निकले हैं) लिखा है राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्मीर में तीन राजा तुरुष्क अर्थात् तुर्क वंश के हुए और लंका के इतिहास वाले लिखते हैं कि इन तीनों का नाम हुष्क जुष्क और कनिष्क था नगर विहार स्तूप और विद्यालय बनाये बौद्धमत को रौनक़ दी नागार्जुन तांत्रिक योगी जिस का नाम नागसेन भी लिखा है और विदर्भ में जनमा था उन का गुरू था नागार्जुन के चेले माध्यमिक कहलाये इस ने कश्मीर में बौद्धों का चौथा संघ अर्थात् समाज किया तातार से ले के यवद्वीप (Java) तक बुद्ध का मत फैलाया चीन वाले इन राजा को ऐसा जबर्दस्त लिखते हैं कि उन्हों ने ओल में चीनसे शाहज़ादे मंगाये। जाड़े में हिन्दुस्तान में बहार में कंधार में और गर्मी में काबुल के उत्तर कोहिस्तान में रहते थे निदान इन तुरुष्कवंशी राजाओं ने बौद्ध शैव और अग्नि पूजन को खूब मिलाया मानों तीनों को एक मत कर डाला। गुप्तराजा—लेकिन

या मालविकाग्निमित्रकार कालिदास वह जगत् प्रसिद्ध शकुन्तला

सन् १४४ ईसवी से अर्थात् बौद्ध राजा मेघवाहन के मरने से बौद्धों का असली ज़ोर घटने और ब्राह्मणों का बढ़ने लगा था जब फाहियान आया गुप्त वंशी दूसरा चंद्रगुप्त विक्रम सारे भारतवर्ष का महाराजाधिराज था यह शायद आखिरी बौद्ध चक्रवर्ती राजा हुआ वह समुद्र गुप्त पराक्रम का जिसका नाम सैदपुरभितरी और इलाहाबाद की लाटों पर खुदा है बेटा था और उस के दादा पहले चंद्र के दादा गुप्त से गुप्त संवत् गिना जाता था (अभी हम लिख आये हैं कि "एक साहिब ऐसा भी अनुमान करते हैं कि यहां संवत् गुप्तों के राज से चला था बीच में लुप्त हो गया था फिर किसी गुप्त विक्रम ने जारी किया इस से विक्रम का कहलाया" सो वह विक्रम यही दूसरा चंद्रगुप्त हो सकता है विक्रम अथवा विक्रमादित्य उस का खिताब था और इसी तरह शीलादित्य अवश्य उस के बेटे कुमार गुप्त महेन्द्र का खिताब रहा होगा इस से पहले कहीं विक्रम के नाम से किसी संवत् का कुछ पता नहीं लगता है अबूरैहां लिखता है فاما كوبت كال فكان كما قيل قوما الشرارا اقوايا فلما انقرضوا ارح بہم و کان باب کال اخیرهم اول تاریخهم ایضا متاخرین عن شک کال और टाड साहिब के बमूजिब सोमनाथ में एक पत्थर पर संवत् (۱۱۶۱ १३२० और वलभी ८४५ और हिजरी ६६२ लिखाहुआ मिला है पस मुताबकत बहुत अच्छी हो जाती है अर्थात् ईसवी सन् ३१८ अर्थात् गुप्त संवत् ३७६ में कि विक्रम के संवत् के बराबर है गुजरात से गुप्तों के निकलने पर गुप्त संवत् लुप्त हो कर वलभी का संवत् शुरू हुआ जब विक्रम ने गुप्त संवत् का उद्धार करके उसे फिर चलाया वह अर्थात् गुप्तसंवत् अर्थात् विक्रम का चलाया संवत् १३२० वलभी संवत् ८५४ के जैसा कि पत्थर पर लिखा है बराबर आया ।) इसी दूसरे चंद्रगुप्त विक्रम के पोते स्कन्दगुप्त का कीर्तिस्तंभ गोरखपुर के ज़िले में सलीमपुर मझौली के पास कुहाव गांव में अब तक मौजूद है उस में लिखा है कि एक सौ राजा उस के सामने सिर झुकाते थे स्कन्दगुप्त के बाप कुमारगुप्त महेन्द्र की तसवीर जो उस के सिक्के पर है उस से ज़ाहिर है कि वह चौड़ी मुहरी का पाजामा और बुतामदार कोट पहनता था गुप्त राजाओं के सिक्कों पर अकसर शिव पार्वती नंदी मयूर सिंह [मयूर कार्तिकेय का वाहन है और सिंह पार्वती का और नन्दी शिव का यह तो हर कोई जानता है] इत्यादि का चिन्ह मिलता है समुद्रगुप्त और

कालिदास नहीं। दूसरी बात विशेष सम्भव बोध होती है क्योंकि शकुन्तला और मालविकाग्नि मित्र की संस्कृत ही में भेद नहीं काव्य की उत्तमता मध्यमता में भी आकाश पाताल का बीच है।

राजतरंगिणी में लिखा है कि काश्मीर के राजा तुंजीन के समय में चन्द्रक कवि ने बड़ा सुन्दर नाटक बनाया। यह तुंजीन राजतरंगिणी के हिसाब से गत कलि ३५८२ में अर्थात् आज से १४०२ वर्ष पहले, ट्रायर के मत से १०३ ई० पूर्व अर्थात् आज से १९८६ बर्ष पहले, कनिङ्हम के मत से ईसवी सन ३१९ में अर्थात् १५६४ वर्ष पहले, विल्सन के मत से १०४ ई० पूर्व अर्थात् १९८७ वर्ष पहले, विल्फर्ड के मत से सन् ५४ ईसवीमें अर्थात् १८२९ वर्ष पहले हुआ था॥

जिन जिन संस्कृत नाटकों की स्थिति मुझको उपलब्ध हुई है उन की

स्कन्दगुप्त दोनों निश्चय वैदिक और शैव थे सन् ३१९ ईसवी में इन गुप्तों को सेन राजाओं ने गुजरात से निकाल दिया और अपनी राजधानी बलभी [कहते हैं कि बलभी का राज सन् २०० ईसवी से कुछ पहले सूर्यवंशी कनकसेन ने अवध से जा कर जमाया था] का संवत् क़ाइम किया यह सेन भी बड़े नामी राजा हुए निदान ह्वांत्सांग के समय तक अर्थात् सन् ६०० ईसवी से इधर तक बौद्धमत मध्यदेश में बना रहा फिर घटते घटते ऐसा घटा कि सन् बारह तेरह सौ ईसवी से भारतवर्ष में उस नाम को भी बाक़ी न रहा ह्वांत्सांग लिखता है कि बनारस में १०० शिवालय और १०००० शैव मौजूद थे और विहार कुल लोस और बौद्ध पांच हज़ार से भी कम रह गये थे इस में संदेह नहीं कि कन्नौज के भवभूति ने सन् ७२० ईसवी में जो मालती माधव नाटक बनाया है उस में लिखा है कि विहार के राजा का लड़का माधव न्याय सीखने के लिये उज्जैन में एक बौद्ध गुरनी के पास गया और वहां मन्त्री की लड़की मालती भी पढ़ने को आती थी परन्तु दिल्ली में तोमर कन्नौज में राठौर महोवे में चंदेल सब शैव और वैष्णव थे बुद्ध ने चाहा था कि ज्ञान जो बुद्ध से परे और केवल अनुभव सिद्ध है और थोड़ों को प्राप्त हो सकता है सब को दान दे और इन सब लोगों का हाल यह है। मोटी बात चाहते हैं जो दिखलाई दे उसी की पूजा करते हैं निदान यही मूर्ति और प्रतिमा पूजन की जड़ हुई यहां तक कि स्तूप वृक्ष पत्र राख हड्डी ईंट पत्थर इत्यादि सब पुजने लगे।

एक तालिका प्रकाश की जाती है। इन में * ऐसा चिन्ह जिन पर दिया है वे नाटक मेरे पढ़े हुए हैं और छपे भी हैं और जिन पर × ऐसा चिन्ह है वे मेरे पढ़े तो हैं किन्तु छपे नहीं हैं और शेष भारतवर्ष में मिलते तो हैं किन्तु मेरे देखे हुए नहीं। इन्हीं नाटकों में कोई कोई ऐसे भी होंगे जो मृच्छकटिक के पूर्व के बने होंगे किन्तु अब इस बात का पता नहीं लग सकता है। यह सारी सृष्टि दो हजार बरस की है। जिस काल के अनन्त उदर में हम आर्यों के अनन्त ग्रन्थ रत्न गल पच गए वहां इस के पूर्व के नाटक भी गए। कालिदास भवभूति प्रभृति महा कवियों के जीवनचरित स्वतंत्र आलोच्य विषय हैं इस हेतु यहां नहीं लिखे गए।

अथ संस्कृत नाटक तालिका।

शाकुन्तल,*	(कालि दास)
मालविकाग्निमित्र,*	"
विक्रमोर्वशी,*	"
मालतीमाधव,*	(भवभूति)
महावीरचरित,*	"
उत्तरराम चरित,*	"
रत्नावली,*	(श्रीहर्ष)
नागानन्द,*	"
प्रियदर्शिका*	"
धूर्त्तसमागम,*	(राज शेखर)
कर्पूरमञ्जरी, ×	"
विद्धशालभञ्जिका,*	
प्रचण्डपाण्डव ...	
बालरामायण,* ...	
प्रसन्नराघव,* ...	(जयदेव)
अनर्घराघव,* ...	(मुरारि)
पुष्पमाला, ...	(चन्द्र शेखर)
उदात्तराघव ...	
महारामायण,	
अङ्गदनाटक,	
हनुमन्नाटक ...	
मुद्राराक्षस* ...	[विशाखदत्त]
वेणीसंहार,* ...	[नारायण भट्ट]
धनंजयविजय* ...	(कांचन]
मृच्छकटिक* ...	[शूद्रक]
जामदग्न्यजय ...	
समुद्रमथन ...	
त्रिपुरदाह ...	
शारदातिलक ...	[शङ्कर]
ययातिचरित ...	[रुद्रभट्ट]
ययातिविजय ...	
ययातिशर्म्मिष्ठा ...	
मृगाङ्कलेखा	(त्रिमल्लदेव के पुत्र विश्वनाथ]
हास्यार्णव + ...	
विदग्धमाधव × ...	[रूपगोस्वामि)
राधामाधव ...	

पारिजातक ...
कमलिनीकलहंस [चूड़ामणिदीक्षित)
तमोसंवरण [त्रावङ्कोरराज]
मालमङ्गलभाण ... (मालमङ्गल)
कलावती कामरूप...
नग्नभूपतिग्रह नाटक ...
प्रियदर्शना ...
यादवोदय ...
वालिवध ...
अनेकमूर्त्ति ...
मयपालिका ...
क्रीड़ारसातल ...
कनकावतीमाधव ...
बिन्दुमती ...
केलिरैवतक ...
कामदत्ता ...
सुदर्शनविजय ...
वासन्तिकापरिणय ...
चित्रयज्ञ [वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य]
वृषभानुजानाटिका × [मथुरादास कायस्थ]
ऊषारागोदया × (रुद्रचन्द्रदेव)
मल्लिकामारुत* (उद्दण्ड)
वसन्ततिलकाभाण* [वरदाचार्य]
मुकुन्दानन्द × ...
नटक मेलक प्रहसन* ...
दानकेलिकौमुदी × ...
अभिराममणि (सुन्दरमिश्र)
मधुरानिरुद्ध [चन्द्रशेखर]

कंसवध × (कृष्णकविशेष)
प्रद्युम्नविजय {शङ्करदीक्षित बाल-कृष्णदीक्षित के पुत्र
श्रीदामचरित, धूर्त्तनर्त्तक } साम्राज्यदीक्षित
कौतुक सर्वस्व (गोपीनाथ पं०)
प्रबोधचन्द्रोदय* (कृष्णमिश्र)
चैतन्यचन्द्रोदय* (कर्णपूर)
सङ्कल्पसूर्योदय × (वेदान्ताचार्य)
रामाभ्युदय ...
कुन्दमाला ...
सौगन्धिकाहरण ...
रैवतकमदनिका ...
कुसुमशेखरविजय ...
नर्मवती ...
विलासवती ...
शृङ्गारतिलक (रुद्रभट्ट)
देवीमहादेव ..
ताराशशाङ्क (श्रीधर)
चण्डकौशिक* (आर्यक्षेमीश्वर]
जानकीराघव ...
रुक्मिणीपरिणय + [रामचन्द्र]
गृहवृत्तनाटिका ...
कुलपत्यङ्क ...
वध्यशिला ...
तरङ्गदत्त [प्रकरण] ...
लीलामधुकर ...
दूताङ्गद × ...
मुण्डितप्रहसन × [सुभट]

नाटकसर्वस्व ...
उदयनचरित ...
छल्यारावण ...
रामाभिनन्द ...
रामचरित ...
चन्द्रकला [विश्वनाथ]
प्रभावतीपरिणय ...
पार्वतीस्वयम्वर ...
सुभद्राविजय ...
सुभद्राहरण ...
भैमीपरिणय ...
रुक्मिणीकल्यान [चूड़ामणि]
वसुमतीचित्रसेन ...
विद्यापरिणय [वेदकविस्वामि]
अहल्यासङ्क्रन्दन ...
आनन्दविलास ...
सेवन्तिकापरिणय ...
कनकवल्लीपरिणय ...
रामनाटक ...
सुभद्राधनञ्जयविजय [गुरुराम]
वकुलमालिनी परिणय [कृष्णदीक्षित]
वसन्तभूषणभाण ...
इन्दिरापरिणय ...
कल्याणीपरिणय ...
कुसुमबाणविलास ...
भट्टचरित्रनाटक ...
मरकतवल्लीपरिणय ...
चूड़ामणि नाटक ...
सामवत नाटक (प० अम्रि...

व्यास साहित्याचार्य)
सौगन्धिकाहरण ...
कुसुमशेखरविजय ...
छलितराम ...
कान्दर्पकेलि ...
स्तम्भितरम्भ ...
विजयपारिजात वा आसामविजय* } (हरिजीवन)
पुष्पदूषितक (प्रकरण)
ललिता नाटिका ...
जानकीपरिणय × (रामभद्रदीक्षित)
माधवाभ्युदय (वेदान्ताचार्य)
प्रद्युम्नानन्दीय (वेङ्कटाचार्य)
पञ्चबाणविजय ...
रविकिरणकूर्चिका ...
सुभद्राधनञ्जय (गुरुराम)
कन्यामाधव ...
त्रिपुरारि ...
सत्यभामापरिणय (कृष्णकवीन्द्र)
भिक्षाटन नाटक ...
मल्लाङ्ग नाटक ...
संवरणा नाटक ...
सीताराघव नाटक ...
हरिश्चन्द्रयशश्चन्द्रिका
नरकासुरव्यायोग ...
अरुणामोदिनी ...
हृन्नाटक ...
काशिदासप्रहसन ...
अम्बालभाण (श्रीवरदाचार्य)

कृष्णभक्तिचन्द्रिका नाटक × (अनन्तदेव)	चन्द्रप्रभा × ...
आनन्द चन्द्रिका (विद्यानिधि)	कर्णसुन्दरीनाटिका ...
पार्थ पराक्रम ...	रतिवल्लभ × (जगन्नाथ पंडितराज)
भर्तृहरिनिर्वेद ...	जगन्नाथ वल्लभ नाटक
धर्मविजयनाटक × (शुक्लभूदेव)	ध्रुवचरित्र * (पं. दामोदर शास्त्री)
सत्सङ्गविजयनाटक × (वैद्यनाथ)	

अथ भाषा नाटक ।

हिन्दी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में ग्रन्थ की सृष्टि हुए पचीस वर्ष से विशेष नहीं हुए। यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदान्त विषयक भाषा ग्रन्थसमयसार नाटक, ब्रजवासीदास प्रभृति के प्रबोध चन्द्रोदय नाटकके भाषा अनुवाद, नाटक नाम से अभिहित हैं किन्तु इन सबों की रचना काव्य की भांति है अर्थात् नाटक रीत्यनुसार पात्र प्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। भाषा कवि कुल मुकुट माणिक्य देव कविका 'देवमाया प्रपंच नाटक' और श्रीमहाराज काशिराजकी आज्ञा से बनाहुआ प्रभावती नाटक तथा श्री महाराज विश्वनाथ सिंह रीवां का आनन्द रघुनंदन नाटक यद्यपि नाटकरीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमों का प्रतिपालन इन में नहीं है और छन्द प्रधान ग्रन्थ हैं। विशुद्ध नाटक रीति से पात्र प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है। इस में इन्द्र को ब्रह्महत्या लगना और उसके अभाव में नहुष का इन्द्र होना, नहुष का इन्द्रपद पाकर मद, उसकी इन्द्रानी पर काम चेष्टा, इन्द्रानी का सतीत्व, इन्द्रानी के भुलावा देने से सप्त ऋषि को पालकी में जोत कर नहुष का चलना, दुर्वासा का नहुष को शाप देना और फिर इन्द्र का पूर्वपद पाना, यह सब वर्णित है। मेरे पिता ने बिना अंगरेजी शिक्षा पाए इधर क्यों दी यह बात आश्चर्य की नहीं उनके सब विचार परिष्कृत थे। बिना अं जी की शिक्षा के भी उन को वर्त्तमान समय का स्वरूप भली भांति वि था। पहले तो धर्म ही के विषय में ही वह इतने परिष्कृत थे कि वैष्ण व्रत पूर्वपालन के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उठा दि

थे। टामसन साहेब लेफ्टिनेंटगवर्नर के समय काशी में पहला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को उन्हों ने उस स्कूल में प्रकाश रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय में बहुत ही कठिन था क्योंकि इस में बड़ी ही लोक निन्दा थी। हम लोगों को अंगरेजी शिक्षा दी। सिद्धान्त यह कि उनकी सब बातें परिपक्व थीं और उनको स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है। नहुष नाटक बनने का समय मुझ को स्मरण है। आज पचीस बरस हुए होंगे जब कि मैं सात बरस का था नहुष नाटक बनता था। केवल २७ वर्ष की अवस्था में मेरे पीता ने देह त्याग किया किन्तु इसी अवसर में चालीस ग्रन्थ (जिनमें बलरामकथामृत, गर्गसंहिता, भाषावाल्मीकि, जरासन्धवध महाकाव्य और रसरत्नाकर ऐसे बड़े बड़े भी हैं) बनाए॥

हिन्दी भाषा में दूसरा ग्रन्थ वास्तविक नाटकाकार राजा लक्ष्मण सिंह का शकुन्तला नाटक है। भाषा के माधुर्य आदि गुणों से यह नाटक उत्तम ग्रन्थों की गिनती में है। तीसरा नाटक हमारा विद्या सुन्दर है। चौथे के स्थान में हमारे मित्र लाला श्रीनिवासदास का तप्ता संवरण, पंचम हमारा वैदिकीहिंसा. षष्ठ प्रियमित्र बाबू तोताराम का केटो कृतान्त और फिर तो और भी दो चार कृतविद्य लेखकों के लिखेहुए अनेक हिन्दी नाटक हैं। सर विलियम म्योर (२४) साहिब के काल में अनेक ग्रन्थ बने हैं क्योंकि वे ग्रन्थ बनाने वालों को पारतोषिक देते थे। इसी से रत्नावली भी हिन्दी में बनी (२५) और छपी है किन्तु इसकी ठीक वही दशा है जो पारसी नाटकों की है।

---

(२४) सन् १८७६ ईस्वी जुलाई में मैंने भी एक कवित्त भेजा था जिस पर इन्हों ने अनेक धन्यवाद दिया था। जो कवित्त मैं ने भेजा था वह यह है।

देखि भूमि हरित अधिक हरखात गात ईस कृपा जल सौं विसेस सुख छाके हौ। सबै तुम्हैं मोर कहैं सहज सनेह बस प्रजा दुख दलन सहस्र दृग ताके हौ॥ आसुतोस ऐसे आसु तोसत सबन तुम याहीं तें जगत नीलकंठ बने बांके प्रजा के चासत अनेक खल सर्पन सर्दप तुम बलभ मयूर सुख पूरके दूरे॥

(२५) उलथा क्वीन्स कालेज के संस्कृत प्रोफेसर पण्डित देवदत्त तिवारी ने मूल सहित महाशय देवकोश अर्थात् अमर कोश भाषाविवरण भी हैं।

काशी में पारसी नाटक वालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उस में धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खेमटेवालियों की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक मटक कर नाचने और पतरी कमर बलखाय यह गाने लगा तो डाक्टरथिबो बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान यह कर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं। यही दशा बुरे अनुवादों की भी होती है। बिना पूर्व कवि के हृदय से हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध झख मारनाही नहीं कवि की लोकान्तर स्थित आत्मा को नर्क कष्ट देना है।

इस रत्नावली की दुर्दशा के दो चार उदाहरण यहां दिखलाये जाते हैं।

यथा 'तब यह प्रसंग हुआ कि जौगन्धरायण प्रसन्न हो कर रंगभूमि में आया और यह बोला' 'और गान कर कहता है कि अए मदनिके' अब कहिए यह राम कहानी है कि नाटक ?

और आनन्द सुनिये 'जो आज्ञा रानी जी की ऐसा कर तैसा ही करती है' हहाहाहा ! ! !

एक आनन्द और सुनिए। नाटकों में कहीं कहीं आता है 'नाट्ये नोपविश्य' अर्थात् पात्र बैठना नाट्य करता है। उसका अनुवाद हुआ है 'राजा नाचता हुआ बैठता है' 'नाट्येनोल्लिख्य' की दुर्दशा हुई है 'ऐसे नाचते हुई लिखती है' ऐसे ही 'लेखनी को लेकर नांचती हुई' 'निकट पैठ कर नाचती हुई' ॥

और आनन्द सुनिए 'इतिविष्कम्भकः' का अनुवाद हुआ है 'पीछे विष्कुम्भक आया' धन्य अनुवाद कर्त्ता ! और धन्य गवर्न्मेंट जिसने पढ़ने वालों की बुद्धि का सत्यानाश करने को अनेक द्रव्य का श्राद्ध कर के इसको छापा ! ! !

गवर्न्मेंट की तो कृपादृष्टि चाहिए योग्यायोग्य के विचार की आवश्यकता नहीं। फालेन साहब की डिक्शनरी के हेतु आधे लाख रुपये से विशेष व्यय किया गया तो यह कौन बड़ी बात है। 'सेत सेत सब एक से जहां कपूर कपास'। यहां तो 'भेंट भए जय साहि सों भाग चाहियत(क्यों बात है। किन्तु ऐसी दशा में अच्छे लोगों का परिश्रम व्य बिना २ क्योंकि 'आंधरे साहिब की सरकार कहां लौं करै चतुराई भांति वि।

यद्यपि हिन्दी भाषा में दस बीस नाटक बन गए हैं ज्ञात थे कि वैस हैंगे कि अभी इस भाषा में नाटकों का बहुत ही अभाव घर से उठा दि.

काल की क्रमोन्नति के साथ ग्रन्थ भी बनते जायंगे। और अपनी सम्पत्ति शा-लिनी ज्ञान हृद्धा बड़ी बहुन बंग भाषा के अक्षय रत्न भांडागार की सहायता से हिन्दी भाषा बड़ी उन्नति करै।

यहां पर यह बात प्रकाश करने में भी हम को अतीव आनन्द होता है कि लण्डन नगरस्थ श्रीयुत् फ्रेडरिक पिनकाट साहब ने भी (२६) शकुन्तला का हिंदी भाषा में अनुवाद किया है। वह अपने २० मार्च के पत्र में हिंदी ही में मुझ को लिखते हैं 'उस पर भी मैंने हिंदी भाषा के सिखलाने के लिए कईएक पोथियां बनाई हैं। उन में से हिंदी भाषा में शकुन्तला नाटक एक है।

हिंदी भाषा में जो सब से पहला नाटक खेला गया वह जानकीमंगल था। स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्य नारायण सिंह के प्रयत्न से चैत्र शुक्ल ११ संवत् १९२५ में बनारस थिएटर में बड़ी धूमधाम से यह खेला गया था। रामायण से कथा निकाल कर यह नाटक पंडित शीतला प्रसाद त्रिपाठी ने बनाया था। इस के पीछे प्रयाग और कानपुर के लोगों ने भी रणधीर प्रेम मोहिनी और सत्य हरिश्चंद्र खेला था। पश्चिमोत्तर देश में ठीक नियम पर चलनेवाला कोई आर्य शिष्टजन का नाटक समाज नहीं है।

अथ हिन्दी नाटक तालिका।

नहुषनाटक	(श्रीगिरधरदास)	अन्धेर नगरी	(हरिश्चन्द्र)
शकुंतला	(राजा लक्ष्मणसिंह)	विषस्य विषमौषधम्	,,
,,	(फ्रेडरिक पिंकाट साहब)	सती प्रताप	,,
मुद्राराक्षस	(हरिश्चन्द्र)	चन्द्रावली	,,
सत्य हरिश्चन्द्र	,,	माधुरी	,,
विद्या सुन्दर	,,	पाखंड विडम्बन	,,

(२६) इनसे मुझे संस्कृत, नागरीकी उन्नति होनेकी अधिक आशा है क्योंकि इन्हों ने [illegible]त हिन्दी के अनेक ग्रन्थ पुराचीन और नवीन संग्रह किए हैं और [illegible] संस्कृत हिन्दी के उन्नति चाहते हैं। मैं हिन्दी का यह सौभाग्य [illegible]ायक मित्र मिलने से हिन्दी रसिकों को भी अभिमान [illegible] पुराचीन ग्रन्थों के प्रकाश के लिये यत्न कर रहे हैं जो [illegible] इनके कई पत्रोंका संग्रह हिन्दी भाषा में है देखिये।

बने बांकि हो। प्रजा के हो॥ (२५) इसको उलथा किया है। मूल सहित के कर्ता

नवमल्लिका (हरिश्चन्द्र)
दुर्लभबंधु ,,
प्रेमजोगिनी ,,
जैसा काम वैसा परिणाम,,
कर्पूर मंजरी ,,
नील देवी ,,
भारत दुर्दशा ,,
भारत जननी ,,
धनंजय विजय ,,
वैदिकी हिंसा ,,
बूढ़ मुंह मुंहासे लोग चलेतमासे (बूड़ो शालिकेर का अनुवाद) } बाबू गोकुलचंद
अद्भुत चरित वा गृहचंडी (श्रीमती)
तप्ता संवरण (लाला श्रीनिवास दास)
रणधीर प्रेम मोहिनी ,,
कोटो कृतांत (बाबू तोताराम भारतबंधु सम्पादक)
सज्जाद सुम्बुल (बाबू केशोराम भट्ट विहारबंधु सम्पादक)
शमशाद सौसन ,,
जय नारसिंह की (पं० देवकी नंदन तिवारी प्रयाग समाचारपत्र सम्पादक)
होली खगेश ,,
चक्षुदान ,,
पद्मावती, शर्मिष्ठा, चंद्रसेन } (पं० बालकृष्ण भट्ट हिन्दी प्रदीप सम्पादक)
सरोजिनी (पं० गणेश दत्त)
,, (राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु सम्पादक)

मृच्छकटिक (पं० गदाधर भट्ट, मालवीय)
,, (पं० दामोदर शास्त्री)
,, (बाबू ठाकुरदयाल सिंह)
वारांगना रहस्य बाबू बद्रीनारायण चौधरी आनंद कादम्बनी के सम्पादक)
विज्ञान विभाकर (पं० जानी विहारी लाल)
ललिता नाटिका (पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य वैष्णव पत्रिका और पियूष प्रवाह के सम्पादक)
देव पुरुष दृश्य ,,
वेणीसंहार नाटक ,,
गोसंकट ,,
जानकी मंगल (पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी)
दु:खिनी बाला (बाबू राधाकृष्णदास)
पद्मावती ,,
महारास (महाराजाधिराज कुमार लालखड्ग बहादुरमल्ल युवराज मझौली राज)
रामलीला ७ कांड (पं. दामोदरशास्त्री विद्यार्थि सम्पादक)
बाल खेल ,,
राधा माधव ,,
वेनिस का सौदागर (बाबू बालेश्वर प्रसाद काशी पत्रिका सम्पादक)
,, बाबू ठाकुरदयाल सिंह

योरप में नाटकों का प्रचार।

योरप में नाटकों का प्रचार भारतवर्ष के पीछे हुआ है। पहिले दो मनुष्यों के सम्वाद को ही वहां नाटकों का सूत्रपात मानते हैं। प्राचीन ईसाई धर्म पुस्तक में 'बुक अव जाब' और सुलैमान के गीतों में ऐसे संबाद मिलते हैं किन्तु इनके अतिरिक्त हिब्रू भाषा में और कोई प्राचीन नाटक का ग्रन्थ नहीं। योरप में सब से प्राचीन नाटक यूनान में मिलते हैं और यह निश्चय अनुमान हुआ है कि भारतवर्ष से वहां यह विद्या गई होगी। यूनान में एथेन्स प्रदेश में नाटकों का प्रचार विशेष था और डायोनिसस (२७) नामक देवता के मेले में नाटक प्रायः खेले जाते थे। अनुमान होता है कि वैकस (२८) नामक देवता की पूजा से वहां इन का चलन हुआ। प्राचीन काल से यूरोप के नाटक वियोगान्त इन दो भागों में बटे हैं। आरिअन नामक कवि ने ५८० वर्ष ईसा के पूर्व्व वियोगान्त नाटक की सृष्टि की। ट्रैजिडी (Tragedy) शब्द बकरे से निकला है जिस से अनुमान होता है कि वैकस देवता के सामने बकरे का बलि दिया जाता था और उसी समय पहिले यह खेल आरम्भ हुआ इस से वियोगान्त नाटक की संज्ञा ट्रैजिडी हुई। (Comedy) कामिडी ग्राम शब्द से निकला है अर्थात् ग्राम्य सुखों का जिन में वर्णन हो वह कामेडी (संयोगान्त) है। थेसपिस ने (५३६ ई० पू०। प्रथम रंगशाला में एक शिष्य को वेश देकर मनुष्यों का सम्वाद पढ़वाया और उसी पात्र को फ्रिनिशश ने ५१२ ई० पू० पहले पहल स्त्री का वेश दे कर रंगशाला में सब को दिखलाया। इस के पीछे इशिलस के काल तक वियोगान्त नाटकों में फिर कोई नई उन्नति नहीं हुई॥

आरिअन ही के समय में बरन उसी के लाग पर सुसेरिअन ने संयोगान्त नाटकों का प्रचार सारे यूनान में फिर फिर कर किया और एक छोटी सी चलती फिरती रंगशाला भी उनके साथ थी। उस काल के ये नाटक अब के बंगाली यात्रा वा रास के से होते थे। उस समय में वियोगान्त नाटक गम्भीराशय और विशेष चित्ताकर्षक होने के कारण सभ्य लोगों में और संयोगान्त ग्राम्य लोगों में खेले जाते थे, । एपिकार्मस, फार्मस, मैग्निस, क्रेट्स, क्रेटनस, यूपोलिस, फेटिक्रेट्स और एलिस्टफेन्स ये सब उस काल के प्रसिद्ध

(२७) यह युद्ध का देवता था।

(२८) यह मद्य का देवता है। प्रिन्सिप साहब कहते हैं कि यह बलराम है।

कामिडी लेखक थे। बीच में लोगों ने संयोग वियोग मिला कर भी पुस्तकें लिख कर इस विद्या की उन्नति की।

वियोगान्त नाटक में इस्किलस सोफाकोलस और यूरुपिडिस ये तीन बड़े दक्ष हुए। इन कवियों ने स्वयं पात्रों को अभिनय करना सिखाया और स्वाभाविक भावभंगी दिखलाने में विशेष परिश्रम किया। अरस्तू ने इन्हीं तीनों कवियों को अपने ग्रन्थ में बड़ाई की है।

रोम वाले नाटक विद्या में ऐसे दक्ष नहीं थे। इन लोगों ने यूनान वालों ही से इस विद्या का स्वाद पाया। शोच का विषय है कि प्लाटस और टेरेन्स के अतिरिक्त इन कवियों में से किसी का न नाम मालूम है न कोई ग्रन्थ मिला। आगस्टस के प्रसिद्ध समय में रोम में इस विद्या की उन्नति हुई थी किन्तु सेनीका नामक नाटक के अतिरिक्त और किसी ग्रन्थ का नाम तक कहीं नहीं मिला। रोम के बड़े बड़े महलों और वीरों के साथ वहां की विद्या और कला भी धूल में मिल गई यहां तक कि उनका नाम लेने वाला भी कोई न बचा। जब रोम में क्रिस्तानी मत फैला तो ऐसे नाटक वा खेल राजनियम के अनुसार निषेध कर दिए गए। केवल पितापुत्र एपोलीनारी और ग्रेगरी ने इंजील से कथा भाग ले कर क्रिस्तानों का जी बहलाने को कुछ सवांग इत्यादि बनाए थे।

योरोप में इटलीवालों ने पहले पहल ठोक तरह से नाटक के प्रचार में उद्योग किया और रोम वालों के चित्त में फिर से मुरझाए हुए इस बीज को हरा किया। सोलहवीं शताब्दी में ट्रिसिनो कवि का सोफोनिस्बा नामक वियोगान्त नाटक पहले पहल छापा गया। आरिआस्टोबैबीना और मैकिआविली ने ट्रिसीनो की भांति और कई नाटक लिखे। इसी शताब्दी के अंत में गिएम्बाटिस्टालिआपोर्टा ने प्रहसन पहले पहल प्रकाश किया और इस में परिहास की बातें ऐसी सुसभ्यतासे वर्णन कीं कि लोगोंने नाटक की इस शैली को बहुत ही प्रसन्नता से स्वीकार किया। इसी समय में हिप्पी, बोरगिनी, ओडो और बुओनाटोरी ने जातीय स्नेह बढ़ानेवाले वीर रसाश्रित इतिहास के खेल लिखे और प्रचार किए। सतरहवीं शताब्दी में रिनुशिनी ने पहले पहल आपेरा (संगीत नाट्य) का आरम्भ किया। इस में उसने ऐसे उत्तम रीति से प्रेम देशस्नेह वीर और करुणा रस के गीत बांधे कि सब लोग और नाटकों को भूल कर इसी की ओर झुके। मैफी नामक कवि ने इस की और भी

उन्नति की। अब स्पेन फरासीस चारो ओर इसी गीतिनाट्य का चर्चा फैल गया। इस के पीछे जीनो, मेटेस्टेसिओ, गोलडोनी, मोलिएर, रिओबिनी, गोज्जी, गालडोनी, आलफीरी, मांटी, मान्‌जानी और निकोलिनी इत्यादि प्रसिद्ध कवियों ने पूर्व्वोक्त नाटकों के ऐसी उत्तमता से ग्रन्थ लिखे और नाट्य में ऐसी उन्नति की कि इटली इस विद्या में सारे योरप की गुरु मानी गई।

योरोप के और देशों में नाटकों के प्रचार को पादरियों ने बहुत रोका। जहां कोई नाटक खेलता ये पादरी उस को धर्म्मदण्ड देने को दौड़ते। विसेना, सान्तिलाना, नहारो और रूएडा नामक कवियों ने इस आपत्ति से बचने को अपनी लेखनी को धर्म्मविषय के नाटकों के लिखने पर परिचालित किया। विशेष कर के करवैन्टस ने अपने नाटक ऐसी उत्तमता से लिखे कि लोगों के चित्त से नाटकों की बुराई का संस्कार एक बारगी उठादिया। इस के पीछे काल्‌डिरन भी ऐसा ही उत्तम कवि हुआ कि उस को राजनियम विरुद्ध होने पर भी सैतीस बरस के वास्ते नाटक लिखने की राजाज्ञा मिली। ये दोनों कवि सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व्व भाग में हुए थे।

फरासीस में नाटकों के विषय में बहुतसा वादानुवाद होता रहा और इस के होनेके नियमों पर लोगों में बड़ा चरचा रहा किन्तु कोई बहुत उत्तम नाटक लेखक उस समय नहीं हुआ। जाडिली ने पहले पहल पांच अंक का एक वियोगान्त नाटक ठीक चाल पर बनाया और फरासीस के दूसरे हेनरी बादशाह के सामने वह खेला गया। चौदहवें लुइस के दरबार में कार्निली मालिएरी और रेसिनी क्रम से येकसे दूसरे अच्छे नाटक वाले हुए। इसके पीछे वालटायर बड़ा प्रसिद्ध हुआ और फिर चार पांच और प्रसिद्ध कवि हुए।

जर्मनी के नाटक के इतिहास में अठारवीं शताब्दी के आरम्भ तक कोई भी विशेष बात नहीं। लेसिंग ने पहले पहल अपनी धूम धाम की समालोचना में जर्मनी का ध्यान इधर फेरा। इस के पीछे गोथी और सिलर यह दो बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए।

इङ्गलैंड के नाटकों का इतिहास अत्यन्त शृङ्खला बद्ध है। पहले यहां केवल मत सम्बन्धी नाटक होते थे और इनका प्रबन्ध भी पादरियों के हाथ में रहता था। ये नाटक दो प्रकार के होते थे एक धर्म्म सम्बन्धी आश्चर्य घटनाओं के दूसरे शिक्षा सम्बन्धी इंगलैंड के। पुनस्संस्कार ने इन पुरानी बातों में कोई स्वाद बाकी न रक्खा। यहां तक कि सोलहवीं शताब्दी के मध्य में संयोग

और वियोग के नाटक स्वतंत्र रूप से वहां प्रचलित हुए। पहला संयोगान्तनाटक सन् १५५७ में निकोलसउडाल ने लिखा। ठीक उस्के दस बरस पीछे बीबी नोरटैन और लार्ड बकाहर्स्ट ने गारबुडाक नामक पहला वियोगान्त नाटक बनाया। उस के पीछे ग्रिन, किड, लाज, ग्रीस, लायली, पील, मार्लो और नैश इत्यादिक कई प्रसिद्ध नाटककार हुए। जगत् विख्यात शेक्सपीयर ने अपने वाक्य माधुर्य्य के आगे सब को जीत लिया। यह प्रसिद्ध कवि सन् १५६४ में स्ट्राटफ़ोर्ड वार्विक्शायरमें उत्पन्न हुआ। इसका पिता ऊनका व्यवसाय करता था और उस के दस लड़कों में शेक्सपीयर सब से बड़ा था। काल पा कर यह ऐसा प्रसिद्ध कवि हुआ कि पृथ्वी के मुख्य कवियों की गणना में एक रत्न समझा जाने लगा। इस को जैसी कविता शक्ति थी वैसीही विचित्र कथाओं को बांधने की भी शक्ति थी। जिसके मस्तिष्क में ये दोनों शक्तियां एकत्र हों उस के बनाए हुए नाटकों का क्या पूछना है। नाटक भी इसने बहुत बनाए और सब रस के। निस्सन्देह यह मनुष्य परमेश्वर की सृष्टि का एक रत्न हुआ है।

बेनजान्सन, ब्यूमौन्ट औरफ्लेचर ये तीन शेक्सपीअरके समकालीन प्रसिद्ध नाटककार हुए हैं। मैसिन्जर, फोर्ड और शरलीके काल तक इंगलैंडकी प्राचीन नाटक प्रणाली समाप्त होती है। सत्रहवीं शताब्दी के अन्तमें ड्राइडनने नए प्रणाली के नाटक लिखने आरम्भ किए। अठारवीं शताब्दी में ली, आटवे, ग्रे, कानग्रीव, सिबर, विचरली, वैनब्रो, फारक्वाहर, एडिसन, जान्सन, यंग, टामसन, खिलो, मूर, गैरिक गोल्डस्मिथ, कालमन्स, कम्बरलैंड, हालक्राफ्ट, बीबी इन्चवाल्ड, लूइस, मैटूरिन और मैच्यूरिन तथा आधुनिक कालमें शेरिडन नोल्स, बुलवरलिटन, लार्डबैरन, कालैरिज, हेनरी, टेलर, टालफोर्ड, जेरल्ड, ब्रूक्स, मार्स्टन, टाम टेलर, चार्लसरीड, राबर्टसन, विल्स वैरन, गिल्बर्ट, स्विनबर्न, टेनीसन और ब्रैनिंङ प्रसिद्ध नाटककार गद्यपद्य के कवि हुए हैं।

इंगलैंड में इन नाटक लिखने वालों के हेतु एक राजनियम है जिस से अपने जीवित समय में कवि लोग और उन के पीछे उन के उत्तराधिकारी कविस्वत्व का भोग कर सकते हैं।

इति।

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक।

संशोधित और परिवर्द्धित

"चन्द टरै सूरज टरै , टरै जगत व्यौहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को , टरै न सत्य विचार ॥"

उपक्रम ।

मेरे मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद बी० ए० ने मुझ से कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों के पढ़ने पढ़ाने के योग हो क्योंकि शृङ्गार रस के आप ने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं लड़कों को उन से कोई लाभ नहीं। उन्हीं की इच्छानुसार मैं ने यह सत्य हरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इस में सूर्य्य कुल सम्भूत राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। राजा हरिश्चन्द्र सूर्य्यवंश का अट्ठाइसवां राजा रामचन्द्र से ३५ पीढ़ी पहले त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शोभपुरनामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इस की कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपाल देव के समय में आर्य्य क्षेमीश्वर कवि ने चंडकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य ग्रन्थ में इस का नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। यह एक बेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन समेत उसकी जाफत अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूम धाम से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और गऊ के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिये। विश्वामित्र इस पराजय से उदास हो कर तप करनेलगे और महादेव जी से वरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आए। वशिष्ठ ने मंत्र के बल से एक ऐसा ब्रह्मदंड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हार कर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप कर के ब्राह्मण होना चाहिए और तप कर के अन्त में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गए। यह वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या कांड के ५२ से ६० सर्ग तक सविस्तर वर्णित है।

जब हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठ जी से कहा तो उन्हों ने उत्तर दिया कि यह अशक्य काम हम से न होगा। तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उनसे भी कोरा जवाब

पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं किया और हम को कोरा जवाब दिया इस से अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट हो कर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चांडाल हो जा। बिचारा त्रिशंकु चांडाल बन कर विश्वामित्र के पास गया और दुखी हो कर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने वैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोचकर राजा से प्रतिज्ञा किया कि इसी देह से तुमको स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुला कर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आये पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और कहा कि जहां चांडाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहां कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट हो कर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देख कर और बिचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मंत्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ भाग लेने न आये तो विश्वामित्र ने क्रोध से स्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु यज्ञ से कुछ काम नहीं तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आया चाहता है तो पुकारा कि अरे तू यहां आने के योग्य नहीं है नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा हो कर नीचे गिरा और विश्वामित्र से त्राहि त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तप बल से उसको वहां बीच ही में स्थिर रक्खा। कर्म्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नए बनाए और बहुत से जीव जन्तु फल मूल बना कर जब इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डर कर इनसे क्षमा मांगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रख कर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भांति प्रकाश मान स्थिर रख क्षमा किया। यह सब भी रामायण ही में है। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा इस से बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चांडाल के घर भीख मांगने गये और जब कुत्ते का मांस पाया तो उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इन के भयसे कांप गये और इन्द्र ने उस समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांति पर्व्व के १४१ अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की विपत्ति सुन कर क्रोध से वशिष्ठ जी ने उनको शाप दिया कि तुम बकुला हो

जाओ और विश्वामित्र ने यह सुनकर वशिष्ठ को शाप दिया कि तुम आड़ो † हो जाओ। पक्षी बनकर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया जिससे त्रैलोक्य कांप गया। अन्त में ब्रह्मा ने दोनों से मेल कराया। यह उपाख्यान मारकण्डेय पुराण के नवें अध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है। भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को व्याह किये देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और बेटा बहू देखने को उनके घर आए। उन दोनों ने पिता की पूजा किया और हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी वर मांग। सत्यवती ने यह वर मांगा कि मुझे तो वेद शास्त्र जानने वाला और मेरी माता को युद्ध-विद्या विशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कह कर ध्यान दे प्राणायाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए भृगु ने यह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वत्थ का आलिङ्गन करके खाय और तुम यह सफ़ेद चरु उसी भांति उदुम्बर का आलिंगन कर के खाना। भृगु के वाक्यनुसार सत्यवती ने कन्नौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी माता से सब कहा। उसकी माता ने यह समझ कर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरु दिया होगा जब ऋतुकाल आया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफ़ेद आप खाया। भगवान भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आ कर बहू से कहा कि तुमने चरु को उलट पुलट किया इस से तुम्हारा लड़का ब्राह्मण हो कर भी क्षत्रिय कर्म्मा होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण होजायगा सत्यवती ने जब ससुर से इस अपराध की क्षमा चाही तब उन्हों ने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रिय कर्म्मा होगा। वही राजा गाधि को तो विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदग्नि और जमदग्नि को परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिका पुराण के ८४ अध्याय में स्पष्ट है।

इन उपाख्यानों के जाने से इस नाटक के पढ़ने वालों को बड़ी सहायता मिलेगी। इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व्व पुरुष महाराज हरिश्चन्द्र भी थे यह समझ कर इस नाटक के पढ़ने वाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा॥

---

† किसी जाति का गिद्ध।

समर्पण ।

नाथ

यह एक नया कौतुक देखो । तुम्हारे सत्य पथ पर चलने वाले कितना कष्ट उठाते हैं यही इसमें दिखाया है । भला हम क्या कहैं ? जो हरिश्चन्द्र ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करैगा पर उस वंशही के नाते इन को भी मानना । हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है । बस इतनी ही सही । लो सत्य हरिश्चन्द्र तुम्हें समर्पित है अंगीकार करो । छल मत समझना सत्य का शब्द सार्थ है कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं हैं ॥

तुम्हारा

हरिश्चन्द्र ।

सत्यहरिश्चन्द्र ।

(मंगलाचरण)

दोहा ।

सत्यासक्त दयाल द्विज, प्रिय अघ हर सुखकन्द ।
जन हित कमला तजन जय, शिव नृप कवि हरिचन्द * ॥ १ ॥

(नान्दी के पीछे सूत्रधार † आता है)

सू० ।—अहा ! आज की संध्या भी धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सब की इच्छा है कि हिन्दी भाषा का कोई नवीन नाटक देखें। धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहां के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे भला वहां अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त तो हुई। परन्तु हा ! शोच की बात है कि जो बड़े २ लोग हैं और जिन के किये कुछ हो सकता है वे ऐसी अन्ध परम्परा में फंसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी खैर-ख़ाही दिखानी वा लम्बा चौड़ा गाल बजाना आता है (कुछ सोचकर) क्या हुआ, ढंग पर चला जायगा तो यों भी बहुत कुछ हो रहैगा। काल बड़ा बली है, धीरे २ सब आप ही कर देगा। पर भला आज इन लोगों को लीला कौन सी दिखाऊं। (सोच कर) अच्छा उनसे भी तो पूछ लें?। ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेषलड़ती है। (नेपथ्य की ओर देख कर) मोहना ! अपनी भाभी को ज़रा इधरतो भेजना।

(नेपथ्य में से, मैं तो आप ही आती थी कहती हुई नटी ‡ आती है)

---

* यह श्लेष शिव जी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पांच का वर्णन करता है।

† सूत्रधार हरे वा नीले रंग की सोटन का कामदार जांघिया पहिने उस के आगे पटुके की तरह कमरबन्द के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकाते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरज़ई, ऊपर माला वगैरह और सब गहिने, सिर पर टिपारा, पैर में घुंघरू, हाथ में छड़ी, वा पैजामा, काछनी, सिर पर मुकुट।

‡ महाराष्ट्री भेष, कमर पर पेटी कसे वा मर्दाना कपड़ा पहिने पर जेवर सब जनाने।

न० ।—मैं तो आप ही आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई थी उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिये आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहै तो मैं और सभों से कह के सावधान कर दूं।

सू० ।—आज का नाटक तो हमने तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है।

न० ।—इस लोगों को तो सत्यहरिश्चन्द्र आज कल अच्छी तरह याद है और उस का खेल भी सब छोटे बड़े को संज रहा है।

सू० ।—ठीक है यही हो। भला इससे अच्छा और कौननाटकहोगा। एक तो इन लोगोंने उसे कभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणा पूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उसका कवि भी हमलोगों का एकसाथ जीवन है।

न० ।—(लम्बी सांस ले कर) हा ! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण रूप न समझा। क्या हुआ "कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछें प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायँगी"।

सू० ।—इस में क्या सन्देह है। काशी के पण्डितों ही ने कहा है।

सब सज्जन के मान को, कारन इक हरिचन्द ।
जिमि सुभाव दिन रैन के, कारन नित हरिचन्द* ॥ २ ॥ †

और फिर उनके मित्र पण्डित शीतला प्रसाद जी ने इस नाटक के नायक से उन की समता भी की है इससे उन के बनाये नाटकों में भी सत्यहरिश्चन्द्र ही आज खेलने को जी चाहता है।

न० ।—कैसी समता मैं भी सुनूं।

सू० ।—जो गुन नृप हरिचन्द में, जग हित सुनियत कान ।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान ॥ ३ ॥ ‡

(नेपथ्य में)

अरे !

यहां सत्य भय एक के, कांपत सब सुर लोक ।
यह दूजो हरिचन्द को, कारन इन्द्र उर सोक ॥ ४ ॥

---

* हरि सूर्य्य।

† "विद्वज्जनप्रतिष्ठा कारणमेवं हरिश्चन्द्रः यद्वत् स्वभावगत्या दिनरात्र्योर्वा हरिश्चन्द्रः"।

‡ "श्रूयन्तेये हरिश्चन्द्रे जगदाल्हादिनो गुणाः। दृश्यन्तेते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने।"

सू० ।—(सुन कर और नेपथ्य की ओर देखकर) यह देखो ! हमलोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बनकर आ पहुंचा । तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना ।

प्रथम अङ्क ।

जवनिका उठती है ।

(स्थान इन्द्रसभा, बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ)

(इन्द्र ‡ आता है)

इ० ।—("यहां सत्य भय एक के" यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर उधर घूमता है)

(द्वारपाल * आता है)

द्वा० ।—महाराज ! नारद जी आते हैं ।

इ० ।—आने दो अच्छे अवसर पर आए ।

द्वा० ।—जो आज्ञा (जाता है)

इ० ।—(आपही आप) नारद जी सारी पृथ्वी पर इधर उधर फिरा करते हैं इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा । हम ने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि उस के धर्म्म की एकबेर परीक्षा तो लेनी चाहिए ।

(नारद जी † आते हैं)

इ० (हाथ जोड़ कर दण्डवत् करता है) आइए आइए धन्य भाग्य, आ किधर भूल पड़े ।

---

‡ जामा, क्रीट, कुण्डल और गहने पहने हुए, हाथ में वज्र (कई फल का छोटाभाला) लिये हुए ।

* छज्जेदार पगड़ी, चपकन, घेरदार पाजामा पहने, कमरबन्द कसे और हाथ में आसा लिये हुए ।

† धोती की लांग कसे, गाती बांधे, सिर से पांव तक चन्दन का खौर दिये, पैर में घुंघरू, सिर के बाल छुटे और हाथ में बीन लिये हुए । आने और जाने के समय "राम कृष्ण गोविन्द" की ध्वनि नेपथ्य में से हो ।

ना० ।—हमें और भी कोई काम है, केवल यहां से वहां और वहां से यहां, यही हमें है कि और भी कुछ ।

इ० ।—साधु स्वभावही से परोपकारी होते हैं विशेष करके आप ऐसे जो हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं । क्योंकि जो लोग गृहस्थ और कामकाजी हैं वे स्वभावही से गृहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं कि साधुसङ्गम तो उन को सपने भी दुर्लभ हो जाता है, न वे अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे न कहीं जायंगे ।

ना० ।—आप को इतनी शिष्टाचार नहीं सोहती । आप देवराज हैं और आप के संग की तो बड़े बड़े ऋषि मुनि इच्छा करते हैं फिर आप को सत्सङ्ग कौन दुर्लभ है । केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुंह देखा व्यापार होता है वैसेही बातें आप इस समय कर रहे हैं ।

इ० ।—हम को बड़ा शोच है कि आप ने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा । क्षमा कीजिये आप से हम बनावट नहीं करते । भला बिराजिये तो सही यह बातें तो होतीही रहेंगी ।

ना० ।—बिराजिये (दोनों बैठते हैं) ।

इ० ।—कहिये इस समय कहां से आना हुआ ।

ना० ।—अयोध्या से । अहा ! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है । मैं तो उस के निष्कपट और अकृत्रिम सुभाव से बहुतही सन्तुष्ट हुआ । यद्यपि इसी सूर्य्यकुल में अनेक बड़े बड़े धार्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्रही है ।

इ० ।—(आपही आप) यह भी तो उसी का गुण गाते हैं ।

ना० ।—महाराज ! सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्त्ति है । निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत भूमि का सिर केवल इन के स्मरण से उस समय भी ऊंचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी ।

इ० ।—(आपही आप) अहा ! हृदय भी ईश्वर ने क्याही वस्तु बनाई है । यद्यपि इसका स्वभाव सहजही गुणग्राही हो तथापि दूसरों की उत्कट कीर्त्ति से इस में ईर्षा होतीही है, उस में भी जो जितने बड़े हैं उन की ईर्षा भी उतनीही बड़ी है । हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना सन्ताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्त्ति ।

ना० ।—आप क्या सोच रहे हैं ।

इ० ।—कुछ नहीं । योंहीं मैं यह सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्त्ति आज काल

छोटे बड़े सब के मुंह से सुनाई पड़ती है इससे निश्चय होता है कि नहीं हरिश्चन्द्र निस्सन्देह बड़ा मनुष्य है।

ना०।—क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे बड़े सब मानें और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा जो ऐसा दृढ़ होकर धर्म साधन करेगा (आपही आप) और उस की बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उस से बुरा मानते हैं क्योंकि जिस से बड़े २ लोग डाह करैं पर उस का कुछ बिगाड़ न सकें वह निस्सन्देह बहुत बड़ा मनुष्य है।

इ०।—भला उसके गृह चरित्र कैसे हैं।

ना०।—दूसरों के लिये उदाहरण बनाने के योग्य। भला पहिले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किये हैं उस की और बातों पर क्या विश्वास हो सकता है। शरीरमें चरित्रही मुख्य वस्तु है। बचन से उपदेशक और क्रियादिक से कैसा भी धर्मनिष्ठ क्यों न हो पर यदि उस के चरित्र शुद्ध नहीं हैं तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायगा और उस की बातैं प्रमाण न होंगी। महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन बचन और कर्म एक रहते हैं, इन के भिन्न भिन्न। निस्संदेह हरिश्चन्द्र महाशय है। उसके आशय बहुत उदार हैं इस में कोई संदेह नहीं।

इ०।—भला आप उदार वा महाशय किसको कहते हैं।

ना०।—जिसका भीतर बाहर एकसा हो और विद्यानुरागिता उपकार प्रियता आदि गुण जिस में सहज हों। अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य्य, सम्पत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिसकी स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है। हरिश्चन्द्र में ये सब बातें सहज हैं। दान करके उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर सन्तोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी कुछ नहीं दिया।

इ०।—(आपही आप) हृदय! पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो।

ना०।—और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चल भक्ति उसमें ऐसी है जो सब का भूषण है क्योंकि उसके बिना किसी की शोभा नहीं। फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों

को सन्देह होता है कि इन्हें राज काज देखने की छुट्टी कब मिलती है। सच है छोटे जो के लोग थोड़े ही कामो में ऐसे घबड़ा जाते हैं मानों सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है, पर जो बड़े लोग हैं उनके सब काम महारम्भ होते हैं तब भी उन के मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उनके उदार चित्त में धैर्य्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उन के समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथा योग्य बटे रहते हैं जिसे उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं।

इ०।—भला महाराज वह ऐसे दानी हैं तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर है।

ना०।—यही तो हम कहते हैं। निस्संदेह वह राजा कुल का कलंक है जिस ने बिना पात्र विचारे दान देते देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया आप कुछ उपार्जन कियाही नहीं जो था वह नाश हो गया! और जहां प्रबन्ध है वहां धन की क्या कमती है। मनुष्य कितना धन देगा और जाचक कितना लेंगे।

इ०।—पर यदि कोई अपने वित्त के बाहर मांगे या ऐसी वस्तु मांगे जिस से दाता की सर्वस्व हानि होती हो तो वह दे कि नहीं?

ना०।—क्यों नहीं। अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है पात्र चाहिए। जिस को धन पा कर सत्पात्र में उस के त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहां हुआ।

इ०।—(आप ही आप) भला देखेंगे न।

ना०।—राजन्! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है। वे तो अपने सहज सुभाव ही से सत्य और बिचार तथा दृढ़ता में ऐसे बंधे हैं कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उन को स्वर्ण का पर्वत भी तिल सा दिखाई देता है। और उस में भी हरिश्चन्द्र—जिस का सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष रानी, और तलवार पर भी नहीं है। जो सत्यानुरागी ही नहीं है भला उस से न्याव कब होगा और जिस से न्याव नहीं है वह राजा ही काहे का है। कैसी भी विपत्ति और उभय संकट पड़े और कैसी हो हानि वा लाभ हो पर जो न्याव न छोड़े वही धीर और वही राजा। और उस न्याव का मूल सत्य है।

इ०—तो भला वह जिसे जो देने को कहेगा देगा वा जो करने को कहेगा वह करेगा।

ना० ।—क्या आप उस का परिहास करते हैं। किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उस की निन्दा है। क्या आप ने उस का यह सहज साभिमान वचन नहीं सुना है।

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य बिचार ॥

इं० ।—(आप ही आप) तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हम को भी अच्छा उपाय मिला। (प्रगट) हां पर आप यह भी जानते कि क्या वह यह सब धर्म स्वर्ग लेने को करता है ?

ना० ।—वाह ! भला जो ऐसे हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है ? क्या बड़े लोग धर्म्म स्वर्ग पाने को करते हैं ? जो अपने निर्मल चरित्र से सन्तुष्ट हैं उन के आगे स्वर्ग कौन वस्तु है। फिर भला जिन के शुद्ध हृदय और सहज व्यवहार हैं, वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच से धर्म्म करते हैं ? वे तो आप के स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं और जिन लोगों को भगवान के चरणारविन्द में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्म्माचरण करते हैं, यह भी तो एक क्षुद्रता है कि इस लोक में एक दे कर परलोक हैं दो की आशा रखना।

इं० ।—(आपही आप) हमने माना कि उसको स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि अपने कर्म्मों से वह स्वर्ग का अधिकारि तो हो जायगा ।

ना० ।—और जिन को अपने किये शुभ अनुष्टानों से आप सन्तोष मिलता है उनके उस असीम आनन्द के आगे आप के स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महा महा तुच्छ हैं। क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं।

इं० ।— तथापि एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।

ना० ।—राजन् ! आप का यह सब सोचना बहुत अयोग्य है। ईश्वर ने आप को बड़ा किया है तो आप को दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर सन्तोष करना चाहिये। ईर्षा करना तो क्षुद्राशयों का काम है। महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझै।

इं० ।—(आप ही आप) इन से काम न होगा। (बात बहलाकर प्रगट) नहीं नहीं मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उन के गुणों को अपनी आंखों से देखता भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूं जिस से उन्हें कुछ कष्ट हो।

ना० ।—(आप ही आप) अहा ! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता । बड़ा वही है जिस का चित्त बड़ा है । अधिकार तो बड़ा है पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं वह आदर के योग्य नहीं है ; परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर उस का चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है ।

(द्वारपाल आता है)

द्वा० ।—महाराज विश्वामित्र जी आये हैं ।

इ० ।—(आपही आप) हां इन से यह काम होगा । अच्छे अवसर पर आए । जैसा काम हो वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिए । (प्रगट) हां हां लिवा लाओ ।

द्वा० ।—जो आज्ञा । (जाता है)

(विश्वामित्र * जी आते हैं)

इ० ।—(प्रणामादि शिष्टाचार कर के) आइये भगवन् विराजिये ।

वि० ।—(नारद जी को प्रणाम करके और इन्द्र को आशीर्वाद देकर बैठते हैं)

ना० ।—तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम को जाना है ।

वि० ।—यह क्या ? हमारे आतेही आप चले, भला ऐसी रुष्टता किस काम की ।

ना० ।—हरे हरे ! आप ऐसी बात सोचते हैं—राम राम भला आप के आने से हम क्यों जायंगे । मैं तो जाने ही को था कि इतने में आप आ गये ।

इ० ।—(हंस कर) आप की जो इच्छा ।

ना० ।—(आप ही आप) हमारी इच्छा क्या अब तो आपही की यह इच्छा है कि हम जायं, क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्र जी से राजा हरिश्चन्द्र को दुःख देने की सलाह कीजियेगा तो हम उस के बाधक क्यों हों पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं उतना ही उन की सत्य कीर्ति तपाए सोने की भांति और भी चमकती है क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती । (प्रगट) यद्यपि "जो इच्छा" आप ने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन वचन नहीं कहते क्यों कि इन वाक्यों से रूखापन झलकता है । मैं कुछ इस का ध्यान नहीं करता केवल मित्र भाव से कहता हूं । लो

---

* मृगचर्म, दाढ़ी, जटा हाथोंमें पवित्री, और कमंडल, खड़ाऊं पर चढ़े ।

जाता हूं और यही आशीर्वाद दे कर जाता हूं कि तुम किसी को कष्ट-दायक मत हो क्योंकि अधिकार पा कर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है।

इं०।—(कुछ लज्जित हो कर प्रणाम करता है)

(नारद जी जाते हैं)

वि०।—यह क्यों ? आज नारद भगवान ऐसी जली कटी क्यों बोलते थे. क्या तुमने कुछ कहा था ?

इ०।—नहीं तो राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग निकला था सो उन्हों ने उस की बड़ी स्तुति की और हमारा उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस पर कीर्त्ति को सहन न कर सका इस में कुछ बात ही बात ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गए।

वि०।—तो हरिश्चन्द्र में कौन से ऐसे गुण हैं ?

(सहज ही भृकुटी चढ़ जाती है)

इ०।—(ऋषि का भ्रू भंग देख कर चित्त में सन्तोष कर के उन का क्रोध बढ़ाता हुआ) महाराज सिपारसी लोग चाहे जिसको बढ़ा दें चाहे घटा दें। भला सत्य धर्म पालन क्या हंसी खेल है ! यह आप ऐसे महात्माओं ही का काम है जिन्हों ने घर बार छोड़ दिया है। भला राज कर के और घर में रह के मनुष्य क्या धर्म का हठ करेगा। और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ती इन्हीं बातों से तो नारद जी बिना बात ही अप्रसन्न हुए।

वि०।—मैं अभी देखता हूं न। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपने का अभिमान करेगा।

(क्रोध पूर्व्वक उठ कर चला चाहते हैं कि परदा गिरता है)।

इति प्रथम अंक।

दूसरा अङ्क।

स्थान राजा हरिश्चन्द्र का राज भवन ।

रानी शैव्या * बैठी हैं और एक सहेली बगल में खड़ी है॥ †

---

* लंहगा, साड़ीं, सब जनाना गहिना, बन्दी बेना इत्यादि।

† साड़ी सादा सिंगार।

रा० ।—अरी ! आज मैंने ऐसे बुरे २ सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूं कलेजा कांप रहा है। भगवान कुशल करें।

स० ।—महाराज के पुन्य प्रताप से सब कुशल ही होगी आप कुछ चिंता न करें। भला क्या सपना देखा है मैं भी सुनूं ?

रा० ।—महाराज को तो मैं ने सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले, और (आंखों में आंसू भर कर) रोहिताश्व को देखा है कि उसे सांप काट गया है।

स० ।—राम ! राम ! भगवान सब कुशल करेगा। भगवान करे रोहिताश्व जुग जुग जिए और जब तक गङ्गा जमुना में पानी है आप का सोहाग अचल रहे। भला आप ने इस की शान्ति का भी कुछ उपाय किया है।

रा० ।—हां गुरूजी से तो सब समाचार कहला भेजा है देखो वह क्या करते हैं।

स० ।—हे भगवान हमारे महरज महरानी कुंअर सब कुशल से रहैं, मैं आंच-ल पसार के यह वरदान मांगती हूं।

(ब्राह्मण * आता है)

ब्रा० ।—(आशीर्वाद देता है)

स्वस्त्यस्तुतेकुशलमस्तुचिरायुरस्तु । गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु ॥
ऐश्वर्य्यमस्तुकुशलोस्तुरिपुक्षयोस्तु । सन्तानवृद्धिसहिताहरिभक्तिरस्तु ॥

रा० ।—(हाथ जोड़ कर प्रणाम करती है)

ब्रा० ।—महाराज गुरू जी ने यह अभिमन्त्रित जल भेजा है इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान भी कर लें-और यह रक्षाबन्धन भेजा है इसे कुमार रोहिताश्व की दहनी भुजा पर बांध दें फिर इस जल से मैं मार्जन करूंगा।

रा० ।—(नेत्र में जल लगाकर और कुछ मुंह फेरकर आचमन करके) माल-ती ! यह रक्षाबन्धन तू सम्हाल के अपने पास रख जब रोहिताश्व मिले उसके दहिने हाथ पर बांध दीजियो।

स० ।—जो आज्ञा (रक्षाबन्धन अपने पास रखती है)

ब्रा० ।—तो अब आप सावधान हो जायं मैं मार्जन कर लूं।

रा० ।—(सावधान होकर) जो आज्ञा।

---

* धोती, उपरना, सिर पर चुन्दी वा सिर पर बाल, डाढ़ी हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाऊं।

ब्रा० ।—(दूर्वा से मार्जन करता है)

देवास्त्वामभिषिचन्तुब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
गन्धर्वा:किन्नरा:नागा:रक्षांकुर्व्वन्तुतेसदा ॥
पितरोगुह्यकायक्षा:देव्योभूताश्चमातरः ।
सर्व्वेत्वामभिषिञ्चन्तुरक्षांकुर्व्वन्तुतेसदा ॥
भद्रमस्तुशिवञ्चास्तुमहालक्ष्मीप्रसीदतु ।
पतिपुत्रयुतामाध्विजीवत्वंशरदांशतं ॥

(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंक कर)

यत्पापंरोगमशुभंतद्दूरेप्रतिहतमस्तु ।

(फिर रानी पर मार्जन करके)

यन्मंगलंशुभंसौभाग्यंधनधान्यमारोग्यंबहु ।
पुत्रत्वंतत्सर्व्वंमोशप्रमादात्ब्राह्मणवचनात्त्वय्यस्तु ॥

(मार्जन करके फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है)

रा० ।—(हाथ जोड़ कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज गुरुजी से मेरी ओर से विनती करके दण्डवत् कह दीजिएगा।

ब्रा०।—जो आज्ञा (आशीर्वाद देकर जाता है)।

रा० ।—आज महाराज अब तक सभा में नहीं आए ?।

स० ।—अब आते होंगे पूजा में कुछ देर लगी होगी।

(नेपथ्य में वैतालिक गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रवि कुल रवि निसि बीती प्रजा कमल गन फूले ।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन भय तम उनमूले ॥
नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो ।
मागध बंदी सूत चिरैयन मिलि कल रोर मचायो ॥
तुव जस सीतल पौन परसि चटकीं गुलाब की कलियां ।
अति सुख पाइ असीस देत सोइ करि अंगुरिन चट अलियां ॥
भए धरम में थित सब द्विज जन प्रजा काज निज लागे ।
रिपु जुवती मुख कुमुद मन्द जन चक्रवाक अनुरागे ॥
अरघ सरिस उपहार लिये नृप ठाढ़े तिन कहं तोखौ ।
न्याव कृपा सों ऊंच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ ॥

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रा० ।—महाराज ठाकुरजी के मन्दिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बन्दी लोग भी गाते आते हैं ।

स० ।—आप कहती हैं चले ? वह देखिये आ पहुंचे कि चले ।

रा० ।—(घबड़ा कर आदर के हेतु उठती है)

(* परिकर सहित महाराज हरिश्चन्द्र † आते हैं)

(रानी प्रणाम करती है और सब लोग यथा स्थान बैठते हैं)

ह० ।—(रानी से प्रीति पूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलिन क्यों हो रहा है ?

रा० ।—पिछली रात मैं ने कुछ दुःस्वप्न ऐसे देखे हैं जिन से चित्त व्याकुल हो रहा है ।

ह० ।—प्रिये ! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता पर तुम तो वीरकन्या वीरपत्नी और वीरमाता हो तुम्हार स्वभाव ऐसा क्यों ?

रा० ।—नाथ । मोह से धीरज जाता रहता है ।

ह० ।—तो गुरू जी से कुछ शांति करने को नहीं कहलाया ।

रा० ।—महाराज ! शान्ति तो गुरू जी ने कर दी है ।

ह० ।—तब क्या चिन्ता है शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो सब कल्याण होगा । सदा सर्वदा सहज मंगल साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के सन्तोष करना चाहिए ।

रा० ।—महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने भी ग्रन्थों में देखा है ?

ह० ।—(रानी की बात अनसुनी कर के) स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है ।

---

* राजा के परिकर में प्रथम मंत्री नीमा पैजामा कमरबन्द दुशाला पगड़ी सिरपेच सजे । दो मुसाहिब साधारण सभ्यों के वेष में । एक निशान वाला सेवक के भेष में । निशान पर सूर्य्य के नीचे " सत्ये नास्ति भयंक्वचित् " लिखा हुआ । चार शस्त्रधारी अङ्गरक्षक दो सेवक ।

† सपेद वा केसरी जामा पैजामा कमरबन्द मर्दाना सब गहना सिर पर किरीट वा पगड़ी सिरपेंचतुर्रा हाथ में तलवार दुशाला या कोई चमकता रूमाल ओढे ।

(चिन्ता पूर्वक स्मरण कर के) हां यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्या साधन करने को सब दिव्य महा विद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जानकर उन को बचाने गया हूं तो वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैं ने उसे मनाया है तो उस ने मुझ से मेरा सारा राज्य मांगा है मैं ने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया (इतना कह कर अत्यन्त व्याकुलता नाट्य करता है)

रा० ।—नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गये ?

ह० ।—मैं यह सोचता हूं कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहां पाऊंगा और बिना उस की थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूंगा !

रा० ।—नाथ ! क्या स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानिएगा ?

ह० ।—प्रिये ! हरिश्चन्द्र की अर्द्धाङ्गिनी हो कर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है । हा ! भला तुम ऐसी बात मुंह से निकालती हो ! स्वप्न किस ने देखा है ? मैं ने न ? फिर क्या ? स्वप्न संसार अपने काल में असत्य है इस का कौन प्रमाण है, और जो अब असत्य कहो तो मरने के पीछे तो यह संसार में परलोक के हेतु लोग धर्म्माचरण क्यों करते हैं ? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष ।

रा० ।—(हाथ जोड़कर) नाथ ! क्षमा कीजिए स्त्री की बुद्धि ही कितनी ।

ह० ।—(चिन्ता कर के) पर मैं अब करूं क्या ! अच्छा ! प्रधान ! नगर में डौंड़ी पिटवा दो कि राज्य सब लोग आज से अज्ञातनाम गोत्र ब्राह्मण का समझें उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उस के सेवक की भांति उस के थाती समझ के राज कार्य्य करेगा और दो मुहर राज काज के हेतु बनवा लो एक पर अज्ञातनाम गोत्र ब्राह्मण सेवक हरिश्चन्द्र और दूसरे पर राजाधिराज अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण महाराज खुदा रहे और आज से राज काज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे । देश के राजाओं और बड़ेर कार्य्यधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञातनाम गोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है इस से आज से उसका राज हरिश्चन्द्र मंत्री की भांति सम्हालेगा !

(द्वारपाल आता है)

द्वा० ।—महाराजाधिराज ! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है ।

ह० ।—(घबड़ा कर) अभी आदर पूर्वक ले आओ ।

द्वा० ।—जो आज्ञा (जाता है) ।

ह० ।—यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात है ।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र * आते हैं) ।

ह० ।—(आदर पूर्वक आगे से ले कर और प्रणाम कर के) महाराज ! पधारिए, यह आसन है ।

वि० ।—बैठे बैठ चुके, बोल अभी तैं ने मुझे पहिचाना कि नहीं ।

ह० ।—(घबड़ा कर) महाराज ! पूर्व परिचित तो आप ज्ञात होते हैं ।

वि० ।—(क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम ! तू काहे को पहिचानेगा सच है रे सूर्य्यकुलकलंक तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार तेरे मिथ्या धर्म्माभिमान को ऐसेही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं । अरे दुष्ट तैं भूल गया कल पृथ्वी किस को दान दी थी जानता नहीं कि मैं कौन हूं ?

" जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकविप्रं दृप्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम् ।
सर्गान्तराहरणभीतजगत्कृतान्तं चाण्डालयाजिनमवैषिनकौशिकंमाम् ॥ "

ह० ।—(पैरों पर गिरके बड़े विनय से) महाराज ! भला आप को त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा ।

" अन्नचयादिषुतथाविहितात्मवृत्तिं राजप्रतिग्रहपराङ्मुखमानसंत्वाम् ।
आडीवकप्रधनकम्पितजीवलोकं कस्तेजसांचतपसांचनिधिर्नवेत्ति ॥ "

वि० ।—(क्रोध से) सच है रे पाप पाषंड मिथ्यादान बीर ! तू क्यों न मुझे " राज प्रतिग्रह पराङ्मुख " कहेगा क्योंकि तै ने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान न दी है, ठहर ठहर देख इस झूठ का कैसा फल भोगता है, हा ! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दहिनी भुजा शाप देने को उठती है वैसे ही जाति स्मरण के संस्कार से बांई भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है (अत्यन्त क्रोध से लंबी सास लेकर और बांह उठा कर) अरे ब्रह्मा ! सम्हाल अपनी सृष्टि को नहीं तो परम तेज पुञ्ज दीर्घतपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जायगा, अथवा संसार के नाश ही से क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व्व उसी दिन मैं ने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई आज इस राजकुलांगार का

---

* जटा और डाढ़ी बढ़ाए, खड़ाऊं पहिने, गले में मृगछाला बांधे, धोती पर बाघ की मोटी करधनी, एक हाथ में कुश और कमंडल ।

अभिमान चूर्ण करूंगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत् में दानी प्रसिद्ध हो रहा है।

ह० ।—(पैरों पर गिर के) महाराज क्षमा कीजिए मैं ने इस बुद्धि से नहीं कहा था सारी पृथ्वी आप की मैं आपका भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुंह से निकालते हैं। (ईषत्क्रोध से) और आप बारंबार मुझे झूठा न कहिए। सुनिए मेरी यह प्रतिज्ञा है।

" चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य विचार ॥ "

वि० ।—(क्रोध और अनादर पूर्व्वक हंस कर) हहहह ! सच है सच है रे मूढ़ ! क्यों नहीं, आखिर सूर्य्यवंशी है। तो दे हमारी पृथ्वी।

ह० ।—लीजिये इस में विलम्ब क्या है मैं ने तो आप के आगमन के पूर्व्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है। (पृथ्वी की ओर देख कर)

जेहि पाली इच्छाकु सों, अब लौं रवि कुल राज ।
ताहि देत हरिचन्द नृप, विश्वामित्रहिं आज ॥
बसुधे ! तुम बहु सुख कियो, मम पुरुषन की होय ।
धरमबद्ध हरिचन्द को, छमहु सु परबस जोय ॥

वि० ।—(आप ही आप) अच्छा ! अभी अभिमान दिखा ले, तो मेरा नाम विश्वामित्र जो तुझ को सत्य भ्रष्ट कर के छोड़ा और लक्ष्मी से तो हो ही चुका है। (प्रगट) स्वस्ति। अब इस महादान की दक्षिणा कहां है ?

ह० ।—महाराज ! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

वि० ।—भला सहस्र स्वर्ण मुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी।

ह० ।—जो आज्ञा (मंत्री से) मंत्री ! हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ।

वि० (क्रोध से) " मंत्री हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ " मंत्री कहां से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है ? झूठा कहीं का, देना ही नहीं था तो मुंह से कहा क्यों ? चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

ह० ।—(हाथ जोड़ कर विनय से) महाराज ठीक है। खज़ाना अब सब आप का है मैं भूला क्षमा कीजिए। क्या हुआ खज़ाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है।

वि० ।—एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदंड गिराऊंगा, देख केवल एक मास की अवधि है।

ह० ।—महाराज ! मैं ब्रह्मदंड से उतना नहीं डरता जितना सत्यदंड से इस से

वेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द ।
रखिहै निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द ॥

(आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जय ध्वनि होती है) ।

(जवनिका गिरती है)

इति दूसरा अंक ।

तीसरे अङ्क में अङ्कावतार ।

स्थान वाराणसी का बाहरी प्रान्त तालाव ।

(पाप * आता है)

पा० ।—(इधर उधर दौड़ता और हांफता हुआ) मरे रे मरे जले रे जले कहां जांय, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुन्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते सुना है कि राजा हरिश्चन्द्र काशी गये हैं क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हम को तुमने दान दे दी है इस से पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को वेच कर हम से उरिन नहीं हो सकते । यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबराये और सोच विचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज हम काशी में अपना शरीर वेचेंगे क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है । यह सुन कर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलें क्योंकि जहां हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहां हमारे प्राण बचेंगे सो यहां और भी उत्पात हो रहा है । जहां देखो वहां स्नान पूजा जप पाठ दान धर्म्म होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालेंगे । रात दिन शंख घंटा की घन घोर के साथ वेद की धुनि मानो ललकार २ के हमारे शत्रु धर्म्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो भगवती भागीरथी के जलकण मिले बायु से उस का हृदय एक साथ ही शीतल हो जाता है । इस के उपरान्त शिशिशि……ध्वनि अलग मारे डालती है । हाय कहां जांय क्या

---

* काजल सा रंग, लाल नेत्र, महा कुरूप, हाथ में नंगी तलवार लिए, नीला काछ काछे ।

करें। हमारी तो संसार से मानो जड़ ही कटी जाती है भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है पर यहां तो मानो हमारा राज ही नहीं कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहां आया कि गति भई।

(नेपथ्य में)

सच है "येषांक्वापिगतिर्नास्ति तेषांवाराणसीगतिः"

पा०।—अरे रे। यह कौन महा भयंकर भेष अंग में भभूत पोते एड़ी तक जटा लटकाए, लाल लाल आंख निकाले साक्षात् काल की भांति त्रशूल घुमाता चला आता है। प्राण तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल में अब इस समय भूमंडल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है।

(भागता हुआ जाता है।

(भैरव * आते हैं)

भैरव।—सच "येषां क्वापिगतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः" देखो इतना बड़ा पुन्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और पुत्र बेचने को यहीं आया है! अहा! धन्य है सत्य। आज जब भगवान भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण होगये और रोमांच होने से सब शरीर के भस्मकण अलग अलग हो गए। मुझ को आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करना इस से चलूं मैं भी भेस बदल कर भगवान की आज्ञा पालन में प्रवर्त्त हूं।

(जाते हैं। जवनिका गिरती है)

तीसरे अंक में यह अंकावतार समाप्त हुआ।

तीसरा अङ्क।

(स्थान काशी के घाट किनारे की सड़क)

महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं।

ह०।—देखो काशी भी पहुंच गये। अहा! धन्य है काशी। भगवति वाराणसी। तुम्हें अनेक प्रणाम हैं। अहा! काशी की कैसी अनूपम शोभा है।

---

* महादेव जी का सा सिंगार, तीन नेत्र, नीला रंग एक हाथ में त्रशूल, दूसरे में प्याला।

" चारहु आश्रम वर्न बसैं मनि कंचन धाम अकाश बिभासिका ।
सोभा नहीं कहि जाय कछू विधिने रची मानो पुरीन की नासिका ॥
आपु बसैं गिरिधारन जू तट देव नदी वर वारि बिलासिका ।
पुन्य प्रकासिका पाप बिनासिका हीय हुलासिका सोहत कासिका" ॥ १ ॥

" बसैं बिंदुमाधव बिसेसरादि देव सबै दरसन ही तें लागै जम मुख मसी है । तीरथ अनादि पंच गंगा मनिकर्निकादि सात आवरण मध्य पुन्य रूप धंसी है ॥ गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी धार तोरै आसु कर्म्म रूप रसी है । ससी सम जसी असी वरना में बसो पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी वाराणसी है " ॥ २ ॥

" रचित प्रभासी भासी अवलि मकानन की जिन में अकासी पावै रतन नकासी है । फिरैं दास दासी विप्र गृही औ सन्यासी लसै वर गुन-रासी देव पुरी हू न जासी है ॥ गिरधर दास विस्व कीरति विलासी रमा हासी लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है । खासी परकासी पुन बांसी चन्द्रिका सी जाके बासी अविनासी अघनाशी ऐसी काशी है " ॥ ३ ॥

देखो ! जैसा ईश्वर ने यह सुन्दर अंगूठी के नगीने सा नगर बनाया है वैसी ही नदी भी इस के लिये दी है । धन्य गंगे ।

" जम की सब त्रास बिनास करी मुख तें निज नाम उचारन सें ।
सब पाप प्रतापहि दूर दस्यो तुम आपन आप निहारन में ॥
अहो गंग अनंग के सत्रु करे बहु नेकु जलै मुख डारन में ।
गिरिधारन जू कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में " ॥ ४ ॥*

कुछ महात्म ही पर नहीं गंगाजी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है । आहा !

नव उज्जल जल धार हार हीरक सी सोहति ।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति ॥
लोल लहर लहि पवन एक पैं इक इमि आवत ।
जिमि नर गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत ॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत ।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥

---

* यह चारों कवित्त ग्रन्थकर्त्ता के पिता श्रीबाबू गोपालचन्द्र के बनाए हैं जो कविता में अपना नाम गिरधर दास रखते थे ॥

श्री हरिपद नख चन्द्र कान्ति मनि द्रवित सुधारस ।
ब्रह्म कमंडल मंडन भव खंडन सुर-सरबस ॥
शिव सिर मालति माल भगीरथ नृपति पुन्य फल ।
ऐरावत गज गिरि पति हिम नग कंठहार कल ॥
सगर सुअन सठ सहस परस जल मात्र उधारण ।
अगिनित धारा रूप धारि सागर संचारण ॥
कासी कहं प्रिय जानि ललकि भेंय्यो जग धाई ।
सपने हू नहिं तजी रही अंकम लपटाई ॥
कहूं बंधे नवघाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
कहुं छतरी कहुं मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ॥
धवल धाम चहुं ओर फरहरत धुजा पताका ।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
मधुरी नौबत बजत कहूं नारी नर गावत ।
वेद पढ़त कहुं द्विज कहुं जोगी ध्यान लगावत ॥
कहुं सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत ।
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
धोअत सुन्दरि बदन करन अति ही छबि पावत ।
बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत ॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत ।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहीं जहं जात रहत तितही ठहराई ।
गंगा छबि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई ॥

(कुछ सोच कर) पर हा ! जो अपना जी दुखी होता है । सो संसार सूना जान पड़ता है ।

"असनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः ।
मगधेनसमाकाशी गंगाप्यंगारवाहिनी ॥ * "

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिये दुखी होता है । हा ! कैसे कष्ट की बात है राज

* जिन का भोजन, वस्त्र और निवास ठीक ठीक नहीं है उन को काशी भी मगह है और गंगा भी तपानेवाली हैं ।

पाट धन धाम सब छूटा अब दक्षिणा कहां से देंगे। क्या करें! हम सत्य धर्म कभी छोड़ेहींगे नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे. और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग कर सकते। क्या करें? कुबेर को जीत कर धन लावें? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है। तो क्या किसी से मांग कर दें? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे। फिर ऋण काढ़ें? पर देंगे कहां से? हा! देखो काशी में आकर लोग संसार के बन्धन से छूटते हैं पर हम को यहां भी हाय हाय मची है। हा! पृथ्वी! तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलंकित मुंह फिर किसी को न दिखाऊं। (आतंक से) पर यह क्या? सूर्य्यवंश में उत्पन्न हो कर हमारे यह कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिये बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें। (कुछ सोच कर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती। क्या करें? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है। (चिन्ता कर के एक साथ हर्ष से) वाह अभी तो स्त्री पुत्र और हम तीन २ मनुष्य तैयार हैं। क्या हम लोगों के बिकने से सहस्र स्वर्ण मुद्रा भी न मिलेंगी? तब फिर किस बात का इतना शोच? न जानें बुद्धि इतनी देर तक कहां सोई थी। हमने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था;

बेचि देह दारा सुअन होय दास हू मन्द।
रखि हैं निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द॥

(नेपथ्य में) तो क्यों नहीं जलदी अपने को बेचता? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे २ दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें?

ह०।—अरे मुनि तो आ पहुंचे। क्या हुआ आज उन से एक दो दिन की अवधि और लेंगे।

(विश्वामित्र आते हैं।)

वि०।—(आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट के कारण सब बहक गई। कुछ इन्द्र के कहने ही पर नहीं हमारा इसपर स्वतः भी क्रोध है पर क्या करें इस के सत्य, धैर्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता। यद्यपि यह राज्य भ्रष्ट हो चुका पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट न कर लूंगा तब तक मेरा सन्तोष न होगा। (आगे देख

कर) अरे यही दुरात्मा (कुछ रुक कर) वा महात्मा हरिश्चन्द्र है। (प्रगट)
क्यों रे आज महीने में के दिन बाकी हैं ? बोल कब दक्षिणा देगा ?

ह०।—(घबड़ा कर) अहा ! महात्मा कौशिक। भगवन् प्रणाम करता हूं। (दण्डवत करता है)

वि०।—हुई प्रणाम, बोल तैं ने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया ? आज महीना पूरा हुआ अब मैं एक क्षण भर भी न मानूंगा। दे अभी नहीं तो—(शाप के वास्ते कमण्डल से जल हाथ में लेते हैं)

ह०।—(पैरों पर गिर कर) भगवन् क्षमा कीजिये। यदि आज सूर्यास्त के पहिले में न दूं तो जो चाहे कीजियेगा। मैं अभी अपने को बेच कर मुद्रा ले आता हूं।

वि०।—(आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) अच्छा आज सांझ तक और सही। सांझ को न देगा तो मैं शापही दूंगा वरञ्च त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूंगा कि हरिश्चन्द्र सत्यभ्रष्ट हुआ। (जाते हैं)

ह०।—भला किसी तरह मुनि से प्राण बचे। अब चलें अपना शरीर बेच कर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा ! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिस ने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल लाल आंखें नहीं देखी हैं। (आगे चल कर) अरे क्या बजार में आ गए, अच्छा, (सिर पर तृण रख कर)* अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारो, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं किसी को लेना हो तो लो। (इसी तरह कहता हुआ इधर उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य विक्रय को अनुचित जान कर हम दूसरों को दंड देते थे पर आज वही कर्म हम आप करते हैं। दैव बली है। (अरे सुनो भाई इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है। ऊपर देखकर) क्या कहा ? "क्यों तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो ?" आर्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देख कर) क्या कहा ? "तुम क्या क्या कर सकते हो, क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे ?" इस का क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वही करेंगे ; समझते सब कुछ हैं पर इस अवसर पर समझना कुछ काम नहीं आता, और जैसे स्वामी रक्खेगा

---

* उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो सिर पर तृण रखता था।

वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इस का क्या विचार है (ऊपर देख कर) क्या कहा "कुछ दाम कम करो।" आर्य हम लोग तो चत्रिय हैं, हम दो बात कहां से जानें। जो कुछ ठीक था कह दिया।

(नेपथ्य में से)

आर्यपुत्र! ऐसे समय में हम को छोड़े जाते हो। तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रह के क्या करूंगी। स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी कहते हैं, इसके पहिले बायां अंग बेच लो तब दहिना अंग बेचो।

ह०।—(सुन कर बड़े शोक से) हा! रानी की यह दशा इन आंखों से कैसे देखी जायगी!

(सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शै०।—कोई महात्मा कृपा कर के हम को मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बा०।—अमको बी कोई मोल ले तो बला उपकाल ओ।

शै०।—(आंखों से आंसू भरकर) पुत्र! चन्द्रकुलभूषण महाराज वीरसेन का नाती और सूर्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र हो कर तू क्यों ऐसे कातर बचन कहता है! मैं अभी जीती हूं! (रोती है)

बा०।—(मां का अंचल पकड़ के) मां! तुम को कोई मोल लेगा तो अम को बी मोल लेगा। घां आं मा लोती काए को औ (कुछ रोना सा मुंह बना के शैव्या का आंचल पकड़ के झूलने लगता है)

शै०।—(आंसू पोंछ कर) मेरे भाग्य से पूछ।

ह०।—अहह! भाग्य! यह भी तुम्हें देखना था! हा! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई हम उन को कुछ धीरज भी न दे आए। उनकी अब कौन गति होगी। हा! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो अब यह देखना पड़ा। हृदय! तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक और स्त्री को बिकता देख कर टुकड़े २ क्यों नहीं हो जाते? (बारंबार लम्बी सांसे ले कर आंसू बहाता है।)

शै०।—(कोई महात्मा इत्यादि कहती हुई ऊपर देख कर) क्या कहा? "क्या २ करोगी?" पर पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़ कर और सब सेवा करूंगी। (ऊपर देख कर) क्या कहा? "पर इतने मोल पर कौन लेगा?" आर्य! कोई साधु ब्राह्मण महात्मा कृपा कर के ले ही लेंगे।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उ० ।—क्यों रे कौंडिन्य ! सच ही दासी बिकती है ?

स० ।—हां गुरु जी क्या मैं झूठ कहूंगा । आप ही देख लीजियेगा ।

उ० ।—तो चल, आगे २ भीड़ हटाता चल । देख धारा प्रवाह की भांति कैसे सब काम काजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं भीड़ के मारे पैर धरने की जगह नहीं हैं और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता ।

ब० ।—(आगे २ चलता हुआ) हटो भाई हटो (कुछ आगे बढ़ कर) गुरु जी यह जहां भीड़ लगी है वहीं होगी ।

उ० ।—(शैव्या को देख कर) अरे यही दासी बिकती है ?

शै० ।—(अरे कोई हम को मोल ले इत्यादि कहती और रोती है)

बा० ।—(माता की भांति तोतली बोली से कहता है)

उ० ।—पुत्री ! कहो तुम कौन कौन सेवा करोगी ?

शै० ।—पर पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़ कर और जो जो कहियेगा सब सेवा करूंगी ।

उ० ।—वाह ! ठीक है । अच्छा लो यह सुवर्ण । हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र की अग्नि की सेवा से घर के काम काज नहीं कर सकती सो तुम सम्हालना ।

शै० ।—(हाथ फैला कर) महाराज आप ने बड़ा उपकार किया ।

उ० ।—(शैव्या को भली भांति देख कर आप ही आप) आहा ! यह निस्संदेह किसी बड़े कुल की है । इसका मुख सहज लज्जा से ऊंचा नहीं होता और दृष्टि बराबर पैर ही पर है । जो बोलती है वह धीरे धीरे और बहुत सम्हाल के बोलती है । हा ! इस की यह गति क्यों हुई ! (प्रगट) पुत्री तुम्हारे पति हैं न ?

शै० ।—(राजा की ओर देखती है)

ह० ।—(आप ही आप दुख से) अब नहीं हैं । पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो ।

उ० ।—(राजा को देख कर आश्चर्य से) अरे यह विशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल, और संसार की रक्षा करने के योग्य लंबी२ भुजावाला कौन मनुष्य है, और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रक्खा है ? (प्रगट) महात्मा तुम हम को अपने दुख का भागी समझो और कृपा पूर्वक अपना सब वृत्तान्त कहो ।

ह० ।—भगवन् ! और तो विदित करने का अवसर नहीं है इतना ही कह सकता हूं कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई।

उ० ।—तो हम से धन लेकर आप शीघ्र ही ऋण मुक्त हूजिए !

ह० ।—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) राम राम ! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है। आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी ?

उ० ।—तो पांच हजार पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शै० ।—(राजा से हाथ जोड़ कर) नाथ हमारे आछत आप मत बिकिये, जिस में हमको अपनी आंख से यह न देखना पड़े, हमारी इतनी बिनती मानिये। [रोती है]

ह० ।—[आंसू रोक कर] अच्छा। तुम्ही जाओ। [आपही आप] हा ! यह वज्र हृदय हरिश्चन्द्र ही का है कि अब भी नहीं विदीर्ण होता।

शै० ।—[राजा के कपड़े में सोना बांधती हुई] नाथ ! अबतो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य ! आप चण भर चमा करें तो मैं आर्यपुत्र का भली भांति दर्शन कर लूं। फिर यह सुख कहां और मैं कहां।

उ० ।—हां हां मैं जाता हूं कौंडिन्य यहां है तुम उसके साथ आना [जाता है]

शै० ।—(रोकर) नाथ मेरे अपराधों को चमा करना।

ह० ।—[अत्यन्त घबड़ा कर] अरे अरे विधाता तुझे यही करना था। [आप ही आप] हा ! पहिले महारानी बना कर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान सूर्य का भी मुख मलिन हो रहा है। [रोता हुआ प्रगट रानी से] प्रिये ! सर्व भाव से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना।

शै० ।—(रोकर) नाथ ! जो आज्ञा।

बटु० ।—उपाध्याय जी गये अब चलो जल्दी करो।

ह० ।—[आंखों में आंसू भर के] देवी (फिर रुककर अत्यन्त सोच से आप ही आप) हाय ! अब मैं देवी क्यों कहता हूं अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया ! [धैर्य से] देवी ! उपाध्याय की आराधना भली भांति करना और इनके सब शिष्यों से भी सुहृत भाव रखना, ब्राह्मण की स्त्री की प्रीति पूर्वक सेवा करना, बालक का यथा सम्भव पालन करना और अपने धर्म और प्राण की रच्चा करना। विशेष हम क्या समझावैं जो जो दैव दिखावै उसे धीरज से देखना। [आंसू बहते हैं]।

शै० ।—जो आज्ञा [राजा के पैरों पर गिर के रोती है]।

ह० ।—(धैर्य पूर्वक) प्रिये ! देर मत करो बटुक घबड़ा रहे हैं।

शै० ।—(उठ कर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे२ चलती है)

बा० ।—(राजा से) पिता मा कहां जाती ऐ ?

ह० ।—[धैर्य से आंसू रोककर कर] जहां हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बा० ।—[बटुक से] अले मा को मत लेजा। [मा का आंचल पकड़ के खींचता है]

बटु० ।—(बालक को ढकेल कर) चल चल देर होती है।

बा० ।—(ढकेलने से गिर कर रोता हुआ उठ कर अत्यन्त क्रोध और करुणा से माता पिता को ओर देखता है)

ह० ।—ब्राह्मण देवता ! बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना (बालक को उठा कर धूर पोंछ के मुंह चूमता हुआ) पुत्र मुझ चाण्डाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिये। जाओ माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रहकर क्या करोगे। [रानी से] प्रिये धैर्य धरो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। अब जाओ देर होती है।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)

ह० ।—धन्य हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किस का होगा। संसार में धन और जन छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं पर तुम ने उस का भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं)

ह० ।—(पैर पर गिर के प्रणाम करता है)

वि० ।—ला दे दक्षिणा। अब सांझ होने में कुछ देर नहीं है।

ह० ।—(हाथ जोड़ कर) महाराज आधी लीजिये आधी अभी देता हूं (सोना देता है)

वि० ।—हम आधी दक्षिणा ले के क्या करें दे चाहे जहां से सब दक्षिणा।

(नेपथ्य में) धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिक् ज्ञानं धिक् बहुश्रुतम्।

नीतवानसियद्ब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमांदशां।

वि० ।—(बड़े क्रोध से) आः हम को धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है ? (ऊपर देख कर) अरे विश्वेदेवा (क्रोध से जल हाथ में ले कर) अरे

क्षत्रिय के पक्षपातियो ! तुम अभी बिमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहां भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ मारे जाओ *। (जल छोड़ते हैं)

(नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है)

(सुन कर और ऊपर देख कर आनन्द से) हहहह ! अच्छा हुआ ! यह देखो किरीट कुंडल बिना मेरे क्रोध से बिमान छूट कर विश्वेदेवा उलटे हो हो कर नीचे गिरते हैं। और हम को धिक्कार दें।

ह० ।—(ऊपर देख कर भय से) वाहरे तप का प्रभाव। (आप ही आप) तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है यह बड़ा अनुग्रह है ! (प्रगट) भगवन् यह स्त्री बेचकर आधा धन पाया है सो लें और आधा हम अपने को बेच कर अभी देते हैं। (नेपथ्य में) अरे अब तो नहीं सही जाती।

वि० ।—हम आधा न लेंगे चाहे जहां से अभी सब दे।

ह० ।—(अरे सुनो भाइ सेठ साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है)

(चांडाल के वेष में धर्म और सत्य आते हैं †)

धर्म० ।—(आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत ।
जल थल नभ थिर मो प्रभाव मरजाद न टालत ॥
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी ।
इक हमहीं संग जात तजत जब पितु सुत नारी ॥
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो ।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो ॥

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है।

(आगे बढ़ कर प्रत्यक्ष) अरे हरजनवां ! मोहर का संदूक ले आवा है न ?

सत्य० ।—का चौधरी मोहर ले के का करबो ?

---

* यही पांचो विश्वेदेवा विश्वामित्र के शाप से द्वापर में द्रौपती के पांच पुत्र हुए थे जिन्हें अश्वत्थामा ने बालकपन ही में मार डाला।

† कांछ काछे, कालारंग, लाल नेत्र सिर भर छोटे२ घुंघराले बाल और शरीर नंगा, बातों से मतवालापन झलकता हुआ।

धर्म० ।—तोंह से का काम पूछे से ?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

ह० ।—(अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि दो तीन बेर पुकार के इधर उधर घूमकर) हाय ! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान् सूर्य भी आज हम से रुष्ट हो कर शीघ्रही अस्ताचल जाया चाहते हैं (घबराहट दिखाता है)

धर्म० ।—(आपही आप) हाय हाय ! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है । तो अब चलें आगे । (आगे बढ़ कर) अरे अरे हम तुम को मोल लेंगे । लेव यह पचास से मोहर लेव ।

ह० ।—(आनन्द से आगे बढ़कर) वाह कृपानिधान ! बड़े अवसर पर आए । लाइये । (उस को पहिचान कर) आप मोल लोगे ?

धर्म० ।—हां हम लोग लेंगे । (सोना देना चाहता है)

ह० ।—आप कौन हैं ?

धर्म० ।—हम चौधरी डोम सरदार । अमल हमारा दोनो पार ॥
सब मसान पर हमरा राज । कफन मांगने का है काज ॥
फूलमती देवी * के दास । पूजैं सती मसान निवास ॥
धनतेरस और रात दिवाली । बल चढ़ाय के पूजैं काली ॥
सो हम तुम को लेंगे मोल । देंगे मुहर गांठ से खोल ॥

मत्त की भांति चेष्टा करता है ।

ह० ।—(बड़े दुःख से) अहह ! बड़ा दारुण व्यसन उपस्थित हुआ है । (विश्वामित्र से) भगवन् मैं पैर पड़ता हूं, मैं जन्म भर आप का दास हो कर रहूंगा, मुझे चाण्डाल होने से बचाइये ।

वि० ।—छि: मूर्ख ! भला हम दान ले के क्या करेंगे "स्वयंदासास्तपस्विनः" ।]

ह० ।—(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा कीजियेगा हम सब करेंगे ।

वि० ।—सब करेगा न ? (ऊपर हाथ उठा कर) कर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूंगा ।

ह० ।—हां हां जो आप आज्ञा कीजियेगा सब करूंगा ।

वि० ।—तो इसी गांहक के हाथ अपने को बेचकर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे ।

---

* प्राचीन काल में चांडालों की कुलदेवी चंडकात्यायनी थी परन्तु इस काल में फूलमती इन लोगों की कुलदेवी हैं ।

ह० ।—जो आज्ञा । (आप ही आप) अब कौन सोच है । (प्रगट धर्म से) तो हम एक नियम पर बिकेंगे !

धर्म० ।—वह कौन ?

ह० ।—भीख असन कम्मल बसन, रखि हैं दूर निवास ।
जो प्रभु आज्ञा होइहै, करिहैं सब ह्वै दास ॥

धर्म० ।—ठीक है लेव सोना । (दूर से राजा के आंचल में मोहर देता है)

ह० ।—(ले कर हर्ष से आप ही आप)
ऋण छूट्यो पूर्‌यो बचन, द्विजहु न दीनों शाप ।
सत्य पालि चंडाल हू, होइ आजु मोहि दाप ॥

(प्रगट विश्वामित्र से) भगवन् ! लीजिये यह मोहर ।

वि० ।—(मुंह चिढ़ा कर) सचमुच देता है ?

ह० ।—हां हां यह लीजिये । (मोहर देते हैं)

वि० ।—(लेकर) स्वस्ति । (आप ही आप) बस अब चलो बहुत परीक्षा हो चुकी । (जाना चाहते हैं)

ह० ।—(हाथ जोड़ कर) भगवन् दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न ?

वि० ।—हां क्षमा हुआ । अब हम जाते हैं ।

ह० ।—भगवन् प्रणाम करता हूं ।

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)

ह० ।—अब चौधरी जी (लज्जा से रुककर) स्वामी को जो आज्ञ हो वह करें ।

धर्म० ।—मत्त की भांति नाचता हुआ ।

जाओ अभी दक्खिनी मसान । लेओ वहां कफ़्फ़न का दान ॥
जो कर तुमको नहीं चुकावे । सो किरिया करने नहीं पावे ॥
चलो घाट पर करो निवास । भए आज से हमरे दास ॥

ह० ।—जो आज्ञा ।

(जवनिका गिरती है)

सत्य हरिश्चन्द्र का तीसरा अंक समाप्त हुआ ।

चौथा अङ्क।

स्थान—दक्षिण स्मशान, नदी, पीपल का बड़ा पेड़, चिता मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी इत्यादि।

कम्मल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिए हुए राजा हरिश्चन्द्र दिखाई पड़ते हैं।

ह०।—(लंबी सांस लेकर) हाय। अब जन्म भर यही दुख भोगना पड़ेगा।

जाति दास चंडाल की, घर घन घोर मसान।
कफन खसोटी को करम, सब ही एक समान॥

न जानें विधाता का क्रोध इतने पर भी शान्त हुआ कि नहीं। बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है। दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पड़ा। हम क्या क्या सोचें? अपनी अनाथ प्रजा को, या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चंडालपने को। हा! बटुक के धक्के से गिर कर रोहिताश्व ने क्रोध भरी और रानी ने जाती समय करुणा भरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलती। (घबड़ा कर) हा देवी! सूर्यकुल की बहू और चन्द्रकुल की बेटी हो कर तुम बेची गईं और दासी बनीं। हा! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गुथ सकतीं थीं उन से बरतन कैसे मांजोगी! (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सम्हल कर) अथवा क्या हुआ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा।

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द।
राख्यो निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिश्चन्द॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी? कोई पुन्यात्मा का मुरदा आया होगा। तो हम सावधान हो जांय। (लट्ठ कन्धे पर रख कर फिरता हुआ) खबरदार खबरदार बिना हम से कहे और बिना हमें आधा कफन दिये कोई संस्कार न करे। (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर उधर देखता फिरता है) (नेपथ्य में कोलाहल सुन कर) हाय हाय! कैसा भयंकर स्मशान हैं! दूर से मंडल बांध बांध कर चोंच बाए,

डैना फैलाए, कंगालों की तरह मुरदों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं और कैसा मांस नोंच नोंच कर आपुस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यन्त कर्ण-कटु अमंगल के नगाड़े की भांति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। उधर चिराइन फैलाती हुई चट चट करती चिता कैसी जल रही हैं, जिन में कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू वा चरबी बहती है। आग का रंग मांस के सम्बन्ध से नीला पीला हो रहा है ज्वाला घूम घूम कर निकलती है। आग कभी एक साथ धधक उठती है कभी मन्द हो जाती है। धूंआं चारो ओर छा रहा है। (आगे देख कर आदर से) अहा! यह वीभत्स व्यापार भी बड़ाई के योग्य है। शव! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो अतएव कहा है—

"मरनो भलो बिदेश को, जहां न अपुनो कोय ।
माटी खांय जनांवरा, महा महोच्छव होय ॥"

अहा! देखो।

सिर पै बैठ्यो काग आंख दोउ खात निकारत ।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनन्द उर धारत ॥
गिद्ध जांघ कहं खोदि खोदि कै मांस उचारत ।
स्वान आंगुरिन काटि काटि कै खान बिचारत ॥
बहु चील नोचि लैजात तुच मोद मढ्यो सब को हियो ।
मनु ब्राह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहं दियो ॥

अहा! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है ।

सोई मुख सोई उदर, सोई कर पद दोय ।
भयो आजु कछु और ही, परसत जेहि नहिं कोय ॥
हाड़ मांस लाला रकत, बसा तुचा सब सोय ।
छिन्न भिन्न दुरगन्ध मय, मरे मनुस के होयं ॥
कादर जेहि लखि कै डरत, पंडित पावत लाज ।
अहो! व्यर्थ संसार को, विषय बासना साज ॥

अहा! मरना भी क्या वस्तु है ।

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यो । सोई अंग जेहि प्रिय करि जान्यो ॥
सोई भुज जे पिय गर डारें । सोई भुज जिन नर बिक्रम पारे ॥
सोई पद जिहि सेवक बन्दत । सोई छबि जेहि देखि अनन्दत ॥

सोई रसना जहं अमृत बानी । जेहि सुनि कै हिय नारि जुड़ानी ॥
सोई हृदय जहं भाव अनेका । सोई सिर जहं निज वच टेका ॥
सोई छवि मय अंग सुहाए । आजु जीव बिनु धरनि सुवाए ॥
कहां गई वह सुंदर सोभा । जीवत जेहि लखि सब मन लोभा ॥
प्रानहुं ते बढ़ि जा कहं चाहत । ता कहं आजु सबै मिलि दाहत ॥
फूल बोझ हू जिन न सहारे । तिन पै बोझ काठ बहु डारे ॥
सिर पीड़ा जिनकी नहि हेरी । करत कपालक्रिया तिन केरी ॥
छिन हूं जे न भये कहुं न्यारे । ते हू बन्धु न छोड़ि सिधारे ॥
जो दृग कोर महीप निहारत । आजु काक तेहि भोज विचारत ॥
भुज बल जे नहि भुवन समाए । ते लखियत मुख कफन छिपाए ॥
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे । गने काल सब एकहि लेखे ॥
सुभग कुरूप अमृत विख साने । आजु सबै इक भाव बिकाने ॥
पुरु दधीच कोउ अब नाहीं । रहे नावहीं ग्रन्थन मांहीं ॥

अहा! देखो वही सिर जिस पर मंत्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रक्खा जाता था, जिस में इतना अभिमान था कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिस में बड़े २ राज जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में भी घिन करते हैं। (आगे देख कर) अरे यह स्मशान देवी हैं। अहा कात्यायनी को भी कैसा बीभत्स उपचार प्यारा है। यह देखो डोम लोगों ने सूखे गले-सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़२ कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैंसों के गले के घंटे पीपल की डार में लटक रहे हैं जिन में लोलक की जगह नलो की हड्डी लगी है। घंट के पानी से चारो ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खंभे में लोहू के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उसके खाने को कुत्ते और सियार लड़ २ कर कोलाहल मचा रहे हैं। (हाथ जोड़ कर)

"भगवति! चंडि! प्रेते! प्रेतविमाने! लसत्प्रेते! प्रेतास्थि रौद्ररूपे! प्रेताशिनि! भैरवि! नमस्ते" *

---

* इस में प्रायः सब श्लोक आर्यक्षेमीश्वर के बनाए चंडकौशिक से उद्धृत किए गये हैं।

(नेपथ्य में) राजन् हम केवल चण्डालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। मांगो क्या वर मांगते हो।

ह० ।—(सुन कर आश्चर्य) भगवति ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिये। (नेपथ्य में) साधु महाराज हरिश्चन्द्र साधु !

ह० ।—(ऊपर देख कर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक था, जो दो पहर तक अपना प्रचंड प्रताप चण २ बढ़ाता गया, जो गगनाङ्गन का दीपक और काल सर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भांति अपना सब तेज गंवा कर देखो समुद्र में गिरा चाहता है।

अथवा

सांझ सोई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है ।
पच्छिन के बहु सब्दन के मिस जीव उचाटन मन्त्र कह्यो है ॥
मद्य भरी नर खोपरी सो ससि को नव बिम्बहू धाइ गह्यो है ।
दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै काल कपालिक नाचि रह्यो है ॥
सूरज धूम बिना की चिता सोई अन्त में लै जल माहिं बहाई ।
बोलैं घने तरु बैठि बिहङ्गम रोअत सो मनु लोग लोगाई ॥
धूम अंधार कपाल निसाकर, हाड़ नछत्र लहू सी * ललाई ।
आनंद हेतु निसाचर के यह काल मसान सी सांझ बनाई ॥

अहा ! यह चारो ओर से पच्ची लोग कैसा शब्द करते हुए अपने अपने घोसलों की ओर चले आते हैं। वर्षा से नदी का भयङ्कर प्रवाह, सांझ होने से स्मशान के पीपल पर कौओं का एक संग अमङ्गल शब्द से कांव कांव करना, और रात के आगम से एक सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अन्धकार बढ़ता ही जाता है। वर्षा के कारण इन स्मशान वासी मण्डूकों का टर टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।

ररुआ चहुं दिसि ररत डरत सुनि कै नर नारी ।
फटफटाइ दोउ पङ्ख उलूकहु रटत पुकारी ॥

---

* प्राचीन काल में राज के अपराधी लोग स्मशान पर गला काट कर मारे जाते थे इसी से यहां स्मशान की वर्णन में लोहू का वर्णन है।

अन्धकार बस गिरत काक मर चीस करत रव ।
गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद दव ॥
रोअत सियार गरजत नदी स्वान भूंकि डरपावई ।
संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई ॥

इस समय यह चिता भी कैसी भयंकर मालूम पड़ती हैं। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आंच से हाथ पैर जल कर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिल्कुल कच्चा है, किसी को वैसेही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे ही छोड़ दिया है, किसी का मुंह जल जाने से दांत निकला हुआ भयङ्कर हो रहा है, और कोई आग में ऐसा जल गया है कि कहीं पता भी नहीं है। वाहरे शरीर तेरी क्या क्या गति होती है!!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे उस को कीड़ों वा मछलियों से नुचवाना और सड़ा कर दुर्गंधमय करना बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहैगा न दुर्गति होगी। हा! चलो आगे चलें। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर घूमता है)

(पिशाच और डाकिनीगण परस्पर आमोद करते और
गाते बजाते हुए आते हैं)

पि० और डा०।—हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम, हम सेवैं मसान शिव को भजैं बोलैं बम बम बम।

पि०।—हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सब का फोड़ेंगे॥

डा०।—हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावैंगी।
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावैंगी॥

सब०।—हम नाचैं मिल कर थेई थेई थेई थेई कूदैं धम् धम् धम् हैं भूत०—

पि०।—हम काट काट कर सिर को गेंदा उछालेंगे।
हम खींच खींच कर चरबी पंशाखा बालेंगे॥

डा०।—हम मांग में लाल लाल लोहू का सेंदुर लगावैंगी।
हम नस के तागे चमड़े का लहंगा बनावैंगी॥

सब०।—हम धज से सज के बज के चलैंगी चमकैंगी चम चम चम।

पि०।—लोहू का मुंह से फर्र फर्र फुहारा छोड़ेंगे।

माला गले पहिरने को अन्तड़ी को जोड़ैंगे ॥

डा०।—हम लाद के औंधे मुरदे चौकी बनावैंगी।
कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावैंगी ॥

सब०।—हम सुख से गावैंगे ढोल बजावैंगे ढम ढम ढम ढम ढम (वैसही कूदते हुए एक ओर से चले जाते हैं)

ह०।—(कौतुक से देख कर) पिशाचों का क्रीड़ा कुतूहल भी देखने के योग्य है। अहा! यह कैसे काले काले झाडू से सिर के बाल खड़े किये लंबे २ हाथ पैर बिकराल दांत लम्बी जीभ निकाले इधर उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानो भयानक रस की सेना मूर्तिमान हो कर यहां स्वच्छन्द बिहार कर रही है। हाय हाय! इन का खेल और सहज व्योहार भी कैसा भयंकर है। कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लोहू भर भर के पीता है, कोई सिर का गेंद बना कर खेलता है, कोई अंतड़ी निकाल कर गले में डाले हैं और चन्दन की भांति चरबी और लोहू शरीर में पोत रहा है, एक दूसरे से मांस छीन कर ले भागता है, एक जलता मांस मारे तृष्णा के मुंह में रख लेता है पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू थू कर के थूक देता है, और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है। हा! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोच लाई है जिसे देखने को चारो ओर से सब भूतने एकत्र हो रहे हैं और सभों को इस का बड़ा कौतुक हो गया है! हंसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुरदों के अंगों से लड़ते हैं और उन को ले ले कर नांचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो स्मशान के कुत्तों को पकड़२ कर खाजाते हैं। अहा! भगवान भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थानपर योगसाधना की है। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है) (ऊपर देख कर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अंधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता! चांडाल कुल की भांति स्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है। (स्मरण करके) हा! इस दुख की दशा में भी हम से प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता सच है... "टूट टाट घर टपकत खटियो टूट। पिय कै बांह उसिसवां सुख कै लूट"। बिधना ने इस दुख

पर भी वियोग दिया। हा! यह वर्षा और यह दुख! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा पर जिसने सपने में भी दुख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि! धीरज धरो धीरज धरो! तुम ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ सदा दुख ही दुख है। (ऊपर देखकर) अरे पानी बरसने लगा। (घोघी भली भांति ओढ़ कर) हम को तो यह वर्षा और स्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो

चपला की चमक चहूंघा सों लगाई चिता चिनगी चिलक पटवीजना चलायो है। हेती बग माल स्याम बादर सु भूमि कारी बीरवधू लहूं बूंद भुव लपटायो है॥ हरीचन्द नीर धार आंसू सी परत जहां दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है। दारुन वियोग दुखियान कौं मरे हू यह देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥

(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिर कर)

इन्द्र काल हू सरिस जो, आयसु लांघैं कोय।
यह प्रचंड भुज दंड मम, प्रति भट ताको होय॥

अरे कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़ कर) कौन है।

(नेपथ्य में) हम हैं।

ह०।—अरे हमारी बात का यह उत्तर कौन देता है? चलें जहां से आवाज आई है वहां चल कर देखें। (आगे बढ़ कर नेपथ्य की ओर देख कर) अरे यह कौन है?

चिता भस्म सब अंग लगाए। अस्थि अभूषन बिबिधि बनाए।
हाथ मसान कपाल जगावत। को यह चल्यो रुद्र सम आवत॥

(कापालिक के वेष में धर्म आता है *)

धर्म०।—अरे हम हैं।

---

* गेरुये वस्त्र का काछा काछे, गेरुआ कफनी पहिने, सिरके बाल खोले, सेंदुर का अर्द्धचन्द्र दिये नंगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते, नशे से आंखें लाल, लाल फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहिने।

वृत्ति अयाचित आत्म रति, करि जग के सुख त्याग ।
फिरहिं मसान मसान हम, धारि अनन्द विराग ॥

(आगे बढ़ कर महाराज हरिश्चन्द्र को देख कर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत ।
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत ॥
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी ।
हमहीं इक संग जात तजत जब पितु सुत नारी ॥
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो ।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो ॥

(कुछ सोच कर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दुःख परम्परा अत्यन्त शोचनीय और इनके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं ! अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है ।

सहत विविधि दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग ।
पै निज सत्य न छाड़हीं, जे जग सांचे लोग ॥
बरु सूरज पच्छिम उगै, विन्ध्या तरै जल मांहि ।
सत्य बीर जन पै कबहुं, निज वच टारत नांहि ॥

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुख को दुख सुख को सुख गिनतेही नहीं चलें उनके पास चलें । (आगे बढ़कर और देख कर) अरे यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं ?

(प्रगट) महाराज ! कल्याण हो ।

ह० ।—(प्रणाम कर के) आइये योगिराज !

ध० ।—महाराज ! हम अर्थी हैं ।

ह० ।—(लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

ध० ।—महाराज आप लज्जा मत कीजिये । हम लोग योगबल से सब कुछ जानते हैं । आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने को बहुत हैं । चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुकों का कल्याण करता है ।

ह० ।—हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिये ।

ध० ।—अंजन गुटिका पादुका, धातु भेद बैताल ।
वज्र रसायन जोगिनी, मोहि सिद्ध इहि काल ॥ *

---

* अंजन सिद्धिसे जमीनमें गड़े खजाने देख पड़ते हैं। गुटिका मुंहमें रखकर।

ह० ।—तो मुझे जो आज्ञा हो वह करूं ।

ध० ।—आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध होगए हैं पर विघ्न इस में बाधक होते हैं सो विघ्नों का निवारण कर दीजिये ।

ह० ।—आप जानते हैं कि मैं पराया दास हूं, इस से जिस में मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूं ।

ध०।—(आप ही) राजन् जिस दिन तुम्हारा धर्म जायगा उस दिन पृथ्वी किस के बल से ठहरेगी । (प्रत्यक्ष) महाराज इसमें धर्म न जायगा क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लङ्घन करतेही नहीं । सिद्धि का आकर इसी स्मशान के निकटही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूं आप विघ्नों का निषेध कर दीजिये ।

(जाता है)

ह० ।—(ललकार कर) हटो रे हटो विघ्नो चारो ओर से तुम्हारा प्रचार हम ने रोक दिया ।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज जो आज्ञा । आप से सत्य बीर की आज्ञा कौन लांघ सकता है ।

खुल्यो द्वार कल्यान को , सिद्ध जोग तप आज ।
निधि सिधि विद्या सब करहिं , अपुने मन को काज ॥

ह०।—(हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया (बिमान पर बैठी हुई तीनों महा विद्या आती हैं ।)*

म० वि० ।—महाराज हरिश्चन्द्र ! बधाई है । हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था तब देवताओं ने माया से आप को स्वप्न में हमारा रोना सुनाकर हमारा प्राण बचाया ।

वा पादुका पहिन कर चाहे जहां अलक्ष्य चला जाय । धातुभेद से औषध मात्र सिद्ध होती हैं । बैताल बस में हो कर यथेच्छ काम देता है । वज्र सिद्ध होने से जहां गिराओ वहां गिरता है । रसायन सिद्ध से चांदी सोना बनता है । जोगिनी सिद्ध होने से भूत भविष्य का वृत्तान्त कह देती है और सब इच्छा पूर्ण करती है । यही आठो सिद्ध हैं ।

* ब्रह्मा, बिष्णु, महेश के वेश में पर स्त्री का शृङ्गार खेलने में चित्रपट के द्वारा परदे के ऊपर इन को दिखलावैंगे और इन की ओर से बोलने वाला नेपथ्य में से बोलेगा ।

ह० ।—(आप ही आप) अरे यही सृष्टि की उत्पन्न पालन और नाश करने वाली महाविद्या हैं जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रगट हाथ जोड़ कर) त्रिलोकविजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है।

म० वि० ।—महाराज हम लोग तो आप की बस में हैं। हमारा ग्रहण कीजिये।

ह० ।—देवियो! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि की वशवर्त्तिनी हो उन्हों ने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

म० वि० ।—धन्य महाराज धन्य! जो आज्ञा।

(जाती हैं)

(धर्म एक वैताल के सिर पर पिटारा रखवाए हुए आता है)

ध० ।—महाराज का कल्याण हो। आप की कृपा से महानिधान † सिद्ध हुआ। आप को बधाई है। अब लीजिये इस रसेन्द्र को।

याही के परभाव सों, अमर देव सम होइ।
जोगी जन बिहरहिं सदा, मेरु शिखर भय खोइ॥

ह० ।—(प्रणाम कर के) महाराज दास धर्म के यह विरुद्ध है। इस समय स्वामी से कहे बिना [illegible] कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

ध० ।—(आश्चर्य से आप ही आप) वाहरे महानुभावता! (प्रगट) तो इस से स्वर्ण बना कर आप अपना दास्य छुड़ा लें।

ह० ।—यह ठीक है पर मैं ने तो बिनती किया न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना सत्व मात्र बेच चुका इस से आप मेरे बदले कृपा कर के मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिये।

ध० ।—(आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र! धन्य तुम्हारा धैर्य! धन्य तुम्हारा विवेक और धन्य तुम्हारी महानुभावता! या

चलै मेरु बरु प्रलय जल, पवन झकोरन पाय।
पै बीरन के मन कबहुं, चलहिं नाहिं ललचाय॥

तो हमें भी इस में कौन हठ है। (प्रत्यक्ष) वेताल! जाओ जो महाराज की आज्ञा है वह करो।

---

† महानिधान बुभुक्षित धातुभेदी पारा जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते हैं।

वे० ।—जो रावल जी की आज्ञा ! (जाता है)

ध० ।—महाराज ब्राह्म मुहूर्त निकट आया अब हम को भी आज्ञा हो ।

ह० ।—जोगिराज ! हम को भूल न जाइयेगा कभी कभी स्मरण कीजियेगा ।

ध० ।—महाराज ! बड़े बड़े देवता आप का स्मरण करते हैं और करेंगे मैं क्या करूं ।

(जाता है)

ह० ।—क्या रात बीत गई ! आज तो कोई भी मुरदा नया नहीं आया । रात के साथ ही स्मशान भी शान्त हो चला भगवान् नित्य ही ऐसा करे । (नेपथ्य में घंटा नूपुरादि का शब्द सुन कर) अरे यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ ?

(विमान पर अष्ट महासिद्धि नव निधि और बारहो प्रयोग आदि देवता * आते हैं)

ह० ।—(आश्चर्य से) अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न हो कर स्मशान पर एकत्र हो रहे हैं ।

दे० ।—महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो । आप के अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूट कर स्वतंत्र हो गए । अब हम आप के वश में हैं जो आज्ञा हो करें । हम लोग अष्ट महासिद्धि नव निधि और बारह प्रयोग सब आप के हाथ में हैं ।

ह० ।—(प्रणाम कर के) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हो तो महासिद्धि योगियों के निधि सज्जन के और प्रयोग साधकों के पास जाओ ।

दे० ।—(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे । हमी लोगों की सिद्धि को बड़े २ योगी मुनि पच मरते हैं पर तुम ने तृण की भांति हमारा त्याग कर के जगत का कल्याण किया ।

---

* साधारण देवी देवताओं के वेश में । अष्ट सिद्धि यथा—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व । नव निधि यथा—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नील और वर्चस् । बारह प्रयोग यथा—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन यह छ बुरे और स्तंभन, वशीकरण, आकर्षण, बन्दी मोचन, काम पूरण और वाक् प्रसारण ये छ अच्छे । ये भी चित्रपट में दिखलाये जायंगी ।

ह० ।—आप लोग मेरे सिर आंखों पर हैं पर मैं क्या करूं, क्योंकि मैं पराधीन हूं। एक बात और भी निवेदन है। वह यह कि क अच्छे प्रयोग की तो हमारे समय में सद्यः सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलम्ब से हो।

दे० ।—महाराज! जो आज्ञा। हम लोग जाते हैं। आज आप के सत्य ने शिव जी के कीलन * को भी शिथिल कर दिया। महाराज का कल्याण हो।

(जाते हैं)

(नेपथ्य में इस भांति मानों राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनता)

(एक स्वर से) तो अप्सरा को भेजें ?

(दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख ! जिस को अष्ट सिद्धि नव निधियों ने नहीं डिगाया उस को अप्सरा क्या डिगावेंगी ।

(एक स्वर से) तो अब अन्तिम उपाय किया जाय ।

(दूसरे स्वर से) हां तक्षक को आज्ञा दे। अब और कोई उपाय नहीं है।

ह० ।—अहा अरुण का उदय हुआ चाहता है। पूर्व दिशाने अपना मुंह लाल किया। (सांस लेकर) " वा चकई को भयो चित चीतो चितोति चहूं दिसि चाय सों नांची। ह्वै गई छीन कलाधर की कला जामिनी जोति मनो जम जांची॥ बोलत बैरी बिहंगम देव संजोगिन की भई संपति कांची। लोहू पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिन प्राची।" हा! प्रिये इन बरसातों की रात को तुम रो रो के बिताती होगी! हा! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर वेचा तब दास हुए तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गये!

जेहि सहसन परिचारिका , राखत हाथहिं हाथ ।
सो तुम लोटत धूर में , दास बालकन साथ ॥
जाकी आयसु जग नृपति , सुनतहि धारत सीस ।
तेहि द्विज बटु आज्ञा करत , अहह कठिन अति ईस ॥
बिनु तन बेंचे बिनु दिये , बिनु जग ज्ञान बिवेक ।
देव सर्प दंशित भए , भोगत कष्ट अनेक ॥

---

* शिव जी ने साधनमात्र को कील दिया है जिस में जल्दी न सिद्ध हों, सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इस से वह कीलन भी शिव जी की इच्छापूर्वक उस समय दूर हो गया था क्योंकि यह भी तो एक सब में बड़ा विघ्न था।

(घबड़ा कर) नारायण ! नारायण ! मेरे मुख से क्या निकल गया। देवता उसकी रक्षा करें। (बांई आंख का फड़कना दिखाकर) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यों हुआ ? (दहिनी भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे और साथही यह मंगल शकुन भी ! न जानें क्या होनहार है, वा अब क्या होनहार है जो होना था सो हो चुका। अब इससे बढ़कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरण मात्र बाकी है। इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहिले ही शरीर छूटे क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है पर वश क्या है।

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र सावधान। यही अन्तिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरखा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एकटक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इनका सिर नीचा हो। अपने धैर्य का स्मरण करो।

ह० ।—(घबड़ा कर ऊपर देख कर) अरे ! यह कौन है ? कुलगुरू भगवान सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं। (ऊपर) पितः मैं सावधान हूं सब दुखों को फूल की माला की भांति ग्रहण करूंगा।

(नेपथ्य में रोने की आवाज सुन पड़ती है)

ह० ।—अरे अब सवेरा होने के समय मुरदा आया ! अथवा चांडाल कुल का सदा कल्याण हो हमें इस से क्या। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा हमें रोती छोड़ के कहां चले गए ! हाय ! हायरे !

ह० ।—अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इस को पुत्र का है। हाय हाय ! हम को भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और वीभत्स कर्म सौंपा है ! इस से भी वस्त्र मांगना पड़ेगा।

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है)

शै० ।—(रोती हुई) हाय ! बेटा जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले ! हाय ! हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुमने न देखा ! हाय ! हायरे ! अब हमारी कौन गति होगी ! (रोती है)

ह० ।— हाय हाय ! इसके पति ने भी इस को छोड़ दिया है। हा इस तपस्विनी को निष्कारण बिधि ने बड़ा ही दुख दिया है।

शै० ।— (रोतीहुई) हाय बेटा। अरे आज मुझे किसने लूट लिया ! हाय मेरी बोलती चिड़िया कहां उड़ गई ! हाय अब मैं किसका मुंह देख के जीऊंगी ! हाय मेरी अन्धी की लड़की कौन छीन ले गया ! हाय मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किस ने तोड़ डाला ! अरे बेटा तैं तो मरे पर भी सुन्दर लगता है ! हाय रे ! अरे बोलता क्यों नहीं ! बेटा जल्दी बोल, देख मा कब की पुकार रही है ! बच्चा तू तो एकही दफे पुकारने में दौड़ कर गले से लपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता। (शव को बारबार गले लगाती देखती और चूमती है)

ह० ।—हाय हाय ! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता।

शै० ।— (पागल की भांति) अरे यह क्या हो रहा है। बेटा कहां गए हो आओ जल्दी ! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगती है यहां मुझ को कौन ले आया है रे ! बेटा जल्दी आओ। अरे क्या कहते हो, मैं गुरू को फूल लेने गया था वहां काले सांप ने मुझे काट लिया ! हाय हायरे ! अरे कहां काट लिया ? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को। अरे वह सांप कहां गया हम को क्यों नहीं काटता ? काट रे काट; क्या उस सुकुंआर बच्चे ही पर बल दिखाना था ? हमें काट। हाय हमको नहीं काटता। अरे हियां तो कोई सांप वांप नहीं है, मेरे लाल झूठ बोलना कब से सीखे ? हाय हाय मैं इतना पुकारती हूं और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा गुरू जी पुकार रहे हैं उनके होम का बेला निकली जाती है। देखो बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं। दो जल्दी उन को दूब और बेल पत्र। हाय हम ने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते ! (ज़ोर से) बेटा सांझ भई, सब विद्यार्थी लोग घर फिर आये, तुम अब तक क्यों नहीं आये ? [आगे शव देख कर] हाय हाय रे अरे मेरे लाल को सांप ने सचमुच डंस लिया ! हाय लाल हाय मेरे आंखों के उंजियाले को कौन ले गया ! हाय मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहां उड़गया ! बेटा अभी तो बोल रहे थे अभी क्या हो गया ! हाय मेरा बसा घर आज किस ने उजाड़ दिया ! हाय मेरी कोख में किसने आग लगा दी। हाय मेरा कलेजा किस ने निकाल लिया। (चिल्ला चिल्ला

कर रोती है) हाय लाल कहां गए। अरे अब मैं किस का मुंह देख की जोऊंगी रे। हाय! अब मा कहके मुझ को कौन पुकारेगा। अरे आज किस वैरी की छाती ठंढी भई रे। अरे तेरे सुकुंआर अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई। अरे बेटा आंख खोलो। हाय मैं सब बिपत तुम्हारा ही मुंह देख कर सहती थी सो अब कैसे जीती रहूंगी। अरे लाल एक बेर तो बोलो! (रोती है)।

ह०।—न जाने क्यों इस के रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है।

शै०।—(रोती हुई) हा नाथ! अरे अपने गोद के खेलाए बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते। हाय! अरे तुम ने तो इस को हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना सो हम ने इस की यह दशा कर दी। हाय! अरे ऐसे समय में भी आ कर नहीं सहाय होते! भला एक बेर लड़के का मुंह तो देख जाओ! अरे मैं अब किस के भरोसे जीऊंगी।

ह०।—हाय हाय! इस की बातों से तो प्राण मुंह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार लूटा जाता है। यहां से हट चलें (कुछ दूर हट कर उस की ओर देखता खड़ा हो जाता है)।

शै०।—(रोती हुई) हाय! यह विपत्त का समुद्र कहां से उमड़ पड़ा! अरे छलिया मुझे छल कर कहां भाग गया! (देख कर) अरे आयुस की रेखा तो इतनी लम्बी है फिर अभी से यह बज्र कहां से टूट पड़ा। अरे ऐसा सुन्दर मुंह, बड़ी २ आंखें, लम्बी २ भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग। हाय मरने के तुझ में कौन से लच्छन थे जो भगवान ने तुझे मार डाला! हाय लाल! अरे बड़े २ जोतसी गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा, सो सब झूठ निकला! हाय! पोथी, पत्रा, पूजा, पाठ, दान, जप, होम, कुछ भी काम न आया! हाय! तुम्हारे बाप का कठिन पुन्य भी तुम्हारा सहाय न भया और तुम चल बसे! हाय!

ह०।—अरे इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है (शव को भली भांति देख कर) अरे इस लड़के में तो सब लच्छण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं। हाय! न जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इसने बुझाया है, और न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है। हाय! रोहि-ताश्व भी इतना बड़ा भया होगा (बड़े सोच से) हाय हाय! मेरे मुंह

से क्या अमंगल निकल गया। नारायण! (सोचता है)

शै०।—भगवान् विश्वामित्र! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे भय हाय!

ह०।—(घबड़ाकर) हाय हाय! यह क्या? (भली भांत देखकर रोता हुआ) हाय अब तक मैं सन्देहहो में पड़ा हूं? अरे मेरी आखें कहां गई थीं जिन ने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना, और कान कहा गए थे जिन ने अब तक महारानी की बोली न सुनी! हा पुत्र! हा लाल! हा सूर्यवंश के अंकुर! हा हरिश्चन्द्र की बिपत्ति के एक मात्र अवलम्ब! हाय! तुम ऐसे-कठिन समय में दुखिया मा को छोड़कर कहां गए। अरे तुम्हारे कोमल अंगों को क्या हो गया! तुम ने क्या खेला, क्या खाया। क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे। पुत्र स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझ से कहते, मैं अपने बाहुबल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुंचा देता। अथवा अब इस अभिमान से क्या। भगवान इसी अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र! (रोता है)

आह! मुझ से बढ़कर और कौन मन्दभाग्य होगा! राज्य गया, धन जन कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुंह दिखाऊं। निस्सन्देह मुझ से अधिक अभागा और कौन होगा। न जाने हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं। जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलि-युग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निस्सन्देह मैं महाअभागा और बड़ा पापी हूं। (रङ्गभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलयकाल आगया? नहीं यह बड़ा भारी असगुन हुआ है। इस का फल कुछ अच्छा नहीं, वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा! हा! न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है। (रोता है) हा सूर्यकुल आलवालप्रबाल! हा हरिश्चन्द्र हृदयानन्दन! हा शैव्यावलम्ब! हा वत्सरोहिताश्व! हा मातृ पितृ विपत्ति सहचर! तुम हमलोगों को इस दशा में छोड़कर कहां गए! आज हम सच मुच चांडाल हुए। लोग कहेगें कि इसने न जानें कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय हम संसार को क्या मुंह दिखावेंगे। (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करें।

हा निर्लज्ज प्राण तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ! हा ! वज्रहृदय इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता ! अरे नेत्रो अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो ! या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है, इसके पूर्व कि किसी से सामना हो प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है (पेड़ के पास जाकर फांसी देने के योग्य डाल खोज-कर उस में दुपट्टा बांधता है) धर्म्म ! मैं ने अपने जान सब अच्छा ही किया परन्तु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना। (दुपट्टे की फांसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविन्द गोविन्द ! यह मैं ने क्या अनर्थ अधर्म विचारा। भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैं ने प्राण त्याग करना चाहा। भगवान सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण नारायण ! इस इच्छा कृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ! हे सर्व्वान्तर्य्यामी जगदीश्वर क्षमा करना, दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती अब तो मैं चांडालकुल का दास हूं, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र ! चलूं अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊं, वा देखूं अब दुखिनी शैव्या क्या करती है (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है)

शै०।—(पहली तरह बहुत रोकर) हाय अब मैं क्या करूं ! अब मैं किस का मुंह देख कर संसार में जीऊंगी ! हाय मैं आज से निपूती भई ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी ! हा नित्य सवेरे उठकर अब मैं किसकी चिन्ता करूंगी ! खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझ से मांग २ कर अब कौन खायगा ! मैं परोसी थाली सूनी देखकर कैसे प्रान रक्खूंगी (रोती है) हाय खेलता २ आकर मेरे गले से कौन लपट जायगा, और मा मा कहकर तनक तनक बातों पर कौन हठ करेगा ! हाय मैं अब किस को अपने आंचल से मुंह की धूल पोंछकर गले लगाऊंगी, और किस के अभिमान से विपत में भी फूली २ फिरूंगी। (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जीके क्या करूंगी। (छाती पीट कर) हाय प्रान तुम अब भी क्यों नहीं निकले। हाय मैं ऐसी स्वारथी हूं कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती ! नहीं नहीं अब मैं न जीऊंगी। या तो इस पेड़

में फांसी लगाकर मरजाऊंगी या गंगा में कूद पड़ूंगी (उन्मत्त की भांत उठकर दौड़ना चाहती है)

ह० ।—(आड़ में से)

तनहिं बेंच दासी कहवाई । मरत स्वामि आयसु बिन पाई ।
करु न अधर्म सोच जिय माहीं । "पराधीन सपने सुख नाहीं"

शै० ।—(चौकन्नी होकर) अहा ! यह किस ने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया । सच है मैं अब इस देह की कौन हूं जो मर सकूं ! हा दैव ! तुझ से यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊं ! (कुछ धीरज धर के) तो चलूं छाती पर वज्र धरके अब लोक रीति करूं । (रोती और लकड़ी चुनकर चिता बनाती हुई) हाय ! जिन हाथों से ठोंक ठोंक कर रोज सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूंगी, जिस के मुंह में छाला पड़ने के भय से कभी मैं ने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे—

(बहुत ही रोती है)

ह० ।—धन देवी आखिर तो चन्द्र सूर्यकुल की स्त्री हो तुम न धीरज करोगी तो और कौन करेगा ।

शै० ।—चिता बनाकर पुत्र के पास आकर (उठाना चाहती और रोती है)

ह० ।—तो अब चलें उस से आधा कफन मांगें (आगे बढ़कर और बल पूर्वक आंसुओं को रोककर शैव्या से) महाभागे ! स्मशान पति की आज्ञा है कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूंकने न पावे सो तुम भी पहले हमें कपड़ा देलो तब क्रिया करो (कफन मांगने को हाथ फैलाता है, अकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्य्य महो सत्य महो दान महो बलं ।
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्व्वं लोकोत्तरं कृतं ॥

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै० ।—हाय ! इस कुसमय में आर्यपुत्र को यह कौन स्तुति करता है ? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो ! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाषंड है ।

ह० ।—(दोनों कानों पर हाथ रखकर) नारायण नारायण ! महाभागे ऐसा मत कहो, शास्त्र, ब्राह्मण, और देवता त्रिकाल में सत्य हैं । ऐसा

कहोगी तो प्रायश्चित्त होगा। अपना धर्म विचारो। लाओ मृतकम्बल हमें दो और अपना काम आरम्भ करो (हाथ फैलाता है)

शै० ।—(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिन्ह देखकर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र इतने दिन तक कहां छिपे थे! देखो अपने गोद के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भांत मसान में पड़ा है (रोती है)

ह० ।—प्रिये धीरज धरो। यह रोने का समय नहीं है। देखो सवेरा हुआ चाहता है ऐसा न हो कि कोई आजाय और हम लोगों को जान ले और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रखकर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हम को दो।

शै० ।—(रोती हुई) नाथ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था अपना आंचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूं, उस में से भी जो आधा दे दूंगी तो यह खुला रह जायगा। हाय चक्रवर्त्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता! (बहुत रोती है)

ह० ।—(बल पूर्वक आंसुओं को रोककर और बहुत धीरज धरकर) प्यारी रो मत। ऐसे ही समय में तो धीरज और धरम रखना काम है। मैं जिसका दास हूं उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिये क्रिया मत करने दो। इस से मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझकर तुम से इस का आधा कफन न लूं तो बड़ा अधर्म हो। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिये धर्म न छोड़ा उस का धर्म आध गज़ कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो सवेरा हुआ चाहता है ऐसा न हो कि कुलगुरू भगवान सूर्य अपने वंश की यह दुर्दशा देखकर चित में उदास हो। (हाथ फैलाता है)

शै० ।—(रोती हुई) नाथ जो आज्ञा। रोहिताश्व का मृतकम्बल फाड़ा चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छुटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है, नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय २ की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं, और भगवान नारायण प्रगट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं)

भ० ।—बस महाराज बस धर्म और सत्य सब की परमावधि हो गई। देखो

तुम्हारे पुण्यभय से पृथ्वी बारम्बार कांपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो। (नेत्रों से आंसू बहते हैं)

ह०।—(साष्टांग दंडवत करके रोता हुआ गद्गद स्वर से) भगवान—! मेरे वास्ते आप ने परिश्रम किया! कहां यह स्मशान भूमि कहां यह मर्त्यलोक, कहां मेरा मनुष्य शरीर, और कहां पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानघन साक्षात आप! (प्रेम के आंसुओं से और गद्गद कंठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

भ०।—(शैव्या से) पुत्री अब शोच मत कर। धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है (रोहिताश्व की ओर देखकर) वत्स रोहताश्व उठो देखो तुम्हारे माता पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं।

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान को प्रणाम कर के माता पिता का मुंह देखने लगता है; आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है)

ह० और शै० (आश्चर्य, आनंद, करुणा, और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते, आंखों से आंसू बहते हैं और एकटक भगवान के मुखारबिन्द की ओर देखते हैं)

(श्रीमहादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इन्द्र और विश्वामित्र आते हैं)*

सब।—धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य! जो आप ने किया सो किसी ने न किया न करेगा।

(राजा हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्व सब को प्रणाम करते हैं)

वि०।—महाराज यह केवल चन्द्र सूर्य तक आप की कीर्त्ति स्थिर रहने के हेतु मैं ने छल किया था सो क्षमा कीजिये और अपना राज्य लीजिये।

(हरिश्चन्द्र भगवान और धर्म का मुंह देखते हैं)

धर्म।—महाराज राज आप का है इस का मैं साक्षी हूं आप निस्सन्देह लीजिये।

सत्य।—ठीक है जिसने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज्य है।

---

* श्रीमहादेव, पार्वती और भैरव का ध्यान सब को विदित है इन्द्र और विश्वामित्र का लिख चुके हैं। धर्म चतुर्भुज, श्याम रङ्ग, पीताम्बर, दण्ड, पद्म और कमल हाथ में। सत्य शुक्ल वरण, श्वेत वस्त्राभरण, नारायण के चारो शस्त्र हाथ में।

श्रीमहादेव।—पुत्र हरिश्चन्द्र भगवान नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यन्त तुम ने पाया तथापि मैं आशिर्वाद देता हूं कि तुम्हारी कीर्त्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्त्ती होय।

पा०।—पुत्री शैव्या! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्त्ति स्वर्ग की स्त्रियां गावें तुम्हारी पुत्रबधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करे।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भै०।—और जो तुम्हारी कीर्त्ति कहै सुने और उस का अनुसरण करे उस को भैरवी यातना न हो।

इन्द्र०।—(राजा को आलिंगन करके और हाथ जोड़ के) महाराज मुझे क्षमा कीजिये। यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ। स्वर्ग कौन कहै आपने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिये आप की रक्षा के हेतु श्री शिव जी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी आप उपाध्याय बने थे, नारद जी बटु बने थे, साक्षात धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और वैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।

ह०।—(गद्गद स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ानेवाला और कौन है।

भ०।—महाराज! और भी जो इच्छा हो मांगो।

ह०।—(प्रणाम करके गद्गद स्वर से) प्रभु! आप के दर्शन से सब इच्छा पूर्ण होगई, तथापि आप की आज्ञानुसार यह बर मांगता हूं कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुंठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

भ०।—एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग जीव मात्र सब परमधाम जायंगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायंगे, तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थित रहेगा। इतनाही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ कुछ और भी मांगो। मैं तुम्हे क्या २ दूं क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हे दे चुका। तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुम को कुछ और बर दूं। तुम्हें बर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता।

ह० ।—(हाथ जोड़ कर) भगवान मुझे अब कौन इच्छा है। मैं और क्या वर मांगूं तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो—

" खल गनन सों सज्जन दुखी मत होइं, हरिपद रति रहै ।
उपधर्म छूटैं, सत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै ॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सब जग सुख लहै ।
तजि ग्राम कविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै ॥"

(पुष्पवृष्टि और बाजे की ध्वनि के साथ जवनिका गिरती है)

इति श्री सत्यहरिश्चन्द्र नाटक सम्पूर्ण हुआ ॥

मुद्राराक्षस—नाटक ।

विशाखदत्त के संस्कृत ग्रन्थ का भाषानुवाद

राजनीति का अपूर्व्व आदर्श ।
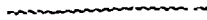
DEDICATION.

परमश्रद्धास्पद

श्री मुंशी राजा शिवप्रसाद बहादुर सी० एस० आई०

के

चरण कमलों में

केवल उन्ही के उत्साह दान से

उनके

वात्सल्य भाजन छात्र द्वारा बना हुआ यह ग्रन्थ

सादर समर्पित हुआ ।

नाटक के पात्र ।

चन्द्रगुप्त—	पटने का राजा (नाटक का नायक)
राक्षस—	नन्द का मन्त्री (नाटक का मुख्य पात्र)
चाणक्य—	चन्द्रगुप्त का मन्त्री (तथा)
मलयकेतु—	पर्वतेश्वर राजा का पुत्र (नाटक का प्रतिनायक)
सिद्धार्थक—	चाणक्य का भेदिया ।
चन्दनदास—	पटने का जौहरी महाजन, राक्षस का मित्र ।
शकटदास—	राक्षस का मित्र ।
विराधगुप्त—	संपेरा बना हुआ राक्षस का भेदिया ।
प्रियम्वदक—	राक्षस का सेवक ।
भागुरायण—	चाणक्य का भेदिया प्रगट में मलयकेतु का मित्र ।
करभक—	राक्षस का भेदिया ।
क्षपणक—	जैनी फकीर बना हुआ चाणक्य का भेदिया ।
भासुरक—	भागुरायण का सेवक ।
समिद्धार्थक—	सिद्धार्थक का मित्र ।

और भी—सूत्रधार, नटी, द्वारपाल, द्वारपालिका, प्रतिहारी, शिष्य, कंचुकी, चन्दन दास की स्त्री, चन्दन दास का पुत्र, पुरुष चंडाल, बन्दीजन और सेवक ।

मुद्रा-राक्षस।

पूर्व्व कथा।

पूर्व काल में भारतवर्ष में मगध राज्य एक बड़ा भारी जनस्थान था. जरासन्ध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहां बड़े प्रसिद्ध हुए हैं. इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी. इन लोगों ने अपना प्रताप और शौर्य इतना बढ़ाया था कि आज तक इन का नाम भूमण्डल पर प्रसिद्ध है. किन्तु कालचक्र बड़ा प्रबल है कि किसी को भी एक अवस्था में रहने नहीं देता. अन्त में (१) नन्दवंश ने पौरवों को निकाल कर वहां अपनी जयपताका उड़ाई. वरञ्च सारे भारतवर्ष में अपना प्रताप विस्तारित कर दिया। इतिहास ग्रन्थों में लिखित है कि एक सौ अड़तीस बरस नन्दवंश ने मगध देश का राज्य किया. इसी वंश में महानन्द का जन्म हुआ. यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यन्त प्रतापशाली राजा हुआ. जब जगद्विजयी सिकन्दर (अलक्षेन्द्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई किया था तब असंख्य हाथी बीस हज़ार सवार और दो लाख पैदल लेकर महानन्द ने उस के विरुद्ध प्रयाण किया था. सारांश यह कि भारतवर्ष में उस समय महानन्द सा प्रतापी और कोई राजा न था।

महानन्द के दो मन्त्री थे. मुख्य का नाम शकटार और दूसरे का राक्षस था. शकटार शूद्र और राक्षस (२) ब्राह्मण था. ये दोनों अत्यन्त बुद्धिमान और महा प्रतिभा सम्पन्न थे. केवल भेद इतना था कि राक्षस धीर और गम्भीर था उस के विरुद्ध शकटार अत्यन्त उग्र स्वभाव था. यहां तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व

---

(१) नन्दवंश सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था. ये लोग शुद्ध क्षत्री नहीं थे।

(२) सिकन्दर के कान्यकुब्ज से आगे न बढ़ने से महानन्द से उस से मुकाबिला नहीं हुआ।

(३) बृहत्कथा में राक्षस मन्त्री का नाम कहीं नहीं है केवल वररुचि से एक सच्चे राक्षस से मैत्री की कथा यों लिखी है. एक बड़ा प्रचण्ड राक्षस पाटलिपुत्र में फिरा करता था. वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि "इस नगर में कौन स्त्री सुन्दर है" वररुचि ने उत्तर दिया "जो जिस को रुचै वही सुन्दर है" इस पर प्रसन्न हो कर राक्षस ने उससे मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करेंगे और फिर सदा राजकाज में ध्यान से प्रसन्न होकर राक्षस वररुचि की सहायता करता।

जमाना चाहता. महानन्द भी अत्यन्त उग्र स्वभाव असहन शील और क्रोधी था. जिसका परिणाम यह हुआ कि महानन्द ने अन्त को शकटार को क्रोधान्ध होकर बड़े निबिड़ बन्दीखाने में क़ैद किया और सपरिवार उसके भोजन को केवल दो सेर सत्तू देता था * ॥

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का अधिकार भोगा था इससे यह अनादर उसको पक्ष में अत्यन्त दुखदाई हुआ. नित्य सत्तू का बरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नन्दवंश के जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह यह सत्तू खाय. मन्त्री के इस वाक्य से दुःखित होकर उसके परिवार का कोई भी सत्तू न खाता. अन्त में कारागार की पीड़ा से एक एक करके उसके परिवार के सब लोग मर गए।

एक तो अपमान का दुख, दूसरे कुटुम्ब का नाश इन दोनों कारणों से शकटार अत्यन्त तन क्षीण मन मलीन दीन हीन हो गया. किन्तु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण

* वृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है. वररुचि व्याड़ि और इन्द्रदत्त तीनों को गुरुदक्षिणा देने के हेतु करोड़ों रुपये के सोने की आवश्यकता हुई. तब इन लोगों ने सलाह किया कि नन्द (सत्यनन्द) राजा के पास चल कर उस से सोना लें. उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था. ये तीनों ब्राह्मण वहां गए किन्तु संयोग से उन्हीं दिनों राजा मर गया. तब आपस में सलाहकर के इन्द्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़ कर राजा के शरीर में चला गया जिससे राजा फिर जी उठा. तभी से उस का नाम योगानन्द हुआ. योगानन्द ने वररुचि को करोड़ रुपये देने की आज्ञा किया. शकटार बड़ा बुद्धिमान था उस ने सोचा कि राजा का मर कर जीना और एकबारगी एक अपरिचित को करोड़ रुपया देना इसमें भी न हो कोई भेद है. ऐसा न हो कि अपना काम करके फिर राजा का शरीर छोड़ कर यह चला जाय. यह सोच कर शकटार ने राज्यभर में जितने मुरदे मिले उनको जलवा दिया उसी में इन्द्रदत्त का भी शरीर जल गया. जब व्याड़ि ने यह वृत्तान्त योगानन्द से कहा तो यह सुन कर पहिले तो दुखी हुआ फिर वररुचि को अपना मन्त्री बनाया. परन्तु अन्त में शकटार की उग्रता से सन्तप्त हो कर उस को अंधे कूंए में क़ैद किया. वृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल नाम लिखा है।

नहीं त्याग किए और थोड़े बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रक्खा. रात दिन इसी सोच में रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा।

कहते हैं कि राजा महानन्द एक दिन हाथ मुंह धोकर हंसते हंसते जनाने में आ रहे थे. विचक्षना नाम की एक दासी जो राजा के मुंह लगने के कारण कुछ धृष्ट हो गई थी राजा को हंसता देखकर हंस पड़ी. राजा उस की ढिठाई से बहुत चिढ़े और उसे पूछा तू क्यों हंसी? उसने उत्तर दिया "जिस बात पर महाराज हंसे उसी पर मैं भी हंसी" महानन्द इस बात पर और भी चिढ़ा और कहा कि अभी बतला मैं क्यों हंसा नहीं तो तुझ को प्राणदंड होगा. दासी से और कुछ उपाय न बन पड़ा और उसने घबड़ा कर इसके उत्तर देने को एक महीने की मुहलत चाही. राजा ने कहा आज से ठीक एक महीने के भीतर जो उत्तर न देगी तो कभी तेरे प्राण न बचेंगे।

बिचक्षना के प्राण उस समय तो बच गए परन्तु महीने के जितने दिन बीतते थे मारे चिन्ता के वह मरी जाती थी. कुछ सोच विचार कर वह एक दिन कुछ खाने पीने की सामग्री लेकर शकटार के पास गई और रो रो कर अपनी सब विपत्ति कहने लगी. मन्त्री ने कुछ देर तक सोच कर उस अवसर की सब घटना पूछी और हंस कर कहा 'मैं जान गया राजा क्यों हंसे थे. कुल्ला करने के समय पानी के छोटे छींटों पर राजा को बटबीज की याद आई और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े बड़ के वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अन्तर्गत हैं. किन्तु भूमि पर पड़ते ही वह जल के छींटे नाश हो गए. राजा अपनी इसी भावना को याद करके हंसते थे. बिचक्षना ने हाथ जोड़ कर कहा यदि आप के अनुमान से मेरे प्राण की रक्षा होगी तो मैं जिस तरह से होगा आप को कैदखाने से छुड़ाऊंगी और जन्म भर आप की दासी होकर रहूंगी।

राजा ने विचक्षना से एक दिन फिर हंसने का कारण पूछा तो विचक्षना ने शकटार से जैसा सुना था कह सुनाया राजा ने चमत्कृत होकर पूछा सच बता तुझ से यह भेद किसने कहा. दासी ने शकटार का सब वृत्त कहा और राजा को शकटार की बुद्धि की प्रशंसा करते देख अवसर पाकर उसके मुक्त होने की भी प्रार्थना की. राजा ने शकटार को बन्दी से छुड़ा कर राक्षस के नीचे मन्त्री बनाकर रक्खा।

ऐसे अवसर पर राजा लोग बहुत चूक जाते हैं. पहिले तो किसी की

अत्यंत प्रतिष्ठा बढ़ानी ही नीति विरुद्ध है. यदि संयोग से बढ़ जाय तो उसकी बहुत सी बातों को तरह देकर टालना चाहिए और जो कदाचित् बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य का राजा अनादर करै तो उसकी जड़ काटकर छोड़ै. फिर उसका कभी बिश्वास न करै. प्राय: अमीर लोग पहले तो मुसाहिब या कारिन्दों को बेतरह सिर चढ़ाते हैं और फिर छोटी छोटी बातों पर उन की प्रतिष्ठा हीन कर देते हैं. इसी से ऐसे लोग राजाओं के प्राण के गांहक हो जाते हैं और अन्त में नन्द की भांति उनका सर्वनाश होता है।

शकटार यद्यपि बन्दी खाने से छूटा और छोटा मंत्री भी हुआ किन्तु अपनी अप्रतिष्ठा और परिवार के नाश का शोक उसके चित्त में सदा पहिले ही सा जागता रहा. रात दिन वह यही सोचता कि किस उपाय से ऐसे अव्यवस्थित चित्त उद्धत राजा को नाश करके अपना बदला लें. एक दिन घोड़े पर वह हवा खाने जाता था. नगर के बाहर एक स्थान पर देखता है कि एक काला सा ब्राह्मण अपनी कुटी के सामने मार्ग की कुशा उखाड़ उखाड़ कर उसकी जड़ में मठा डालता जाता है पसीने से लथपथ है परन्तु कुछ भी शरीर की ओर ध्यान नहीं देता. चारो ओर कुशा के बड़े २ ढेर लगे हुए हैं. शकटार ने आश्चर्य से ब्राह्मण से इस श्रम का कारण पूछा. उसने कहा "मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है. मैं ब्रह्मचर्य में नीति वैद्यक ज्योतिष रसायन आदि संसार की उपयोगी सब विद्या पढ़कर विवाह की इच्छा से नगर की ओर आया था. किन्तु कुश गड़ जाने से मेरे मनोरथ में विघ्न हुआ इससे जब तक इन बाधक कुशाओं का सर्वनाश न कर लूंगा और काम न करूंगा मठा इस वास्ते इनकी जड़ में देता हूं जिससे पृथ्वी के भीतर इनका मूल भी भस्म हो जाय"॥

शकटार के जी में यह ध्यान आया कि ऐसा पक्का ब्राह्मण जो किसी प्रकार राजा से क्रुद्ध हो जाय तो उसका जड़ से नाश करके छोड़ै. यह सोच कर उसने चाणक्य से कहा कि जो आप नगर में चलकर पाठशाला स्थापित करें तो अपने को मैं बड़ा अनुगृहीत समझूं. मैं इसके बदले बेलदार लगा कर यहां की सब कुशाओं को खुदवा डालूंगा. चाणक्य इस पर सम्मत हुआ और नगर में आकर एक पाठशाला स्थापित की. बहुत से विद्यार्थी लोग पढ़ने आने लगे और पाठशाला बड़े धूमधाम से चल निकली।

अब शकटार इस सोच में हुआ कि चाणक्य से राजा से किस चाल से

बिगाड़ हो. एक दिन राजा के घर में श्राद्ध था उस अवसर को शकटार ने अपने मनोरथ सिद्ध होने का अच्छा समय सोच कर चाणक्य को श्राद्ध का न्यौता देकर अपने साथ ले आया और श्राद्ध के आसन पर बिठलाकर चला गया. क्योंकि वह जानता था कि चाणक्य का रङ्ग काला आंखें लाल और दांत काले होने के कारण नन्द उसको आसन पर से उठा देगा जिस से चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसका सर्वनाश करेगा।

और ठीक ऐसाही हुआ, जब राक्षस के साथ नन्द श्राद्धशाला में आया और एक अनिमन्त्रित ब्राह्मण को आसन पर बैठा हुआ और श्राद्ध के अयोग्य देखा तो चिढ़ कर आज्ञा दिया कि इसका बाल पकड़ कर यहां से निकाल दो. इस अपमान से ठोकर खाए हुए सर्प्प की भांति अत्यन्त क्रोधित होकर शिखा खोल कर चाणक्य ने सब के सामने प्रतिज्ञा की कि जब तक इस दुष्ट राजा का सत्यानाश न कर लूंगा तब तक शिखा न बांधूंगा. यह प्रतिज्ञा करके बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया।

शकटार अवसर पा कर चाणक्य को मार्ग में से अपने घर ले आया और राजा की अनेक निन्दा करके उसका क्रोध और भी बढ़ाया और अपनी सब दुर्दशा कह कर नन्द के नाश में सहायता करने की प्रतिज्ञा किया. चाणक्य ने कहा कि जब तक हम राजा के घर का भीतरी हाल न जानैं कोई उपाय नहीं सोच सकते. शकटार ने इस विषय में विचक्षणा की सहायता देने का वृत्तान्त कहा और रात को एकान्त में बुलाकर चाणक्य के सामने उस से सब बात का करार ले लिया।

महानन्द को नौ पुत्र थे आठ विवाहिता रानी से और एक चन्द्रगुप्त मुरा नाम की एक नाइन स्त्री से. इसी से चन्द्रगुप्त को मौर्य और वृषल भी कहते हैं. चन्द्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान था इसीसे और आठो भाई इससे भीतरी द्वेष रखते थे. चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी की बहुत सी कहानियां हैं. कहते हैं कि एक बेर रूम के बादशाह ने महानन्द के पास एक कृत्रिम सिंह लोहे की जाली के पिञ्जरे में बन्द करके भेजा और कहला दिया कि पिंजड़ा टूटने न पावे और सिंह इस में से निकल जाय. महानन्द और उस के आठ औरस पुत्रों ने इसको बहुत कुछ सोचा परन्तु बुद्धि ने कुछ काम न किया. चन्द्रगुप्त ने बिचारा कि यह सिंह अवश्य किसी ऐसे पदार्थ का बना होगा जो या तो पानी से या आग से गल जाय यह सोच कर पहिले उसने उस पिंजड़े को

पानी के कुण्ड में रक्खा और जब वह पानी से न गला तो उस पिंजड़े की चारों तरफ आग जलवाई जिसकी गर्मी से वह सिंह जो लाह और राल का बना था गल गया. एक बेर ऐसे ही किसी बादशाह ने एक अंगीठी में दहकती हुई आग * एक बोरा सरसों और मीठा फल महानन्द के पास अपने दूत के द्वारा भेज दिया. राजा की सभा का कोई भी मनुष्य इसका आशय न समझा किन्तु चन्द्रगुप्त ने सोच कर कहा कि अंगीठी यह दिखलाने को भेजी है कि मेरा क्रोध अग्नि है और सरसों यह सूचन कराती है कि मेरी सेना असंख्य है और फल भेजने का आशय यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है. इस के उत्तर में चन्द्रगुप्त ने एक घड़ा जल और एक पिंजड़े

* दहकती आग की कथा "जरासन्धवध महाकाव्य" में लिखा है कि जरासन्ध ने उग्रसेन के पास अंगीठी भेजी थी शायद उसी से यह कथा निकाली गई हो कौन जाने।

सवैया—रूप की रूपनिधान अनूप अंगीठी नई गढ़ि मोल मगाई।
तामधि पावक पुंज धस्यो गिरिधारन जामैं प्रभा अधिकाई॥
तेज सों ताके ललाई भई रज मैं मिली आसु सबै रजताई।
मानो प्रवालकी थाल बनायकै लालकी रास बिसाल लगाई॥ १॥
ढांकिकै पावक दूत के हाथ दै बात कही इहि भांति बुझायकै।
भोज भुआल सभा महं सम्मुख राखिकै यों कहियो सिरनायकै॥
याहि पठायो जरासुत नै अवलोकहु नीके अधीरज लायकै।
पुत्र खपायकै नातिन पायकै जीहौ जे पायकै कौन उपायकै॥ २॥
दोहा—सुनत चार तिहि हाथ लै, गयो भैम दरबार।
बासव ऐसे कैक सब, जहं बैठे सरदार॥ ३॥
अडिल—जायज़रासुतदूतभैमपतिपदपस्यो। देखिजराज जगइहियेसंभ्रमभस्यो॥
जगत जरावन द्रव्य पात्र आगे धस्यो। सोचजराहै अभय हालबरननकस्यो ४
सुनिबिहंसेजदुबीर जीतकी चाय सों। हंसिबोलेगोविन्द कहहुयहरायसों॥
उचित ससुरपन कौन छत्रकुलन्याय सों। चहीदमाद सहाय सुताकीहायसों ५
सोरठा—इमि कहि द्रुत गहि चाय, आप आप सिखि मैं दियो।
तुरतहि गयो बुझाय, ज्ञान पाय मनभ्रांति जिमि॥ ६॥
बिदा कियो नृप दूत, उर मैं सर को अंक करि।
निरखि बृहदरथ पूत, सदन सहित कोप्यो अतिहि॥ ७॥

में थोड़े से तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा जिसका आशय यह था कि तुम्हारी सैना कितनी भी असंख्य क्यों न हो हमारे वीर उस को भक्षण करने में समर्थ हैं और तुम्हारा क्रोध हमारी नीति से सहज ही बुझाया जा सक्ता है और हमारी मित्रता सदा अमूल्य और एक रस है. ऐसे ही तीन पुतली वाली कहानी भी इसी के साथ प्रसिद्ध है. इसी बुद्धिमानी के कारण चन्द्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे और महानन्द भी अपने औरस पुत्रों का पक्ष करके इस से कुढ़ता था. यह यद्यपि शूद्रा के गर्भ से था परन्तु ज्येष्ठ होने के कारण अपने को राज का भागी समझता था और इसी से इस का राज परिवार से पूर्ण वैमनस्य था. चाणक्य और शकटार ने इसी से निश्चय किया कि हम लोग चन्द्रगुप्त को राज का लोभ देकर अपनी ओर मिला लें और नन्दों का नाश करके इसी को राजा बनावें।

यह सब सलाह पक्की होजाने के पीछे चाणक्य तो अपनी पुरानी कुटी में चला गया और शकटार ने चन्द्रगुप्त और विचक्षणा को तब तक सिखा पढ़ा कर पक्का करके अपनी ओर फोड़ लिया. चाणक्य ने कुटी में जाकर हला-हल विष मिले हुए कुछ ऐसे पकवान तैयार किये जो परीक्षा करने में न पकड़े जांय किन्तु खाते ही प्राण नाश हो जाय. विचक्षणा ने किसी प्रकार से महानन्द को पुत्रों समेत यह पक्वान खिला दिया जिस से विचारे सब के सब एक साथ परम धाम को सिधारे *।

---

* भारतवर्ष की कथाओं में लिखा है कि चाणक्य ने अभिचार से मारण का प्रयोग करके इन सभों को मार डाला. विचक्षणा ने उस अभिचार का निर्माल्य किसी प्रकार इन लोगों के अङ्ग में छुला दिया था. किन्तु वर्त्तमान काल के विद्वान लोग सोचते हैं कि उस निर्माल्य में मन्त्र का बल नहीं था चाणक्य ने कुछ औषधि ऐसे विष मिश्रित बनाये थे कि जिन के भोजन वा स्पर्श से मनुष्य का सद्य:नाश हो जाय. भट्ट सोमदेव की कथा सरित्सागर के पीठ लम्ब के चौथे तरङ्ग में लिखा है "योगानन्द को ऊंची अवस्था में नये प्रकार की काम वासना उत्पन्न हुई. वररुचि ने यह सोच कर कि राजा को तो भोगविलास से छुट्टी हो नहीं है इस से राज काज का काम शकटार निकाला जाय तो अच्छी तरह से चले. यह विचार कर और राजा से पूछ कर शकटार को अन्धे कूए से निकाल कर वररुचि ने मन्त्री पद पर नियत किया, एक दिन शिकार खेलने में गङ्गा में राजा ने अपनी पांचों उंगली की

चन्द्रगुप्त इस समय चाणक्य के साथ था. शकटार अपने दुःख और पापों से सन्तप्त होकर निविड़ बन में चला गया और अनशन कर के प्राण त्याग किये. कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि चाणक्य ने अपने हाथ से शस्त्रद्वारा नन्द का वध किया और फिर क्रम से उस के पुत्रों को भी मारा किन्तु इस विषय का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है. चाहे जिस प्रकार से हो चाणक्य ने नन्दों का नाश किया किन्तु केवल पुत्र सहित राजा के मारने ही से वह चन्द्रगुप्त को राज सिंहासन पर न बैठा सका इससे अपने अन्तरङ्ग मित्र जीवसिद्धि को क्षपणक के वेश में राक्षस के पास छोड़ कर आप राजा लोगों से सहायता लेने की इच्छा से विदेश निकला. अन्त में अफ़गानिस्तान वा

परछांई बररुचि को दिखलाया. बररुचि ने अपनी दो उंगलियों की परछांई ऊपर से दिखाई जिस से राजा के हाथ की परछांई छिप गई. राजाने इन संज्ञाओं का कारण पूछा. बररुचि ने कहा आप का यह आशय था कि पांच मनुष्य मिल कर सब कार्य्य साध सकते हैं. मैं ने यह कहा कि जो दो चित्त एक हो जांय तो पांच का बल व्यर्थ है. इस बात पर राजा ने बररुचि की बड़ी स्तुति किया. एक दिन राजा ने अपनी रानी को एक ब्राह्मण से खिड़की में से बात करते देख कर उस ब्राह्मण को मारने की आज्ञा किया किन्तु अनेक कारणों से वह बच गया. बररुचि ने कहा कि आप के महल की सब यही दशा है और अनेक स्त्री वेषधारी पुरुष महल में रहते हैं और उन सबों को पकड़ कर दिखला दिया और इसी से उस ब्राह्मण के प्राण बचे. एक दिन योगानन्द की रानी के एक चित्र में जो महल में लगा हुआ था बररुचि ने जांघ में तिल बना दिया. योगानन्द को गुप्त स्थान में बररुचि के तिल बनाने से उस पर भी सन्देह हुआ और शकटाल को आज्ञा दिया कि तुम बररुचि को आज ही रात को मार डालो. शकटाल ने उसको अपने घर में छिपा रक्खा और किसी और को उसके बदले मार कर उसका मारना प्रगट किया. एक बेर राजा का पुत्र हिरण्यगुप्त जङ्गल में शिकार खेलने गया था वहां रात को सिंह के भय से एक पेड़ पर चढ़ गया. उस वृक्ष पर एक भालू था किन्तु इस ने उसको अभय दिया. इन दोनों में यह बात ठहरी कि आधी रात तक कुंअर सोवै भालू पहरा दे फिर भालू सोवै कुंअर पहरा दे. भालू ने अपना मित्र धर्म्म निबाहा और सिंह के बहकाने पर भी कुंवर की रक्षा किया. किन्तु अपनी पारी में कुंअर ने सिंह के बहकाने से भालू को

उसके उत्तर ओर के निवासी पर्वतक नामक लोभ परतन्त्र एक राजा से मिलकर और उसको जीतने के पीछे मगध राज्य का आधा भाग देने के नियम पर उस को पटने पर चढ़ा लाया. पर्वतक के भाई का नाम वैरोधक * और पुत्र का मलयकेतु. और भी पांच म्लेच्छ राजाओं को पर्वतक अपने सहाय को लाया था।

इधर राक्षस मंत्री राजा के मरने से दु:खी होकर उसके भाई सरवार्थसिद्धि को सिंहासन पर बैठा कर राजकाज चलाने लगा. चाणक्य ने पर्वतक की सेना लेकर कुसुमपुर चारोओर से घेर लिया. पंद्रह दिन तक घोरतर युद्ध हुआ. राक्षस की सेना और नागरिक लोग लड़ते लड़ते शिथिल हो गए इसी समय में गुप्त रीति से जीवसिद्धि के बहकाने से राजा सरवार्थसिद्धि वैरागी होकर वन में चला गया. इस कुसमय के राजा के चले जाने से राक्षस और भी उदास हुआ. चन्दनदास नामक एक बड़े धनी जौहरी के घर में अपने कुटुम्ब को छोड़ कर और शकटदास कायस्थ तथा अनेक राजनीति जानने वाले विश्वासपात्र मित्रों को और कई आवश्यक काम सौंपकर राजा सरवार्थसिद्धि के फेर लाने को आप तपोवन की ओर गया।

ढकेलना चाहा जिस पर उसने जाग कर मित्रता के कारण कुंवर को मारा तो नहीं किन्तु कान में मूत दिया जिस से कुंवर गूंगा और बहिरा हो गया. राजा को बेटे की इस दुर्दशा पर बड़ा सोच हुआ और कहा कि वररुचि जीता होता तो इस समय उपाय सोचता. शकटाल ने यह अवसर समझ कर राजा से कहा कि वररुचि जीता है और लाकर राजा के सामने खड़ा कर दिया. वररुचि ने कहा कुंवर ने मित्रद्रोह किया है उसका फल है. यह वृत्त कह कर उसको उपाय से अच्छा किया. राजा ने पूछा तुम ने यह सब वृत्तान्त किस तरह जाना. वररुचि ने कहा योगबल से जैसे रानी का तिल. (ठीक यही कहानी राजा भोज उस की रानी भानुमती और उस के पुत्र और कालिदास की भी प्रसिद्ध है) यह सब कह कर और उदास होकर वररुचि जङ्गल में चला गया. वररुचि से शकटाल ने राजा के मारने को कहा था किन्तु वह धर्मिष्ट था इस से सम्मत न हुआ. वररुचि के चले जाने पर शकटार ने अवसर पाकर चाणक्य द्वारा हत्या से नन्द को मारा।

* वैरोधक, विरोधक, वैरोचक, वैवोधक, विरोध, वैरोध इत्यादि कई चाल से लिखी पुस्तकों में यह नाम लिखा है।

चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब सुनकर राक्षस के पहुंचने के पहले ही अपने मनुष्यों से राजा सरवार्थसिद्धि को मरवा डाला. राक्षस जब तपोवन में पहुंचा और सर्वार्थसिद्धि को मरा देखा तो अत्यन्त उदास होकर वहीं रहने लगा. यद्यपि सरवार्थसिद्धि के मार डालने से चाणक्य की नन्दकुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी किन्तु उस ने सोचा कि जब तक राक्षस चन्द्रगुप्त का मंत्री न होगा तब तक राज्य स्थिर न होगा. वरंच बड़े विनय से तपोवन में चाणक्य के पास मंत्रित्व स्वीकार करने का सन्देसा भेजा परन्तु प्रभु भक्त राक्षस ने उसको स्वीकार नहीं किया।

तपोवन में कोई दिन रह कर राक्षस ने यह सोचा कि जब तक पर्वतक को हम न फोड़ेंगे काम न चलेगा. यह सोच कर वह पर्वतक के राज्य में गया और वहां उसके बूढ़े मंत्री से कहा कि चाणक्य बड़ा दगाबाज है वह आधा राज कभी न देगा आप राजा को लिखिये वह मुझ से मिले तो मैं सब राज्य उन को दूं. मंत्री ने पत्रद्वारा पर्वतक को यह सब वृत्त और राक्षस की नीति कुशलता लिख भेजा और यह भी लिखा कि मैं अत्यन्त वृद्ध हूं आगे से मन्त्री का काम राक्षस को दीजिये. पाटलिपुत्र विजय होने पर भी चाणक्य आधा राज देने में विलम्ब करता है यह देख कर सहज लोभी पर्वतक ने मन्त्री की बात मान ली और पत्रद्वारा राक्षस को गुप्त रीति से अपना मुख्य अमात्य बनाकर इधर ऊपर के चित्त से चाणक्य से मिला रहा।

जीवसिद्धि के द्वारा चाणक्य ने राक्षस का सब हाल जान कर अत्यन्त सावधानता पूर्वक चलना आरम्भ किया. अनेक भाषा जानने वाले बहुत से धूर्त पुरुषों को वेष बदल बदल कर भेद लेने को चारो ओर नियुक्त किया. चन्द्रगुप्त को राक्षस का कोई गुप्त चर धोखे से किसी प्रकार की हानि न पहुंचावे इस का भी पक्का प्रबन्ध किया और पर्वतक को विश्वासघातकता का बदला लेने का दृढ़ सङ्कल्प से, परन्तु अत्यन्त गुप्तरूप से उपाय सोचने लगा।

राक्षस ने केवल पर्वतक की सहायता से राज के मिलने की आशा छोड़ कर * कुलूत, मलय, काश्मीर, सिन्धु और पारस इन पांच देशों के राजा से सहायता ली. जब इन पांचो देश के राजाओं ने बड़े आदर से राक्षस को सहायता देना स्वीकार किया तो वह तपोवन के निकट फिर से लौट आया

---

* कुलूत देश किलात वा कुल्लू देश।

और वहां से चन्द्रगुप्त के मारने का एक विषकन्या * भेजी और अपना विश्वासपात्र समझ कर जीवसिद्धि को उस के साथ कर दिया. चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब बात जानकर और पर्वतक की धूर्तता और विश्वासघातकता से क्रुद्ध कर प्रगट में इस उपहार को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया और लाने वालों को बहुत सा पुरस्कार देकर विदा किया. सांझ होने के पीछे धूर्ताधिराज चाणक्य ने इस कन्या को पर्वतक के पास भेज दिया और इन्द्रियलोलुप पर्वतक उसी रात को उस कन्या के संग से मर गया. इधर चाणक्य ने यह सोचा कि मलयकेतु यहां रहेगा तो उस को राज्य का हिस्सा देना पड़ेगा इस से किसी तरह इस को यहां से भगावें तो काम चले. इस कार्य के हेतु भागुरायण नामक एक प्रतिष्ठित विश्वासपात्र पुरुष को मलयकेतु के पास सिखा पढ़ा कर भेज दिया. उसने पिछली रात को मलयकेतु से जाकर उसका बड़े हित बन कर उस से कहा कि आज चाणक्य ने विश्वास घातकता कर के आप के पिता को विषकन्या के प्रयोग से मार डाला और औसर पाकर आप को भी मार डालेगा. मलयकेतु विचारा इस बात के सुनते ही सन हो गया और पिता के शयनागार में जाकर देखा तो पर्वतक को बिछौने पर मरा हुआ पाया. इस भयानक दृश्य के देखतेही मुग्ध मलयकेतु के प्राण सूख गये और भागुरायण की सलाह से उस रात को छिप कर वहां से भाग कर अपने राज्य की ओर चलागया. इधर चाणक्य के सिखाये भद्रभट इत्यादि चन्द्रगुप्त के कई बड़े बड़े अधिकारी प्रगट में राजद्रोही बनकर मलयकेतु और भागुरायण के साथही भाग गये।

राक्षस ने मलयकेतु से पर्वतक के मारे जाने का समाचार सुनकर अत्यन्त सोच किया और बड़े आग्रह और सावधानी से चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्ट साधन में प्रवर्त हुआ।

---

* विषकन्या शास्त्रों में दो प्रकार की लिखी हैं. एक तो थोड़े से ऐसे बुरे योग हैं कि उस लग्न में उस प्रकार के ग्रहों के समय जो कन्या उत्पन्न हो उस के साथ जिस का विवाह हो वा जो उस का साथ करै वह साथ ही वा शीघ्र ही मर जाता है. दूसरे प्रकार की विषकन्या वैद्यक रीति से बनाई जाती थीं. छोटेपन से वरन गर्भ से कन्या को दूध में वा भोजन में थोड़ा थोड़ा विष देते देते बड़ी होने पर उसका शरीर ऐसा विषमय हो जाता था कि जो उसका अङ्ग सङ्ग करता वह मर जाता।

चाणक्य ने कुसुमपुर में दूसरे दिन यह प्रसिद्धकर दिया कि पर्वतक और चन्द्रगुप्त दोनों समान बन्धु थे इस से राक्षस ने विषकन्या भेज कर पर्वतक को मार डाला और नगर के लोगों के चित्त पर जिन को कि यह सब गुप्त अनुसन्धि न मालूम थी इस बात का निश्चय भी करादिया।

इस के पीछे चाणक्य और राक्षस के परस्पर नीति की जो चोटें चली हैं उसी का इस नाटक में वर्णन है॥

महाकवि विशाखदत्त का बनाया।

मुद्राराक्षस नाटक।

स्थान रङ्गभूमि।

रङ्गशाला में नान्दी मङ्गल पाठ करता है।

भरित नेह नव नीर नित , बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरब घन कोऊ , लखि नाचत मन मोर ॥ १ ॥ *

'कौन है सीस पे' 'चन्द्रकला' 'कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी' ।
'हां यही नाम है भूल गई किमि जानत हू तुम प्रान पियारी' ॥
'नारिहि पूछत चन्द्रहि नाहिं' 'कहै बिजया जदि चन्द्र लबारी' ।
यों गिरिजै छलि गंग छिपावत ईस हरौ सब पीर तुम्हारी ॥ २ ॥

पाद प्रहार सों जाइ पताल न भूमि सबै तनु बोझ के मारे ।
हाथ नचाइबे सों नभ मैं इतके उत टूटि परैं नहिं तारे ॥
देखन सों जरि जाहिं न लोक न खोलत नैन कृपा उर धारे ।
यों थल के बिनु कष्ट सों नाचत शर्व हरौ दुख सर्व तुम्हारे ॥ ३ ॥

---

* संस्कृत का मङ्गलाचरण।

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्या:
नामैवास्यास्तदेतत् परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतो: ।
नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दुर्देव्या-
निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्व: ॥ १ ॥

और भी

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने रक्षत: स्वैरपाते-
स्संकोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयत: सर्व्वलोकातिगानाम् ।
दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्रां ज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते-
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिन: पातु वो दु:खनृत्यम् ॥ २ ॥

अर्थ।

'यह आप के सिर पर कौन बड़भागिनी है?' 'शशि कला है०' 'क्या इस का यही नाम है?' 'हां यही तो, तुम तो जानती हो फिर क्यों भूल गईं०' 'अजी हम स्त्री को पूछते हैं चन्द्रमा को नहीं पूछते' 'अच्छा चन्द्र की

नान्दी पाठ के अनन्तर *।

सूत्रधार।—बस ! बहुत मत बढ़ाओ, सुनो आज मुझे सभासदों की आज्ञा है कि सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त कवि का बनाया मुद्राराक्षस नाटक खेलो। सच है ! जो सभा काव्य के गुण और दोष को सब भांति समझती है उस के सामने खेलने में मेरा भी चित्त संतुष्ट होता है।

उपजैं आछे खेत में, मूरखहू के धान।
सघन होन मैं धान के, चहिय न गुनी किसान ॥ ४ ॥

तो अब मैं घर से सुघर घरनी को बुला कर कुछ गाने बजाने का ढंग जमाऊं (घूम कर) यही मेरा घर है, चलूं० (आगे बढ़ कर) अहा ! आज तो मेरे घर में कोई उत्सव जान पड़ता है क्योंकि घरवाले सब अपने अपने काम में चूर हो रहे हैं।

पीसत कोऊ सुगन्ध कोऊ जल भरि के लावत।
कोउ बैठि कै रंग रंग की माल बनावत ॥
कहुं तिय गन हुंकार सहित अति श्रवन सोहावत।
होत मुसल को शब्द सुखद जिय को सुनि भावत ॥ ५ ॥

जो हो घर से स्त्री को बुला कर पूछ लेता हूं (नेपथ्य की ओर)

बात का विश्वास न हो तो अपनी सखी विजया से पूछ लो०' योंहीं बात बना कर गङ्गा जी को छिपा कर देवी पार्वती को ठगने की इच्छा करने वाले महादेव जी का छल तुम लोगों की रक्षा करे०

दूसरा

पृथ्वी झुकने के डर से इच्छानुसार पैर का बोझ नहीं दे सकते, ऊपर के लोकों के इधर उधर हो जाने के भय से हाथ भी यथेच्छ नहीं फेंक सकते, और उसके अग्नि कण से जल जायंगे इसी ध्यान से किसी की ओर भर दृष्टि देख भी नहीं सकते; इससे अधार के सङ्कोच से महादेव जी का कष्ट से नृत्य करना तुम्हारी रक्षा करे।

* नाटकों में पहले मङ्गलाचरण करके तब खेल आरम्भ करते हैं० इस मङ्गलाचरण को नाटक शास्त्र में नान्दी कहते हैं० किसी का मत है कि नान्दी पहले ब्राह्मण पढ़ता है, कोई कहता है सूत्रधार ही, और किसी का मत है कि परदे के भीतर से नान्दी पढ़ी या गाई जाय।

जो गुनवारो सब उपाय को जाननवारो ।
घर को राखनवारो सब कुछ साधन वारो ॥
सो गृह नीति सरूप काज सब कारन संवारो ।
वेगि आउरी नटी बिलम्ब न करु सुनि प्यारो ॥ ६ ॥

(नटी आती है)

नटी ।—आर्य्यपुत्र * ! मैं आई अनुग्रह पूर्वक कुछ आज्ञा दीजिये ।

सूत्र० ।—प्यारी आज्ञा पीछे दी जायगी पहिले यह बता कि आज ब्राह्मणों का न्यौता करके तुमने इन कुटुम्ब के लोगों पर क्यों अनुग्रह किया है ? या आप ही से आज अति॰ लोगों ने कृपा किया है कि ऐसे धूम से रसोई चढ़ रही है ?

नटी ।—आर्य्य ! मैंने ब्राह्मणों को न्यौता दिया है ।

सूत्र० ।—क्यों ! किस निमित्त से ?

नटी ।—चन्द्रग्रहण लगने वाला है ।

सूत्र० ।—कौन कहता है ?

नटी ।—नगर के लोगों से मुंह सुना है ।

सूत्र० ।—प्यारी मैंने ज्योतिःशास्त्र के चौंसठो ए अंगों में बड़ा परिश्रम किया है० जो हो रसोई तो होने दो † पर आज तो गहन है यह तो किसी ने धोखाही दिया है क्योंकि—

चन्द्र ‡ बिम्ब पूरन भए क्रूरकेतु§ हठ दाप ।

---

* संस्कृत मुहाविरे में पति को स्त्रियां आर्य्यपुत्र कह कर पुकारती हैं ।

ए होरा मुहूर्त्त जातक ताजक रमल इत्यादि ।

† अर्थात् ग्रहण का योग तो कदापि नहीं है ० खैर रसोई हो ।

§ केतु अर्थात् राक्षस मन्त्री० राक्षस मन्त्री ब्राह्मण था और केवल नाम उसका राक्षस था किन्तु गुण इस में देवताओं के थे । और केतु ग्रह का हाल पुस्तक के अंत में लिखा है ।

‡ इस श्लोक का यथार्थ तात्पर्य्य जानने को काशी संस्कृत विद्यालय केअध्यक्ष जगद्विख्यात पण्डित वरबापूदेव शास्त्रीको मैंने पत्र लिखा०क्योंकि टीकाकारों ने 'चन्द्रमा पूर्णहोने पर' यही अर्थ किया है और इस अर्थ से मेरा जी नहीं भरा० कारण यह कि पूर्ण चन्द्र में तो ग्रहण लगता ही है इस में विशेष क्या हुआ० शास्त्री जी ने जो उत्तर दिया है वह यहां प्रकाशित होता है ॥

वल सों करि हैं ग्रास कह—

(नेपथ्य में)

हैं मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र० ।— जेहि बुध रच्छत आप । ७ ।

श्रीयुत बाबू साहिब को बापूदेव के कोटिशः आशीर्वाद, आप ने प्रश्न लिख भेजे उनका संक्षेप से उत्तर लिखता हूं ।

१ सूर्य्य का अस्त हो जाने पर जो रात्रि में अंधकार होता है यही पृथ्वी की छाया है और पृथ्वी गोलाकार है और सूर्य्य से छोटी है इस लिये उसकी छाया सूच्याकार शङ्कु के आकार की होती है और यह आकाश में चन्द्र के भ्रमण मार्ग को लांघ के बहुत दूर तक सदा सूर्य्य से छ राशि के अन्तर पर रहती है और पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा भी सूर्य्य से छ राशि के अन्तर पर रहता है । इस लिए जिस पूर्णिमा में चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है अर्थात् पृथ्वी की छाया चन्द्रमा के बिम्ब पर पड़ती है तभी वह चन्द्र का ग्रहण कहलाता है और छाया जो चन्द्र बिम्ब पर देख पड़ती है सही ग्रास कहलाता है । और राहु नामक एक दैत्य प्रसिद्ध है वह चन्द्रग्रहण काल में पृथ्वी की छाया में प्रवेश करके चन्द्र को और प्रजा को पीड़ा करता है इसी कारण से लोक में राहु कृत ग्रहण कहलाता है और उस काल में स्नान दान, जप, होम, इत्यादि करने से वह राहु कृत पीड़ा दूर होती है और बहुत पुण्य होता है ।

२ पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण होने का कारण ऊपर लिखा हि है और पूर्णिमा में चन्द्र बिम्ब भी संपूर्ण उज्जल होता है तभी चन्द्र ग्रहण होता है ।

३ जब कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण होता है इससे पूर्णिमा में चन्द्रमा का और बुध का योग कभी नहीं होता (क्योंकि बुध सर्वदा सूर्य्य के पास रहता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य्य चन्द्रमा से छ राशि के अन्तर पर रहता है इस लिये बुध भी उस दिन चन्द्र से दूर हि रहता है) यों बुध के योग में चन्द्र ग्रहण कभी नहीं हो सकता । इति शिवम् ।

संवत् १९३७ ज्येष्ट शुक्ल १५ मङ्गल दिने, मङ्गलं मङ्गले भूयात् ।

शास्त्री जी से एक दिन मुझे इस विषय में फिर वार्त्ता हुई० शास्त्री जी को मैंने मुद्राराक्षस की पुस्तक भी दिखलाई० इस पर शास्त्री जी ने कहा कि मुझको ऐसा मालूम होता है कि यदि उस दिन उपराग का सम्भव होगा

नटी। आर्य्य ! यह पृथ्वी ही पर से चन्द्रमा को कौन बचाना चाहता है ?
सूत्र०।—प्यारो मैंने भी नहीं लखा, देखो अब फिर से वही पढ़ता हूं और अब
जब वह फिर बोलेगा तो मैं उसकी बोली से पहिचान लूंगा कि कौन है।

तो सूर्य्य ग्रहण का होगा० क्योंकि बुध योग अमावास्या के पास होता भी है० पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि राहु चन्द्रमा का ग्रास करता है और केतु सूर्य्य का, और इस श्लोक में केतु का नाम भी है इस से भी सम्भव होता है कि सूर्य्य उपराग रहा हो० तो चाणक्य का कहना भी ठीक हुआ कि केतु हठ पूर्व्वक क्यों चन्द्र को ग्रसा चाहता है अर्थात् एक तो चन्द्रग्रहण का दिन नहीं दूसरे केतु का चन्द्रमा ग्रास का विषय नहीं क्योंकि नन्द वीर्य्य जात होने से चन्द्रगुप्त राक्षस का वध्य नहीं है० इस अवस्था में 'चन्द्रं असम्पूर्ण मण्डलं' चन्द्रमा का अधूरा मण्डल यह अर्थ करना पड़ेगा० तब छन्द में 'चन्द्र बिम्ब पूरन भए' के स्थान पर 'बिना चन्द्र पूरन भए' पढ़ना चाहिए।

बुध का बिम्ब प्राचीन भास्कराचार्य्य के मतानुसार छ कला पन्द्रह विकला के लगभग है परन्तु नवीनों के मत से केवल दश विकला परम है।

परन्तु इस में कुछ संदेह नहीं कि यह ग्रह बहुत छोटा है क्योंकि प्राचीनों को इस का ज्ञान बहुत कठिनता से हुआ है इसी लिए इस का नाम हीं बुध, ज्ञ, इत्यादि होगया० यह पृथ्वी से ६८८३७७ इतने योजन की दूरी पर मध्यम मान से रहता है और सदा सूर्य्य के अनुचर के समान सूर्य्य के पास ही रहता है एक पाद अर्थात् तीन राशि भी सूर्य्य से आगे नहीं जाता० विल्सन ने केतु शब्द से मलय केतु का ग्रहण किया है० इस में भी एक प्रकार का अलङ्कार अच्छा रहता है।

चमत्कृत बुद्धि सम्पन्न पंडित सुधाकर जी ने इस विषय में जो लिखा है० वह विचित्र ही है० यह भी प्रकाश किया जाता है।

करत अधिक अंधियार वह, मिलि मिलि करि हरिचन्द ।
द्विजराजहु विकशित करत, धनि धनि यह हरिचन्द ॥

श्री बाबू साहब को हमारे अनेक आशिर्वाद,

महाशय !

चन्द्रग्रहण का सम्भव भू छाया के कारण प्रति पूर्णिमा के अंत में होता है और उस समय में केतु और सूर्य्य साथ रहते हैं। परन्तु केतु और सूर्य्य का योग यदि नियत संख्या के अर्थात् पांच राशि सोरह अंश से लेकर छ राशि

(अही चन्द्र पूरन भए फिर से पढ़ता है)

(नेपथ्य में)

हैं! मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है।

सूत्र०।—(सुन कर) जाना।

अरे अहै कौटिल्य

नटी।—(डर नाट्य करती है)

सूत्र०।— दुष्ट टेढ़ी मति वारो।

नन्द वंश जिन सहजहि निज क्रोधानल जारो ॥

चन्द्र ग्रहन को नाम सुनत निज नृप को मानी ।

इतही आवत चन्द्रगुप्त पैं कछु भय जानी ॥ ८ ॥

तो अब चलो हम लोग चलें।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना।

चौदह अंश के वा ग्यारह राशि सोरह अंश से लेकर बारह राशि चौदह अंश के भीतर होता है तब ग्रहण होता है और यदि योग नियत संख्या के बाहर पड़ जाता है तब ग्रहण नहीं होता इस लिये सूर्य्य केतु के योग ही के कारण से प्रत्येक पूर्णिमा में ग्रहण नहीं होता। तब

क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम् ।

अभिभवतुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः ॥

इस श्लोक का यथार्थ अर्थ यह हैं कि क्रूरग्रह सूर्य्य केतु के साथ चन्द्रमा के पूर्ण मण्डल को न्यून करने की इच्छा करता है परन्तु हे बुध योग जो है वही बल से उस चन्द्रमा को रक्षा करता है। यहां बुध शब्द पण्डित के अर्थ में सम्बोधन है ग्रह वाची कदापि नहीं है। बुध शब्द को ग्रहार्थ में ले जाने से जो जो अर्थ होते हैं वे सब बनौआ हैं० इति।

सं० १९३८ बैशाख शुक्ल ५

ऊंचे ह्वै गुरु बुध कवी ; मिलि लरि होत विरूप ।

करत समागम सबहि सों , यह द्विजराज अनूप ॥

आप का

पं० सुधाकर।

प्रथम अङ्क।

स्थान

चाणक्य का घर।

(अपनी खुली शिखा को हाथ से फटकारता हुआ चाणक्य आता है)

चाणक्य।—बता! कौन है जो मेरे जीते चन्द्रगुप्त को बल से ग्रसना चाहता है?

सदा दन्ति के कुम्भ को जो बिदारै।
ललाई नए चन्द सी जौन धारै॥
जंभाई समै काल सो जौन बाढ़े।
भलो सिंह को दांत सो कौन काढ़े॥ ९॥

और भी

काल सर्पिणी नन्द कुल, क्रोध धूम सी जौन।
अबहूं बांधन देत नहिं, अहो शिखा मम कौन॥ १०॥
दहन नन्द कुल बन सहज, अति प्रज्वलित प्रताप।
को मम क्रोधानल पतंग, भयो चहत अब पाप॥ ११॥

शारङ्गरव! शारङ्गरव!

(शिष्य आता है)

शिष्य।—गुरु जी! क्या आज्ञा है।

चाणक्य।—बेटा मैं बैठना चाहता हूं।

शिष्य।—महाराज इस दलान में बेंत की चटाई पहिले ही से बिछी है आप बिराजिये।

चाणक्य।—बेटा! केवल कार्य्य में तत्परता मुझे व्याकुल करती है न कि और उपाध्यायों के तुल्य शिष्य जन से दुःशीलता * (बैठ कर आप ही आप) क्या सब लोग यह बात जान गए कि मेरे † नन्द वंश के नाश से क्रुद्ध हो कर राक्षस, पितावध से दुखी मलयकेतु ‡ से मिल कर जवन राज की सहायता ले कर चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई किया चाहता है। (कुछ सोच

---

* अर्थात् कुछ तुम लोगों पर दुष्टता से नहीं अपने काम की घबड़ाहट से बिछी हुई चटाई नहीं देखी।

† नन्दवंश अर्थात् नवो नन्द; एक नन्द और उसके आठ पुत्र।

‡ पर्वतेश्वर राजा का पुत्र।

कर) क्या हुआ जब मैं नन्द वंश की बड़ी प्रतिज्ञा रूपी नदी से पार उतर चुका तब यह बात प्रकाश होने ही से क्या मैं इस को न पूरी कर सकूंगा ? क्योंकि—

दिसि सरिस रिपु रमनी बदन ससि शोक कारिख लाय कै ।
लै नीति पवनहि सचिव बिटपन छार डारि जराय कै ॥
बिनु पुर निवासी पच्छिगन नृप वंस मूल नसाय कै ।
भो शान्त मम क्रोधाग्नि यह कछु : न हित नहिं पाय कै ॥ १२ ॥ §

और : ।

जिन जनन नैं अति सोच सौं नृप :य प्रगट धिक नहिं कह्यौ ।
पै मम अनादर को अतिहि वह सोच जिय जिन के रह्यौ ॥¶
ते लखहिं आसन सौं गिरायो नन्द सहित समाज कों ।
जिमि सिखर तें बनराज क्रोधि गिरावई गजराज कों ॥ १३ ॥

सो यद्यपि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूं तौ भी चन्द्रगुप्त के हेतु शस्त्र अब भी धारण करता हूं॰ देखो मैंने—

नवनन्दन कौं मूल सहित खोद्यो छन भर में ।
चन्द्रगुप्त में श्री राखी नलिनी जिमि सर में ॥
क्रोध प्रीति सौं एक नासि कै एक बसायो ।
शत्रु मित्र को प्रगट सबन फल लै दिखलायो ॥ १४ ॥

अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नन्दों के मारने से क्या और चन्द्रगुप्त को राज्य मिलने सेही क्या ? (कुछ सोचकर) अहा ! राक्षस की नन्दवंश में कैसी दृढ़ भक्ति है, जब तक नन्द वंश का कोई भी जीता रहेगा तब तक वह कभी शूद्र का मंत्री बनना स्वीकार न करेगा इस्से उसके पकड़ने में हम लोगों को निरुद्यम रहना अच्छा नहीं॰यही समझ कर तो नन्द वंश का सर्वार्थसिद्धि बिचारा तपोवन में चला गया तौ भी हमने मार डाला। देखो राक्षस मलयकेतु को मिलाकर हमारे बिगाड़ने में यत्न करता ही जाता है (आकाश में देख कर) वाह राक्षस

§ अग्नि बिना आधार नहीं जलता।

¶ नन्द ने कुरूप होने के कारण चाणक्य को अपने श्राद्ध से निकाल दिया था।

मन्त्री वाह ! क्यों न हो ! वाह मन्त्रियों में वृहस्पति के समान वाह ! तू धन्य है, क्योंकि—

जब लौं रहै सुखराज को तब लौं सबै सेवा करैं।
पुनि राज बिगड़े कौन स्वामी तनिक नहिं चित में धरैं॥
जे बिपतिहूं में पालि पूरब प्रीति काज संवारहीं।
ते धन्य नर तुम सारिखे दुरलभ अहैं संसय नहीं॥

इसी से तो हम लोग इतना यत्न करके तुम्हें मिलाया चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चन्द्रगुप्त के मन्त्री बनो क्योंकि—

मूरख कातर स्वामि भक्त कछु काम न आवै।
पण्डितहू बिन भक्ति काज कछु नाहिं बनावै॥
निज स्वारथ की प्रीति करैं ते सब जिमि नारी।
बुद्धि भक्ति दोउ होइ तबै सेवक सुखकारी॥

सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूं, यथा शक्ति उसी के मिलाने का यत्न करता रहता हूं। देखो पर्व्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्योंकि सब जानते कि चन्द्रगुप्त और पर्व्वतक मेरे मित्र हैं, तो मैं पर्व्वतक को मार कर चन्द्रगुप्त का पक्ष निर्बल कर दूंगा ऐसी शङ्का कोई न करेगा, सब यही कहैंगे कि राक्षस ने विषकन्या प्रयोग करके चाणक्य के मित्र पर्व्वतक को मार डाला। पर एकान्त में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया है कि तेरे पिता को मैंने नहीं मारा चाणक्य ही ने मारा इससे मलयकेतु मुझ से बिगड़ रहा है। जो हो यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तो भी पकड़ जायगा। पर जो हम मलयकेतु को पकड़ेंगे तो लोग निश्चय कर लेंगे कि अवश्य चाणक्य ही ने अपने मित्र इसके पिता को मारा और अब मित्र पुत्र अर्थात् मलयकेतु को मारना चाहता है। और भी, अनेक देश की भाषा पहिरावा चाल व्यवहार जानने वाले अनेक वेषधारी बहुत से दूत मैंने इसी हेतु चारो ओर भेज रक्खे हैं कि वे भेद लेते रहैं कि कौन हम लोगों से शत्रुता रखता है कौन मित्र है। और कुसुमपुर निवासी नन्द के मन्त्री और सम्बन्धियों के ठीक ठीक वृत्तान्त का अन्वेषण हो रहा है, वैसे ही भद्र भटादिकों को बड़े बड़े पद देकर चन्द्रगुप्त के पास रक्ख दिया है और भक्ति की परीक्षा लेकर

बहुत से अप्रमादी पुरुष भी शत्रु से रक्षाकरने को नियत कर दिए हैं। वैसे ही मेरा सहपाठी मित्र विष्णुशर्म्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्र-नीति और चौसठों कला से ज्योतिषशास्त्र में बड़ा प्रवीण है उसे मैंने पहिले ही जोगी बनाकर नन्द बध की प्रतिज्ञा के अनन्तर ही कुसुम-पुर में भेज दिया है, वह वहां नन्द के मन्त्रियों से मित्रता विशेष करके राक्षस का अपने पर बड़ा विश्वास बढ़ा कर सब काम सिद्ध करेगा, इस्से मेरा सब काम बन गया है परन्तु चन्द्रगुप्त सब राज्य का भार मेरे ही ऊपर रख कर सुख करता है। सच है जो अपने बल बिना और अनेक दुःखों के भोगे बिना राज्य मिलता है वही सुख देता है। क्योंकि—

अपने बल सों लावहिं, यद्यपि मारि सिकार।
तदपि सुखी नहिं होत हैं, राजा सिंह कुमार॥ १६॥

(* जम का चित्र हाथ में लिये जोगी का वेष धारण किये दूत आता है)

दूत।—अरे, और देव को काम नहिं, जम कों करो प्रनाम।
जो दूजन के भक्त को, प्रान हरत परिनाम॥ १७॥

और

उलटे ते हूं बनत है, काज किये अति हेत।
जो जम जी सब को हरत, सोई जीविका देत॥ १८॥

तो इस घर में चल कर जम पट दिखा कर गावैं।

(घूमता है)

शिष्य।—रावल जी! ड्योढ़ी के भीतर न जाना।

दूत।—अरे ब्राह्मण यह किस का घर है?

शिष्य।—हम लोगों के परम प्रसिद्ध गुरु चाणक्य जी का।

दूत०।—(हंसकर) अरे ब्राह्मण तब तो यह मेरे गुरुभाई ही का घर है मुझे भीतर जाने दे मैं उस्को धर्मोपदेश करूंगा।

शिष्य।—(क्रोध से) छिः मूर्ख क्या तू गुरु जी से भी धर्म्म विशेष जानता है?

---

* उस काल में एक चाल के फकीर जम का चित्र दिखला कर संसार की अनित्यता के गीत गाकर भीख मांगते थे।

दूत।—अरे ब्राह्मण क्रोध मत कर सभी सब कुछ नहीं जानता कुछ तेरा गुरु जानता है कुछ मेरे से लोग जानते हैं।

शिष्य।—(क्रोध से) मूर्ख क्या तेरे कहने से गुरु जी की सर्वज्ञता उड़ जायगी?

दूत।—भला ब्राह्मण जो तेरा गुरु सब जानता है तो बतलावे कि चन्द्र किसको नहीं अच्छा लगता?

शिष्य।—मूर्ख इसको जानने से गुरु को क्या काम?

दूत।—यही तो कहता हूं कि यह तेरा गुरु ही समझैगा कि इस जानने से क्या होता है, तू तो सूधा मनुष्य है तू केवल इतना हीं जानता है कि कमल को चन्द्र प्यारा नहीं है। देख—

जदपि होत सुन्दर कमल, उलटो तदपि सुभाव।
जो नित पूरन चन्द सों, करत विरोध बनाव॥

चाणक्य।—(सुन कर आप ही आप) अहा! मैं चन्द्रगुप्त के बैरियों को जानता हूं यह कोई गूढ़ वचन से कहता है।

शिष्य।—चल मूर्ख क्या बेठिकाने की बकवाद कर रहा है।

दूत।—अरे बाह्मना कह सब ठिकाने की बातें होंगी।

शिष्य।—कैसे होंगी।

दूत।—जो कोइ सुनने वाला और समझने वाला होय।

चाणक्य।—रावल जो बेखटके चले आइये यहां आप को सुनने और समझने वाले मिलैंगे।

दूत।—आया (आगे बढ़ कर) जय हो महाराज की।

चाणक्य।—(देख कर आप ही आप) कामों की भीड़ से यह नहीं निश्चय होता कि निपुणक को किस बात के जानने के लिये भेजा था। अरे जाना, इसे लोगों के जी का भेद लेने को भेजा था (प्रकाश) आओ आओ कहो अच्छे हो बैठो।

दूत।—जो आज्ञा (भूमि में बैठता है)

चाणक्य।—कहो जिस काम को गए थे उसका क्या किया, चन्द्रगुप्त को लोग चाहते हैं कि नहीं?

दूत।—महाराज आप ने पहिले ही से ऐसा प्रबन्ध किया है कि कोई चन्द्रगुप्त से विराग न करे इस हेतु सारी प्रजा महाराज चन्द्रगुप्त में अनुरक्त

है, पर राक्षस मन्त्री के दृढ़ मित्र तीन ऐसे हैं जो चन्द्रगुप्त की वृद्धि नहीं सह सकते।

चाणक्य।—(क्रोध से) अरे! कह कौन अपना जीवन नहीं सह सकते, उनके नाम तू जानता है?

दूत।—जो नाम न जानता तो आप के सामने क्योंकर निवेदन करता।

चाणक्य।—मैं सुना चाहता हूं कि उन के क्या नाम हैं?

दूत।—महाराज सुनिये। पहिले तो शत्रु का पक्षपात करनेवाला क्षपणक है।

चाणक्य।—(हर्ष से आप ही आप) हमारे शत्रुओं का पक्षपाती क्षपणक है (प्रकाश) उसका नाम क्या है?

दूत। जीवसिद्ध नाम है।

चाणक्य। तूने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे शत्रुओं का पक्षपाती है?

दूत। क्योंकि उसने राक्षस मन्त्री के कहने से देव पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग किया।

चाणक्य। (आप ही आप) जीवसिद्धि तो हमारा गुप्त दूत है (प्रकाश) हां और कौन है?

दूत। महाराज दूसरा राक्षस मन्त्री का प्यारा सखा शकटदास कायथ है।

चाणक्य। (हंस कर आप ही आप) कायथ कोई बड़ी बात नहीं है तो भी क्षुद्रशत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, इसी हेतु तो मैंने सिद्धार्थक को उसका मित्र बना कर उसके पास रक्खा है (प्रकाश) हां तीसरा कौन है?

दूत। (हंस कर) तीसरा तो राक्षस मन्त्री का मानो हृदय ही पुष्पपुर बासी चन्दनदास नामक वह बड़ा जौहरी है जिस के घर में मन्त्री राक्षस अपना कुटुम्ब छोड़ गया है।

चाणक्य। (आपही आप) अरे यह उसका बड़ा अन्तरङ्ग मित्र होगा क्योंकि पूरे विश्वास बिना राक्षस अपना कुटुम्ब यों न छोड़ जाता (प्रकाश) भला तूने यह कैसे जाना कि राक्षस मन्त्री वहां अपना कुटुम्ब छोड़ गया?

दूत। महाराज इस "मोहर" की अंगूठी से आप को विश्वास होगा (अंगूठी देता है)

चाणक्य।—(अंगूठी लेकर और उसमें राक्षस का नाम बांच कर प्रसन्न होकर आप ही आप) अहा मैं समझता हूं कि राक्षस ही मेरे हाथ लगा (प्रकाश) भला तुमने यह अंगूठी कैसे पाई मुझसे सब वृत्तान्त तो कहो।

दूत।—सुनिये। जब मुझे आप ने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा तब मैंने यह सोचा कि बिना भेस बदले मैं दूसरे के घर में न घुसने पाऊंगा इससे मैं जोगी का भेस करके जमराज का चित्र हाथ में लिये फिरता फिरता चन्दनदास जौहरी के घर में चला गया और वहां चित्र फैला कर गीत गाने लगा।

चाणक्य।—हां तब?

दूत।—तब महाराज कौतुक देखने को एक पांच बरस का बड़ा सुन्दर बालक एक परदे के आड़ से बाहर निकला, उस समय परदे के भीतर स्त्रियों में बड़ा कलकल हुआ कि लड़का कहां गया इतने में एक स्त्री ने द्वार के बाहर मुख निकाल कर देखा और लड़के को झट पकड़ लेगई, पर पुरुष की उंगली से स्त्री की उंगली पतली होती है इससे द्वार ही पर यह अंगूठी गिर पड़ी और मैं उस पर राक्षस मन्त्री का नाम देख कर आप के पास उठा लाया।

चाणक्य।—वाह वाह! क्यों न हो, अच्छा जाओ मैंने सब सुन लिया। तुम्हें इसका फल शीघ्रही मिलेगा।

दूत।—जो आज्ञा (जाता है)

चाणक्य।—शारंगरव शारंगरव।

शिष्य।—(आकर) आज्ञा गुरुजी?

चाणक्य।—बेटा कलम दवात कागज तो लाओ।

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जा कर ले आता है) गुरु जी ले आया।

चाणक्य।—(लेकर, आप ही आप) क्या लिखूं इसी पत्र से राक्षस को जीतना है।

(प्रतिहारी आता है)

प्रतिहारी।—जय हो महाराज की जय हो।

चाणक्य।—(हर्ष से आप ही आप) वाह वाह कैसा सगुन हुआ कि कार्य्यारम्भ ही में जय शब्द सुनाई पड़ा (प्रकाश) कहो शोणोत्तरा! क्यों आए हो?

प्र० ।—महाराज राजा चन्द्रगुप्त ने प्रणाम कहा है और पूछा है कि मैं पर्व्वतेश्वर की क्रिया किया चाहता हूं. इस्से आप की आज्ञा हो तो उनके पहिरे आभरणों को पण्डित ब्राह्मणों को दूं ।

चाणक्य ।—(हर्ष से आप ही आप) वाह चन्द्रगुप्त वाह; क्यों न हो; मेरे जी की बात सोच कर संदेसा कहला भेजा है (प्रकाश) शोणोत्तरा ! चन्द्रगुप्त से कहो कि वाह बेटा वाह क्यों न हो बहुत अच्छा विचार किया, तुम व्यवहार में बड़े ही चतुर हो इस्से जो सोचा है सो करो, पर पर्व्वतेश्वर के पहिरे हुए आभरण गुणवान् ब्राह्मणों को देने चाहिएं इस्से ब्राह्मण मैं चुन के भेजूंगा ।

प्र० ।—जो आज्ञा महाराज (जाता है)

चाणक्य ।—शारंगरव ! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कहो कि जाकर चन्द्रगुप्त से आभरण लेकर मुझ से मिलैं ।

शिष्य।—जो आज्ञा (जाता है)

चाणक्य ।—(आप ही आप) पीछे तो यह लिखैं पर पहिले क्या लिखैं (सोच कर) अहा ! दूतों के मुख से ज्ञात हुआ है कि उस म्लेच्छ राज सेना में से प्रधान पांच राजा परम भक्ति से राक्षस की सेवा करते हैं ।

प्रथम चित्रवर्म्मा कुलूत को राजा भारी ।
मलय देशपति सिंहनाद दूजो बलधारी ॥
तीजो पुस्करनयन अहै काश्मीर देस को ।
सिन्धुसेन पुनि सिन्धु न्टपति अति उग्र भेस को ॥
मेघाच पांचवो प्रबल अति बहु हय जुत पारस न्टपति ।
अब चित्रगुप्त इन नाम कों मेटहिं हम जब लिखहिं इति ॥ *

(कुछ सोच कर) अथवा न लिखूं अभी सब बात योंही रहै (प्रकाश) शारंगरव २ !

शिष्य ।—(आकर) आज्ञा गुरु जी ?

चाणक्य ।—बेटा वैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखैं तो भी उनके अक्षर अच्छे नहीं होते इस्से सिद्धार्थक से कहो (कान में कह कर) कि वह

---

* अर्थात् अब जब हम इन का नाम लिखते हैं तो निश्चय ये सब मरैंगे, इस से अब चन्द्रगुप्त अपने खाते से इन का नाम काट दें, न ये जीते रहैंगे न चन्द्रगुप्त जो लेखा रखना पड़ैगा ।

शकटदास के पास जा कर यह सब बात यों लिखवा कर और " किसी का लिखा कुछ कोई आप ही बांचे " यह सरनामे पर नाम बिना लिखवा कर हमारे पास आवे और शकटदास से यह न कहे कि चाणक्य ने लिखवाया है।

शिष्य।—जो आज्ञा (जाता है)

चाणक्य।—(आप ही आप) आहा! मलयकेतु को तो जीत लिया।

(चिट्ठी लेकर सिद्धार्थक आता है)

सि०।—जय हो महाराज की जय हो, महाराज यह शकटदास के हाथ का लेख है।

चाणक्य।—(लेकर देखता है) वाह कैसे सुन्दर अक्षर हैं (पढ़ कर) बेटा इस पर यह मोहर कर दो।

सि०।—जो आज्ञा (मोहर करके) महाराज इस पर मोहर हो गई अब और कहिए क्या आज्ञा है ?

चाणक्य।—बेटा जी हम तुम्हें एक अपने निज के काम में भेजा चाहते हैं।

सि०।—(हर्ष से) महाराज यह तो आप की कृपा है। कहिये यह दास आप के कौन काम आ सकता है ?

चाणक्य।—सुनो, पहिले जहां सूली दी जाती है वहां जा कर फांसी देनेवालों को दहिनी आंख दबाकर समझा देना * और जब वे तेरी बात समझ कर डर से इधर उधर भाग जायं तब तुम शकटदास को लेकर राक्षस मन्त्री के पास चले जाना। वह अपने मित्र के प्राण बचाने से तुम पर बड़ा प्रसन्न होगा और तुम्हे पारितोषक देगा, तुम उसको लेकर कुछ दिनों तक राक्षस ही के पास रहना और जब और भी लोग पहुंच जांय तब यह काम करना (कान में समाचार कहता है)

सि०।—जो आज्ञा महाराज।

चाणक्य।—शारंगरव शारंगरव!

शिष्य।—(आकर) आज्ञा गुरु जी।

चाणक्य।—कालपाशिक और दण्डपाशिक से यह कह दो कि चन्द्रगुप्त आज्ञा करता है कि जीवसिद्धि क्षपणक ने राक्षस के कहने से विषकन्या

---

* चाण्डालों को पहले से समझा दिया था कि जो आदमी दहनी आंख दबावे उसको हमारा मनुष्य समझ कर तुम लोग चटपट हट जाना।

प्रयोग करके पर्वतेश्वर को मारडाला, यही दोष प्रसिद्ध करके अपमान पूर्वक उसको नगर से निकाल दें।

शिष्य।—जो आज्ञा (घूमता है)

चाणक्य।—बेटा ठहर—सुन, और वह जो शकटदास कायस्थ है वह राक्षस के कहने से नित्य हम लोगों से बुराई करता है, यही दोष प्रगट करके उसको सूली दे दें और उसके कुटुम्ब को कारागार में भेज दें।

शिष्य।—जो आज्ञा महाराज (जाता है)

चाणक्य।—(चिन्ता करके आप ही आप) हा! क्या किसी भांति यह दुरात्मा राक्षस पकड़ा जायगा।

सि०।—महाराज लिया।

चाणक्य।—(हर्ष से आपही आप) अहा! क्या राक्षस को ले लिया (प्रकाश) कहो क्या पाया।

सि०।—महाराज आप ने जो संदेसा कहा वह मैंने भली भांति समझ लिया अब काम पूरा करने जाता हूं!

चाणक्य—(मोहर और पत्र देकर) सिद्धार्थक, जा तेरा काम सिद्ध हो।

सि०।—जो आज्ञा (प्रणाम करके जाता है)

शिष्य।—(आकर) गुरुजी कालपाशिक दंडपाशिक आप से निवेदन करते हैं कि महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा पूर्ण करने जाते हैं।

चाणक्य।—अच्छा, बेटा! मैं चन्दनदास जौहरी को देखा चाहता हूं।

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर चन्दनदास को लेकर आता है) इधर आइये सेठ जी।

चन्दन०।—(आपही आप) यह चाणक्य ऐसा निर्दय है कि यह जो एका-एक किसी को बुलावे तो लोग बिना अपराध भी उस्से डरते हैं, फिर कहां मैं। उसका नित्य का अपराधी जो इसी से मैंने धनसेनादिक तीन महाजनों से कह दिया है कि दुष्ट चाणक्य जो मेरा घर लूट ले तो आश्चर्य नहीं, इस्से स्वामी राक्षस का कुटुम्ब कहीं और ले जाओ, मेरी जो गति होनी है वह हो।

शिष्य।—इधर आइये साह जी।

चाणक्य।—आया (दोनों घूमते हैं)

चाणक्य।—(देख कर) आइये साह जी, कहिये अच्छे तो हैं? बैठिये यह आसन है।

चन्दन० ।—(प्रणाम करके) महाराज आप नहीं जानते कि अनुचित सत्कार अनादर से भी विशेष दुःख का कारण होता है इस्से मैं पृथ्वी ही पर बैठूंगा ।

चाणक्य ।—वाह ? आप ऐसा न कहिए, आप को तो हम लोग के साथ यह व्यवहार उचित ही है इस्से आप आसन ही पर बैठिए ।

चन्दन० ।—' आपही आप) कोई बात तो इसने जानी (प्रकाश) जो आज्ञा (बैठता है)

चाणक्य । कहिए साह जी चन्दनदास जी आप को व्यापार में लाभ तो होता है न ?

चन्दन० ।—महाराज क्यों नहीं, आप की कृपा से सब बनज व्योपार अच्छी भांति चलता है ।

चाणक्य । कहिए साह जी पुराने राजाओं के गुण चन्द्रगुप्त के दोषों को देख कर कभी लोगों को स्मरण आते हैं ?

चन्दन० ।—(कान पर हाथ रख कर) राम राम ! शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की भांति शोभित चन्द्रगुप्त को देख कर कौन नहीं प्रसन्न होता ?

चाणक्य । जो प्रजा ऐसी प्रसन्न है तो राजा भी प्रजा से कुछ अपना भला चाहते हैं ।

चन्दन० ।—महाराज जो आज्ञा; मुझ से कौन और कितनी वस्तु चाहते हैं ?

चाणक्य ।—सुनिये साह जी । यह नन्द का राज नहीं है चन्द्रगुप्त का राज्य है, धन से प्रसन्न होने वाला तो वह लालची नन्द ही था, चन्द्रगुप्त तो तुम्हारे ही भले से प्रसन्न होता है ।

चन्दन० ।—(हर्ष से) महाराज यह तो आप की कृपा है ।

चाणक्य ।—पर यह तो मुझ से पूछिए कि वह भला किस प्रकार से होगा ।

चन्दन० ।—कृपा करके कहिए ।

चाणक्य ।—सौ बात की एक बात यह है कि राजा के विरुद्ध कामों को छोड़ो ।

चनन्द० ।—महाराज वह कौन अभागा है जिसे आप राजविरोधी समझते हैं ।

चाणक्य ।—उस में पहिले तो तुम्ही हौ ।

चन्दन० ।—(कान पर हाथ रख कर) राम राम राम ! भला तिनके से और अग्नि से कैसा बिरोध ?

चाणक्य।—विरोध यही है कि तुमने राजा के शत्रु राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब अब तक घर में रख छोड़ा है ।

चन्दन०।—महाराज यह किसी दुष्ट ने आप से झूठ कह दिया है ।

चाणक्य।—सेठ जी डरो मत, राजा के भय से पुराने राजा के सेवक लोग अपने मित्रों के पास बिना चाहे भी कुटुम्ब छोड़ कर भाग जाते हैं, इस से इस के छिपाने ही में दोष होगा ।

चन्दन०।—महाराज ठीक है, पहिले मेरेघर पर राक्षस मन्त्रीका कुटुम्ब था ।

चाणक्य।—पहिले तो कहा कि किसी ने झूठ कहा है। अब कहते हो था यह गबड़े की बात कैसी ?

चन्दन०।—महाराज इतना ही मुझ से बातों में फिर पड़ गया ।

चाणक्य।—सुनो चन्द्रगुप्त के राज्य में छल का विचार नहीं होता, इस से राक्षस का कुटुम्ब दो तो तुम सच्चे हो जाओगे ।

चन्दन०।—महाराज मैं कहता हूं न पहिले राक्षस का कुटुम्ब था ।

चाणक्य।—तो अब कहां गया ?

चन्दन०।—न जाने कहां गया ।

चाणक्य।—(हंस कर) सुनो सेठ जी तुम क्या नहीं जानते कि सांप तो सिर पर बूटी पहाड़ पर। और जैसा चाणक्य ने नंद को (इतना कह कर लाज से चुप रह जाता है)।

चन्दन०।—(आप ही आप)

> प्रिया दूर घन गरजहीं, अहो दुःख अति घोर ।
> औषधि दूर हिमद्रि पैं, सिर पैं सर्प कठोर ॥

चाणक्य।—चन्द्रगुप्त को अब राक्षस मन्त्री राज पर से उठा देगा यह आशा छोड़ो, क्योंकि देखो—

> नृप नन्द जीवत नीतिबल सों, मति रही जिनकी भली।
> ते वक्र नासादिक सचिव नहिं, थिर सके करि नसि चली ॥
> सो श्री सिमिटि अब आय लिपटी, चन्द्रगुप्त नरेस सों ।
> तेहि दूर को करि सकै चांदनि, छुटत कहं राकेस सों ॥

और भी

"सदा दन्ति के कुम्भ कों" इत्यादि फिर से पढ़ता है ।

चन्दन०।—(आप ही आप) अब तुम को सब कहना फबता है ।

(नेपथ्य में) हटो हटो—

चाणक्य।—शारंगरव ! यह क्या कोलाहल है देखो तो ?

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर) महाराज राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा से राजद्वेषी जीवसिद्धि क्षपणक निरादर पूर्वक नगर से निकाला जाता है।

चाणक्य।—क्षपणक ! हा ! हा ! अथवा राजविरोध का फल भोगै ; सुनो चन्दन दास, देखो, राजा अपने द्वेषियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है, मैं तुम्हारे भले की कहता हूं सुनो, और राक्षस का कुटुम्ब देकर जन्म भर राजा की कृपा से सुख भोगो।

चन्दन०।—महाराज मेरे घर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब नहीं है।

(नेपथ्य में कलकल होता है)

चाणक्य।—शारंगरव ! देखो तो यह क्या कलकल होता है ?

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज राजा की आज्ञा से राजद्वेषी शकटदास कायस्थ को सूली देने ले जाते हैं।

चाणक्य।—राजविरोध का फल भोगै। देखो सेठ जी राजा अपने विरोधियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है इस से राक्षस का कुटुम्ब छिपाना वह कभी न सहैगा, इसी से उसका कुटुम्ब देकर तुम को अपना प्राण और कुटुम्ब बचाना हो तो बचाओ।

चन्दन०।—महाराज क्या आप मुझे डर दिखाते हैं, मेरे यहां अमात्य राक्षस का कुटुम्ब हई नहीं है पर जो होता तो भी मैं न देता।

चाणक्य।—क्या चन्दनदास तुम ने यही निश्चय किया है।

चन्दन०।—हां मैंने यही दृढ़ निश्चय किया है।

चाणक्य।—(आपही आप) वाह चन्दनदास वाह क्यों न हो !

दूजे के हित प्राण दै , करै धर्म प्रतिपाल ।
को ऐसो शिविकी बिना ; दूजो है या काल ॥

(प्रकाश) क्या चन्दनदास तुमने यही निश्चय किया है।

चन्दन०।—हां हां मैंने यही निश्चय किया है।

चाणक्य।—(क्रोध से) दुरात्मा दुष्ट बनियां देख राज कोप का कैसा फल पाता है।

चन्दन०।—(बांह फैलाकर) मैं प्रस्तुत हूं आप जो चाहिए अभी दण्ड दीजिए।

चाणक्य।—(क्रोध से) शारंगरव! कालपाशिक दण्डपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दण्ड दें। नहीं ठहरो, दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इस के घर का सारा धन लेलें और इसको कुटुम्ब समेत पकड़ कर बांध रक्खें, तब तक मैं चन्द्रगुप्त से कहूं वह आप ही इसके सर्वस्व और प्राण हरण की आज्ञा देगा।

शिष्य।—आज्ञा महाराज! सेठ जी इधर आइये।

चन्दन०।—लीजिये महाराज यह मैं चला (उठ कर चलता है) (आप ही आप) अहा मैं धन्य हूं कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, अपने हेतु तो सभी मरते हैं।

[दोनों बाहर जाते हैं]

चाणक्य।—[हर्ष से] अब ले लिया है राक्षस को क्योंकि—

जिमि इन तृन सम प्रान तजि, कियो मित्र को त्रान।
तिमि सोहू निज मित्र अरु, कुल रखि है दै प्रान॥

(नेपथ्य में कलकल)

चाणक्य।— शारंगरव!

शिष्य।—(आकर) आज्ञा गुरु जी?

चाणक्य।— देख तो यह कैसी भीड़ है।

शिष्य।—(बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर) महाराज शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया।

चाणक्य।—(आप ही आप) वाह सिद्धार्थक काम का आरम्भ तो किया (प्रकाश) हैं क्या लेगया? (क्रोध से) बेटा दौड़ कर भागुरायण से कहो कि उसको पकड़े।

शिष्य।—(बाहर जाकर आता है) (विषादसे) गुरुजी भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है।

चाणक्य।—(आप ही आप) निज काज साधने के लिये जाय (क्रोध से प्रकाश) भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा से कहो कि दुष्ट भागुरायण को पकड़ें।

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर विषाद से) महाराज बड़े दुःख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा हलचल हो रहा है भद्रभट इतयादि तो सब पिछली ही रात भाग गए।

चाणक्य ।—(आप ही आप) सब काम सिद्ध करैं (प्रकाश) बेटा सोच मत करो ।

जे बात कछु जिय धारि भागि भले सुख सों भागहीं ।
जे रहे तेहू जाहिं तिनको सोच मोहि जिय कछु नहीं ।
सत सैन हूं सो अधिक साधिनि काज की जेहि जग कहै ।
सो नन्द कुल की खननहारी बुद्धि नित मोमैं रहै ।

(उठ कर और आकाश की ओर देख कर) अभी भद्रभटादिकों को पकड़ता हूं (आप ही आप) राक्षस ! अब मुझ से भाग के कहां जायगा, देख—

एकाकी मदगलित गज , जिमि नर लावहिं बांधि ।
चन्द्रगुप्त के काज मैं , तिमि तोहि धरिहैं साधि ॥

(सब जाते हैं)—(जवनिका गिरती है)

इति प्रथमाङ्कः ।

अथ द्वितीय अङ्क ।

स्थान राजपथ

(मदारी आता है)

मदारी।—अललललललल , नाग लाए सांप लाए !

तन्त्र युक्ति सब जानहीं , मण्डल रचहिं विचार ।
मन्त्र रच्छहीं ते करहिं , अहि न्टप को उपचार ॥

(* आकाश में देख कर) महाराज क्या कहा ? तू कौन है? महाराज मैं जीर्णविष नाम संपेरा हूं (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा कि मैं भी सांप का मन्त्र जानता हूं खेलूंगा ? तो आप काम क्या करते हैं यहतो कहिए ? (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा मैं राजसेवक हूं ? तो आप तो सांप के साथ खेलते ही हैं। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा कैसे, मन्त्र और जड़ी बिन मदारी और आंकुस बिन मतवाले हाथी का हाथीवान, वैसे ही नए अधिकार के संग्राम विजयी राजा के सेवक ये तीनों अवश्य नष्ट होते हैं (ऊपर देख कर) यह देखते २ कहां चला गया। (फिर ऊपर देख कर) क्या महाराज ? पूछते हो कि इन पिटारियों में क्या है ? इन पिटारियों में मेरी जीविका के सर्प हैं। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा मैं देखूंगा ? वाह वाह महाराज देखिये देखिये मेरी बोहनी हुई, कहिए इसी स्थान पर खोलूं ? परन्तु यह स्थान अच्छा नहीं है, यदि आप को देखने की इच्छा हो तो आप इस स्थान में आइये मैं दिखाऊं (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा कि यह स्वामी राक्षस मन्त्री का घर है इसमें मैं घुसने न पाऊंगा, तो आप जांय महाराज मैं तो अपनी जीविका के प्रभाव से सभी के घर जाता आता हूं। अरे क्या वह गया (चारो ओर देख कर) अहा ! बड़े आश्चर्य की बात है, जब मैं चाणक्य की रक्षा में चन्द्रगुप्त को देखता हूं तब समझता हूं कि चन्द्रगुप्त ही राज्य करेगा पर जब राक्षस की रक्षा में मलयकेतु को देखता हूं तब चन्द्रगुप्त का राज गया सा दिखाई देता है। क्योंकि—

चाणक्य ने लै जदपि बांधी बुद्धिरूपी डोर सों।

---

* 'अकाश में देख कर' या 'ऊपर देख कर' का आशय यह है मानों दूसरे से बात करता है।

करि अचल लक्ष्मी मौर्य्यकुल मैं नीति के निज जोर सों ॥
पै तदपि राक्षस चातुरी करि हाथ मैं ताकों करै ।
गहि ताहि खींचत आपुनी दिसि मोहि यह जानी परै ॥

सो इन दोनों परम नीति चतुर मन्त्रियों के विरोध में नन्द कुल की लक्ष्मी संशय में पड़ी है।

दोऊ सचिव विरोध सों , जिमि वन जुग गजराय ।
हथिनी सी लक्ष्मी विचल , इत उत झोंका खाय ॥
तो चलूं अब मन्त्री राक्षस से मिलूं।

(जवनिका उठती है और आसन पर बैठा राक्षस और पास प्रियम्वदक नामक सेवक दिखाई देते हैं)

राक्षस।—(ऊपर देखकर आंखों में आंसू भरकर) हा! बड़े कष्ट की बात है—

गुन नीति बल सों जीति अरि जिमि आपु जादवगन हयो ।
तिमि नन्द को यह विपुल कुल विधि वामसों सब नसि गयो ॥
एहि सोच में मोहि दिवस अरु निसि नित्य जागत बीतहीं ।
यह लखो चित्र विचित्र मेरे भाग के बिनु भीतहीं ॥

अथवा।

बिनु भक्ति भूले बिनहिं स्वारथ हेतु हम यह पन लियो ।
बिनु प्राण के भय, बिनु प्रतिष्ठा लाभ सब अवलों कियो ॥
सब छोड़ि कै परदासता एहि हेत नित प्रति हम करैं ।
जो स्वर्ग मैं हूं स्वामि मम निज शत्रु हत लखि सुख भरैं ॥

(आकाश की ओर देखकर दुःख से) हा! भगवती लक्ष्मी! तू बड़ी अगुणज्ञा है। क्योंकि—

निज तुच्छ सुख के हेतु तजि गुणरासि नन्द नृपाल कों ।
अब शूद्र मैं अनुरक्त ह्वै लपटी सुधा मनु व्याल कों ॥
ज्यों मत्त गज के मरत मद की धार ता साथहि नसैं ।
त्यों नन्द के साथहि नसी किन निलज अजहूं जग बसैं ॥

अरे पापिन!

का जग मैं कुलवन्त नृप , जीवत रह्यो न कोय ।
जो तू लपटी शूद्र सों , नीच गामिनी होय ॥

अथवा।

बारबधू जन को अहै, सहजहिं चपल सुभाव।
तजि कुलीन गुनियन करहिं, ओछे जन सों चाव॥

तो हम भी अब तेरा आधार ही नाश किए देते हैं। (कुछ सोच कर) हम मित्रवर चन्दनदास के घर अपना कुटुम्ब छोड़ कर बाहर चले आए सो अच्छाही किया। क्योंकि एक तो अभी कुसुमपुर को चाणक्य घेरा नहीं चाहता, दूसरे यहां के निवासी महाराज नन्द में अनुरक्त हैं, इस से हमारे सब उद्योगों में सहायक होते हैं। वहां भी विषादिक से चन्द्रगुप्त के नाश करने को और सब प्रकार से शत्रु का दांव घात व्यर्थ करने को बहुत सा धन देकर शकटदास को छोड़ ही दिया है। प्रति क्षण शत्रुओं का भेद लेने को और उस का उद्योग नाश करने को भी जीवसिद्धि इतयादि सुहृद नियुक्त ही हैं। सो अब तो—

विष वृक्ष, अहि सुत, सिंहपोत समान जा दुखरास कों।
नृपनन्द निजसुत जानि पाल्यो सकुल निज अस नास कों॥
ता चन्द्रगुप्तहि बुद्धि सर सम तुरत मारि गिराइहै।
जो दुष्ट दैव न कवच बनि कै असह आड़े आइहै॥

(कंचुकी आता है)

कंचुकी।—(आप ही आप)

नृप नन्द काम समान चानक नीति जरजर जर भयो।
पुनि धर्म सम पुर देह सों नृप चन्द्र क्रम सों बढ़ि लयो॥
अवकास लहि तेहि लोभ राक्षस जदपि जीतन जाइहै।
पै सिथिल बल भे नाहिं कोउ बिधि चन्द्र पै जय पाइहै॥

[देखकर] यह मन्त्री राक्षस है [आगे बढ़ कर] मन्त्री! आप का कल्याण हो।

राक्षस।—जाजलक! प्रणाम करता हूं। अरे प्रियम्वदक! आसन ला।

प्रियम्वदक।—[आसन ला कर] यह आसन है, आप बैठें।

कंचुकि।—[बैठकर] मन्त्री! कुमार मलयकेतु ने आप को यह कहा है कि आप ने बहुत दिनों से अपने शरीर का सब शृङ्गार छोड़ दिया इससे मुझे बड़ा दुःख होता है। यद्यपि आप को अपने स्वामी के गुण नहीं भूलते और उनके वियोग के दुख में यह सब कुछ नहीं अच्छा लगता तथापि

मेरे कहने से आप इनको पहिरें [आभरण दिखलाता है] मंत्री ये आभरण कुमार ने अपने अङ्ग से उतार कर भेजे हैं आप इन्हें धारण करें।

राक्षस।—जाजलक ! कुमार से कह दो कि तुम्हारे गुणों के आगे मैं स्वामी के गुण भूल गया। पर—

इन दुष्ट वैरिन सों दुखी निज अंग नाहिं संवारि हौं।
भूषन बसन सिंगार तब लौं हौं न तन कछु धारि हौं॥
जब लौं न सब रिपु नासि पाटलि पुत्र फेर बसाइहौं।
हे कुवर तुम कों राज दै सिर अचल छत्र फिराइहौं॥

कंचुकी।—अमात्य ! आप जो न करो सो थोड़ा है, यह बात कौन कठिन है, पर कुमार की यह पहिली विनती तो मानने ही के योग्य है।

राक्षस।—मुझे तो जैसी कुमार की आज्ञा माननीय है वैसी ही तुम्हारी भी इस्से मुझे कुमार की आज्ञा मानने में कोई विचार नहीं है।

कंचुकी।—[आभूषण पहिराता है] कल्याण हो महाराज मेरा काम पूरा हुआ।

राक्षस।— मैं प्रणाम करता हूं।

कंचुकी।—मुझ को जो आज्ञा हुई थी सो मैंने पूरी की [जाता है]

राक्षस।—प्रियम्वदक ! देख तो मेरे मिलने को द्वार पर कौन खड़ा है।

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा [आगे बढ़ कर संपेरे के पास आकर] आप कौन हैं ?

संपेरा।—मैं जीर्णविष नामक संपेरा हूं और राक्षस मन्त्री के साम्हने मैं सांप खेलना चाहता हूं। मेरी यही जीविका है।

प्रियम्वदक।—तो ठहरो हम अमात्य से निवेदन करलें [राक्षस के पास जाकर] महाराज ! एक संपेरा है। वह आप को अपना करतब दिखलाया चाहता है।

राक्षस।—[बांई आंख का फरकना देख कर, आप ही आप] हैं आज पहिलेही सांप दिखाई पड़े [प्रकाश] प्रियम्वदक ! मेरा सांप देखने को जी नहीं चाहता सो इसे कुछ देर बिदा कर।

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा [संपेरे के पास जा कर] लो मंत्री तुम्हारा कौतुक बिना देखे ही तुम्हें यह देते हैं, जाओ।

संपेरा।—मेरी ओर से यह बिनती करो कि मैं केवल संपेराही नहीं हूं किन्तु भाषा का कवि भी हूं इस्से जो मंत्री जी मेरी कविता मेरे मुख से न सुना चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ़ लें [एक पत्र देता है]

प्रियम्वदक।—[पत्र लेकर राक्षस के पास आकर] महाराज वह संपेरा कहता है कि मैं केवल संपेरा ही नहीं हूं भाषा का कवि भी हूं इस्से जो मन्त्री जी मेरी कविता मेरे मुख से सुनना न चाहैं तो यह पत्र ही दे दो पढ़ लें [पत्र देता है]

राक्षस।—[पत्र पढ़ता है]

सकल कुसुम रस पान करि , मधुप रसिक सिरताज ।
जो मधु त्यागत ताहि लै , होत सबै जग काज ॥

[आप ही आप] अरे ! !—"मैं कुसुमपुर का वृत्तान्त जानने वाला आप का दूत हूं" इस दोहे से यह ध्वनि निकलती है। अह ! मैं तो कामों से ऐसा घबड़ा रहा हूं कि अपने भेजे भेदिया लोगों को भी भूल गया, अब स्मरण आया, यह तो संपेरा बना हुआ विराधगुप्त कुसुमपुर से आया है [प्रकाश] प्रियम्वदक ! इस्को बुलाओ यह सुकवि है, मैं भी इसकी कविता सुना चाहता हूं ।

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा [संपेरे के पास जाकर] चलिए मन्त्री जी आप को बुलाते हैं ।

संपेरा।—[मन्त्री के साम्हने जाकर और देखकर आप ही आप] अरे यही मन्त्री राक्षस है ? अहा ।—

लै बास बाहुलताहि राखत कण्ठ सौं खसि खसि परै ।
तिमि धरै दच्छिन बाहु कोहूं गोद में बिचलै गिरै ॥
जा बुद्धि के डर होइ सङ्कित नृप हृदय कुच नहिं धरै ।
अजहूं न लच्छी चन्द्रगुप्त हि गाढ़ आलिङ्गन करै ॥

(प्रकाश) मन्त्री की जय हो।

राक्षस।—(देखकर) अरे विराध—(संकोचसे बात उड़ाकर) प्रियम्वदक ! मैं जब तक सर्पों से अपना जी बहलाता हूं तब तक सबको लेकर तू बाहर ठहर।

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा।

[बाहर जाता है]

राक्षस।—मित्र विराधगुप्त ! इस आसन पर बैठो ।

विराधगुप्त।—जो आज्ञा (बैठता है)

राक्षस।—[बैठता है] हा ! महाराज नन्द के आश्रित लोगों की यह अवस्था ! [रोता है]

दूसरे से

विराधगुप्त।—आप कुछ शोच न करें भगवान की कृपा से शीघ्र ही वही अवस्था होगी।

राक्षस।—मित्र विराधगुप्त! कहो कुसुमपुर का वृत्तान्त कहो?

विराधगुप्त।—महाराज! कुसुमपुर का वृत्तान्त बहुत लम्बा चौड़ा है इस्से जहां से आज्ञा हो वहां से कहूं।

राक्षस।—मित्र! चन्द्रगुप्त के नगर प्रवेश के पीछे मेरे भेजे हुए विष देने वाले लोगों ने क्या क्या किया यह सुना चाहता हूं।

विराधगुप्त।—सुनिए—शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारस, वाल्हीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजों की सहायता से और चन्द्रगुप्त पर्वतेश्वर के बल रूपी समुद्र से कुसुमपुर चारो ओर से घिरा हुआ है।

राक्षस।—(कृपाण खींच कर क्रोध से) हैं! मेरे जीते कौन कुसुमपुर घेर सकता है? प्रवीरक! प्रवीरक!

चढ़ौ लै सरैं धाइ घेरौ अटा कौं। धरौ द्वार पै कुंजरैं ज्यौं घटा कौं॥
कहौ जोधनै मृत्यु कौ जीति धावैं। चलैं सङ्ग मै छांड़ि कै कीर्त्ति पावैं॥

विराधगुप्त।—महाराज! इतनी शीघ्रता न कीजिये मेरी बात सुन लीजिये।

राक्षस।—कौन बात सुनूं? अब मैं ने जान लिया कि इसी का समय आगया है (शस्त्र छोड़ कर आंखों में आंसू भर कर) हा! देव नन्द! राक्षस को तुम्हारी कृपा कैसे भूलैगी?

हैं जहां झुंड खड़े गज मेघ के अज्ञा करौ तहां राक्षस! जाय कै।
त्यौं ये तुरङ्ग अनेकन हैं तिनहूं के प्रबन्धहि राखौ बनाय कै॥
पैदल ये सब तेरे भरोसे हैं काज करौ तिनको चित लाय कै।
यौं कहि एक हमैं तुम मानत हे निज काज हजार बनाय कै॥

हां फिर?

विराधगुप्त।—तब चारो ओर से कुसुमनगर घेर लिया और नगर वासी बिचारे भीतर ही भीतर घिरे २ घबड़ा गए, उन की उदासी देख कर सुरंग के मार्ग से सर्व्वार्थसिद्धि तपोबन में चलागया, और स्वामी के बिरह से आप के सब लोग शिथिल हो गए तब अपने जय की डौंड़ी सब नगर में शत्रु लोगों ने फिरवा दी, और आप के भेजे हुए लोग सुरङ्ग में इधर उधर छिप गए, और जिस विषकन्या को आप ने चन्द्रगुप्त के नाश हेत भेजा था उस्से तपस्वी पर्व्वतेश्वर मारा गया।

राक्षस ।—आहा मित्र ! देखो कैसा आश्चर्य्य हुआ—

जो विषमयी नृप चन्द्र बध हित नारि राखी लाइ कै ।
तामों हत्यो पर्व्वत उलटि चानक्य बुद्धि उपाइ कै ॥
जिमि करन शक्ति अमोघ अरजुन हेतु धरी छिपाइ कै ।
पै कृष्ण के मत सों घटोत्कच पैं परी घहराइ कै ॥

विराधगुप्त ।—महाराज ! समय की सब उलटी गति है !—क्या कीजियेगा ?

राक्षस ।—हां तब क्या हुआ ?

विराधगुप्त ।—तब, पिता का वध सुन कर कुमार मलयकेतु नगर से निकल कर चले गए, और पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोध पर उन लोगों ने अपना विश्वास जमा लिया। तब उस दुष्ट चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का प्रवेश मुहूर्त्त प्रसिद्ध करके नगर के सब बढ़ई और लोहारों को बुला कर एकत्र किया और उन से कहा कि महाराज के नन्द-भवन में गृह-प्रवेश का मुहूर्त्त ज्योतिषियों ने आज ही आधी रात का दिया है इस्से बाहर से भीतर तक सब द्वारों को जांच लो; तब उस्से बढ़ई लोहारों ने कहा कि महाराज ! चन्द्रगुप्त का गृह प्रवेश जानकर दारुवर्म्मा ने प्रथम द्वार तो पहिले ही सोने की तोरनों से शोभित कर रक्खा है भीतर के द्वारों को हम लोग ठीक करते हैं। यह सुन कर चाणक्य ने कहा कि बिना कहे ही दारुवर्म्मा ने बड़ा काम किया इस्से उस्को चतुराई का पारितोषिक शीघ्र ही मिलैगा।

राक्षस ।—(आश्चर्य्य से) चाणक्य प्रसन्न हो यह कैसी बात है ? इस्से दारुवर्म्मा का यत्न या तो उलटा हो या निष्फल होगा क्योंकि इसने बुद्धि मोह से या राजभक्ति से बिना समय ही चाणक्य के जी में अनेक सन्देह और विकल्प उत्पन्न कराया। हां फिर ?

विराधगुप्त ।—फिर उस दुष्ट चाणक्य ने बुला कर सब को सहेज दिया कि आज आधी रात को प्रवेश होगा, और उसी समय पर्वतेश्वर के भाई-वैरोधक और चन्द्रगुप्त को एक आसन पर बिठा कर पृथ्वी का आधा २ भाग कर दिया।

राक्षस ।—क्यों पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक को आधा राज मिला यह पहिले ही उसने सुना दिया।

विराधगुप्त ।—हां तो इस्से क्या हुआ ?

राक्षस।—(आप ही आप) निश्चय यह ब्राह्मण बड़ा धूर्त्त है कि इस ने उस सीधे तपस्वी से इधर उधर की चार बात बना कर पर्व्वतेश्वर के मारने के अपयश निवारण की हेतु यह उपाय सोचा (प्रकाश) अच्छा कहो—तब ?

विराधगुप्त।—तब यह तो उसने पहिले ही प्रकाश कर दिया था कि आज रात को गृह-प्रवेश होगा, फिर उसने वैरोधक को अभिषेक कराया और बड़े बड़े बहुमूल्य स्वच्छ मोतियों का उसको कवच पहिराया, और अनेक रत्नों से जड़ा सुन्दर मुकुट उस्के सिर पर रक्खा और गले में अनेक सुगन्ध के फूलों की माला पहिराई, जिस्से वह एक ऐसे बड़े राजा की भांति हो गया कि जिन लोगों ने उसे सर्वदा देखा है वे भी न पहिचान सकैं, फिर उस दुष्ट चाणक्य की आज्ञा से लोगों ने चन्द्रगुप्त की चन्द्रलेखा नाम की हथिनी पर बिठा कर बहुत से मनुष्य साथ करके बड़ी शीघ्रता से नन्दमन्दिर में उस्का प्रवेश कराया। जब विरोधक मन्दिर में घुसने लगा तब आप का भेजा दारुवर्म्मा बढ़ई उस्को चन्द्रगुप्त समझ कर उस्के ऊपर गिराने को अपनी कल की बनी तोरण ले कर सावधान हो बैठा। इस्के पीछे चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजा सब बाहर खड़े रह गए और जिस बर्बर को आपने चन्द्रगुप्त के मारने के हेतु भेजा था वह भी अपनी सोने के छड़ी की गुप्ती जिस्में एक छोटी कृपाण थी लेकर वहां खड़ा होगया।

राक्षस।—दोनों ने बे ठिकाने काम किया, हां फिर ?

विराधगुप्त।—तब उस हथिनी को मार कर बढ़ाया और उस के दौड़ चलने से कल की तोरण का लक्ष जो चन्द्रगुप्त के धोखे वैरोधक पर किया गया था चूक गया और वहां बर्बर जो चन्द्रगुप्त का आसरा देखता था वह उसी कल की तोरन से बिचारा मारा गया। जब दारुवर्म्मा ने देखा कि लक्ष तो चूक गए अब मारे जांयहींगे तो उस ने उस कल के लोहे की कील से उस ऊंचे तोरन के स्थान ही पर से चन्द्रगुप्त के धोखे तपस्वी वैरोधक को हथिनी ही पर मार डाला।

राक्षस।—हाय! दोनों बात कैसे दुःख की हुई कि चन्द्रगुप्त तो काल से बच गया और दोनों बिचारे बर्बर और वैरोधक मारे गए (आप ही आप) दैव ने इन दोनों को नहीं मारा, हम लोगों को मारा!! (प्रकाश) और वह दारुवर्म्मा बढ़ई क्या हुआ ?

विराधगुप्त।—उसको बैरोचक के साथ के मनुष्यों ने मार डाला।

राक्षस।—हाय! बड़ा दुःख हुआ! हाय प्यारे दारुवर्म्म का हम लोगों से वियोग हो गया। अच्छा! उस वैद्य अभयदत्त ने क्या किया?

विराधगुप्त।—महारज! सब कुछ किया।

राक्षस।—(हर्ष से) क्या चन्द्रगुप्त मारा गया?

विराधगुप्त।—दैव ने न मरने दिया।

राक्षस।—(शोक से) तो क्या फूल कर कहते हो कि सब कुछ किया?

विराधगुप्त।—उस ने औषधि में विष मिलाकर चन्द्रगुप्त को दिया पर चाणक्य ने उसको देख लिया, और सोने के बरतन में रख कर उसका रंग पलटा जान कर चन्द्रगुप्त से कह दिया कि इस औषध में विष मिला है इसको न पीना।

राक्षस।—अरे वह ब्राह्मण बड़ा ही दुष्ट है। हां तो वह वैद्य क्या हुआ।

विराधगुप्त।—उस वैद्य को वही औषध पिला कर मार डाला।

राक्षस।—(शोक से) हाय हाय बड़ा गुनी मारा गया! भला शयन घर के प्रबन्ध करने वाले प्रमोदक ने क्या किया?

विराधगुप्त।—उस ने सब चौका लगाया।

राक्षस।—(घबड़ा कर) क्यों?

विराधगुप्त।—उस मूर्ख को जो आप के यहां से व्यय को धन मिला सो उसने अपना बड़ा ठाट बाट फैलाया, यह देखते ही चाणक्य चौकन्ना हो गया, और उस्से अनेक प्रश्न किए, जब उसने उन प्रश्नों के उत्तर अण्ड-बण्ड दिये तो उस पर पूरा सन्देह करके दुष्ट चाणक्य ने उसको बुरी चाल से मार डाला।

राक्षस।—हा! क्या दैव ने यहां भी उलटा हमी लोगों को मारा! भला वह चन्द्रगुप्त को सोते समय मारने के हेतु जो राजभवन में बीभत्सकादिक बीर सुरङ्ग में छिपा रक्खे थे उनका क्या हुआ?

विराधगुप्त।—महाराज! कुछ न पूछिए।

राक्षस।—(घबड़ाकर) क्यों क्यों क्या चाणक्य ने जान लिया?

विराधगुप्त।—नहीं तो क्या?

राक्षस।—कैसे?

विराधगुप्त।—महाराज! चन्द्रगुप्त के सोने जाने के पहिले ही वह दुष्ट

चाणक्य उस घर में गया और उसको चारों ओर से देखा, तो भीत की एक दरार से चिउंटी लोग चावल के कने लाती हैं यह देख कर उस दुष्ट ने निश्चय कर लिया कि इस घर के भीतर मनुष्य छिपे हैं, बस यह निश्चय कर उसने उस घर में आग लगवा दिया और धूआं से घबड़ा कर निकल तो सके ही नहीं इससे वे वीभत्सकादिक वहीं भीतर ही जल कर राख हो गए।

राक्षस।—(शोच से) मित्र ! देख चन्द्रगुप्त का भाग्य कि सब के सब मर गए (चिन्ता सहित) आहा ! सखा ! देख इस दुष्ट चन्द्रगुप्त का भाग्य ! ! !

कन्या जो विष की गई , ताहि हतन के काज ।
तासों मार्‍यो पर्व्वतक , जाको आधो राज ॥
सबै नसे कल बल सहित , जे पठये बध हेत ।
उलटी मेरी नीति सब , मौर्य्यहि कों फल देत ॥

विराधगुप्त।—महाराज ! तब भी उद्योग छोड़ना नहीं चाहिए—

प्रारम्भ ही नहिं विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजैं ।
पुनि करहिं तौ कोऊ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं ॥
धरि लात विघ्न अनेक पैं निरभय न उद्यम तें टरैं ।
जे पुरुष उत्तम अन्त मैं ते सिद्ध सब कारज करैं ॥

और भी—

का सेसहि नहिं भार पै , धरती देत न डारि ।
कहा दिवसमनि नहिं थकत , पै नहिं रुकत बिचारि ॥
सज्जन ताको हित करत , जेहि किय अङ्गीकार ।
यहै नेम सुकृतीन को , निजजिय करहु बिचार ॥

राक्षस। मित्र ! यह क्या तू नहीं जानता कि मैं प्रारब्ध के भरोसे नहीं हूं। हां फिर ?

विराधगुप्त।—तब से दुष्ट चाणक्य चन्द्रगुप्त की रक्षा में चौकन्ना रहता है और इधर उधर के अनेक उपाय सोचा करता है और पहिचान २ के नन्द के मंत्रियों को पकड़ता है।

राक्षस।—(घबड़ा कर) हां कहो तो मित्र ! उसने किसे किसे पकड़ा है।

विराधगुप्त।—सब के पहिले तो जीवसिद्धि क्षपणक को निरादर कर के नगर से निकाल दिया।

राक्षस।—(आप ही आप) भला इतने तक तो कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि वह जोगी है इसका घर बिना जी न घबड़ायगा (प्रकाश) मित्र! उस पर अपराध क्या ठहराया?

विराधगुप्त।—कि इसी दुष्ट ने राक्षस की भेजी विषकन्या से पर्व्वतेश्वर को मार डाला।

राक्षस।—(आप ही आप) वाहरे कौटिल्य वाह! क्यों न हो।

निज कलङ्क हम पैं धर्‍यौ, हत्यौ अर्द्ध बंटवार।
नीति बीज तुव एक ही, फल उपजवत हजार॥

(प्रकाश) हां फिर?

विराधगुप्त।—फिर चन्द्रगुप्त के नाश को इसने दारुवर्म्मादिक नियत किये थे यह दोष लगा कर शकटदास को सूली दे दी।

राक्षस।—(दुःख से) हा मित्र! शकटदास! तुम्हारी बड़ी अयोग्य मृत्यु हुई। अथवा स्वामी के हेतु तुम्हारे प्राण गए इससे कुछ शोच नहीं है शोच हमी लोगों का है कि स्वामी मरने पर भी जीना चाहते हैं।

विराधगुप्त।—मन्त्री! ऐसा न सोचिये आप स्वामी का काम कीजिए।

राक्षस।—मित्र!—केवल है यह सोक, जीव लोभ अब लौं बचे।
स्वामि गयो परलोक, पै कृतघ्न इतही रहे॥

विराधगुप्त।—महाराज! ऐसा नहीं (केवल यह ऊपर का छंद फिर से पढ़ता है)*

राक्षस। मित्र! कहो और भी सेवाड़ों मित्र का नाश सुन्ने को ये पापी कान उपस्थित हैं।

विराधगुप्त।—यह सब सुनकर चन्दनदास ने बड़े कष्ट से आप के कुटुम्ब को छिपाया।

राक्षस।—मित्र! उस दुष्ट चाणक्य के तो चन्दनदास ने विरुद्ध ही किया।

विराधगुप्त।—तो मित्र का बिगाड़ करना तो अनुचित ही था।

राक्षस।—हां फिर क्या हुआ?

विराधगुप्त।—तब चाणक्य ने आप का कुटुम्ब चन्दनदास से बहुत मांगा पर उसने नहीं दिया इसपर उस दुष्ट ब्राह्मण ने—

---

* अर्थात् जो लोग जीवलोभ से बचे हैं वे कृतघ्न हैं आप तो स्वामी का कार्य्य साधन को जीते हैं आप क्यों कृतघ्न हैं।

मित्र।—(घबड़ा कर) क्या चन्दनदास को मार डाला ?

विराधगुप्त।—नहीं मारा तो नहीं पर स्त्री पुत्र धन समेत बांध कर बन्दी घर में भेज दिया।

राक्षस।—तो क्या ऐसा सुखी होकर कहते हो कि बन्धन में भेज दिया; अरे यह कहो कि मन्त्री राक्षस को कुटुम्ब सहित बांध रक्खा है।

(प्रियम्वदक आता है)

प्रियम्वदक।— जय जय महाराज ! बाहर शकटदास खड़े हैं।

राक्षस।—(आश्चर्य से) सच ही !

प्रियम्वदक।—महाराज ! आप के सेवक कभी मिथ्या बोलते हैं।

राक्षस।—मित्र विराधगुप्त ! यह क्या ?

विराधगुप्त।—महाराज ! होनहार जो बचाया चाहे तो कौन मार सकता है।

राक्षस।—प्रियम्वदक ! अरे जो सच ही कहता है तो उन को झटपट लाता क्यों नहीं।

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा (जाता है)

[सिद्धार्थक के संग शकटदास आता है]

शकटदास।—देख कर (आप ही आप)

वह सूली गड़ी जो बड़ी दृढ़ कै सोई चन्द्र को राज थिरो प्रनतें।
लपटी वह फांस की डोर सोई मनु श्री लपटी वृप लै मनतें॥
बजी डौंड़ो निरादर की नृप नन्द के सोऊ लख्यो इन आंखिनतें।
नहिं जानि परै इतनोहूं भए केहि हेत न प्रान कढ़े तनतें॥

(राक्षस को देख कर) यह मन्त्री राक्षस बैठे हैं। आहा !

नन्द गए हूं नहिं तजत, प्रभु सेवा को स्वाद।
भूमि बैठि प्रगटत मनहुं, स्वामि भक्त मरजाद॥

(पास जा कर) मन्त्री की जय हो।

राक्षस।—(देख कर आनन्द से) मित्र शकटदास ! आओ मुझ से मिल लो क्योंकि तुम दुष्ट चाणक्य के हाथ से बच के आए हो।

शकटदास।—(मिलता है)

राक्षस।—(मिल कर) यहां बैठो।

शकटदास।— जो आज्ञा (बैठता है)

राक्षस।—मित्र शकटदास! कहो तो यह आनन्द की बात कैसे हुई?

शकटदास।—(सिद्धार्थक को दिखा कर) इस प्यारे सिद्धार्थक ने सूली वाले लोगों को हटा कर मुझ को बचाया।

राक्षस।—(आनन्द से) वाह सिद्धार्थक! तुमने काम तो अमोल किया है पर भला तब भी यह जो कुछ है सो लो (अपने अङ्ग से आभरण उतार कर देता है)

सिद्धार्थक।—(लेकर आप ही आप) चाणक्य के कहने से मैं सब करूंगा (पैर पर गिर के प्रकाश) महराज! यहां मैं पहिले पहल आया हूं इस्से मुझे यहां कोई नहीं जानता कि मैं उस्के पास इन भूषणों को छोड़ जाऊं इस्से आप इसी अंगूठी से इस पर मोहर कर के इस को अपने ही पास रक्खैं मुझे जब काम होगा ले जाऊंगा।

राक्षस।—क्या हुआ। अच्छा शकटदास! जो यह कहता है वह करो।

शकटदास।—जो आज्ञा (मोहर पर राक्षस का नाम देख कर धीरे से) मित्र! यह तो तुम्हारे नाम की मोहर है।

राक्षस।—(देख कर बड़े शोच से आप ही आप) हाय २ इस्को तो जब मैं नगर से निकला था तो ब्राह्मणी ने मेरे स्मरणार्थ ले लिया था वह इस के हाथ कैसे लगी? (प्रकाश) सिद्धार्थक! तुमने यह कैसे पाई?

सिद्धार्थक।—महाराज! कुसुमपुर में जो चंदनदास जौहरी हैं उनके द्वार पर पड़ी पाई।

राक्षस।—तो ठीक है।

सिद्धार्थक।—महारज! ठीक क्या है?

राक्षस।—यही कि ऐसे धनिकों के घर बिना यह बस्तु और कहां मिले।

शकटदास।—मित्र! यह मन्त्री जी के नाम की मोहर है इस्से तुम इस्को मन्त्री को दे दो तो इस्के बदले तुम्हैं बहुत पुरस्कार मिलैगा।

सिद्धार्थक।—महाराज! मेरे ऐसे भाग्य कहां कि आप इसे लें।

(मोहर देता है)

राक्षस।—मित्र शकटदास! इसी मुद्रा से सब काम किया करो।

शकटदास।—जो आज्ञा।

सिद्धार्थक।—महाराज! मैं कुछ बिनती करूं?

राक्षस।—हां हां! अवश्य करो।

सिद्धार्थक ।—यह तो आप जानते ही हैं कि इस दुष्ट चाणक्य की बुराई कर के फिर मैं पटने में घुस नहीं सकता इससे कुछ दिन आप ही के चरणों की सेवा किया चाहता हूं ।

राक्षस ।—बहुत अच्छी बात है, हम लोग तो ऐसा चाहते ही थे, अच्छा है, यहीं रहो ।

सिद्धार्थक ।—(हाथ जोड़ कर) बड़ी कृपा हुई ।

राक्षस ।—मित्र शकटदास ! ले जाओ इस्को उतारो और सब भोजनादिक का ठीक करो ।

शकटदास ।—जो आज्ञा ।

(सिद्धार्थक को लेकर जाता है)

राक्षस ।—मित्र विराधगुप्त ! अब तुम कुसुमपुर का वृत्तान्त जो छूट गया था सो कहो । वहां के निवासियों को मेरी बातें अच्छी लगती हैं कि नहीं ?

विराधगुप्त ।—बहुत अच्छी लगती हैं बरन ये सब तो आपही के अनुयायी हैं ।

राक्षस ।—ऐसा क्यों ।

विराधगुप्त ।—इस्का कारण यह है कि मलयकेतु के निकलने के पीछे चाणक्य को चन्द्रगुप्त ने कुछ चिढ़ा दिया और चाणक्य ने भी उस की बात न सहकर चन्द्रगुप्त की आज्ञा भङ्ग करके उस्को दुखी कर रक्खा है यह मैं भली भांति जानता हूं ।

राक्षस ।—(हर्ष से) मित्र विराधगुप्त ! तो तुम इसी संपेरे के भेस से फिर कुसुमपुर जाओ और वहां मेरा मित्र स्तनकलस नामक कवि है उस्से कह दो कि चाणक के आज्ञा भङ्गादिकों के कवित्त बना बना कर चन्द्र-गुप्त को बढ़ावा देता रहै और जो कुछ काम हो जाय वह करभक से कहला भेजे ।

विराधगुप्त ।—जो आज्ञा (जाता है)

(प्रियम्वदक आता है)

प्रियम्वदक ।—जय हो महाराज ! शकटदास कहते हैं कि यह तीन आभरण बिकते हैं इन्हें आप देखें ।

राक्षस ।—(देख कर) अहा यह तो बड़े मूल्य के गहिने हैं अच्छा ! शकट-दास से कह दो कि दाम चुका कर ले लें ।

प्रियम्वदक ।—जो आज्ञा (जाता है)

राक्षस।—तो अब हम भी चल कर करभक को कुसुमपुर भेजैं (उठता है) आहा क्या उस मृतक चाणक्य से चन्द्र से बिगाड़ हो जायगा? क्यों नहीं? क्योंकि सब कामों को सिद्ध ही देखता हूं—

चन्द्रगुप्त निज तेज बल करत सबन को राज।
तेहि समझत चाणक्य यह मेरो दियो समाज॥
अपनो २ करि चुके काज रह्यो कछु जौन।
अब जौं आपुस में लड़ैं तो बड़ अचरज कौन॥

(जाता है)

॥ इति द्वितीयाङ्क ॥

तृतीय अङ्क ।

[स्थान—राजभवन की अटारी]

(कंचुकी आता है)

कंचुकी।—है रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों ।
सो मिटे इन्द्रीगन सहित ह्वै सिथिल अतिही छोभ सों ॥
मानत कह्यौ कोउ नाहिं सब अंग अङ्ग ढीले ह्वै गए ।
तोहू न तृष्णे ! क्यों तजत तू मोहि बूढ़ोहू भए ॥

(आकाश की ओर देख कर) अरे अरे सुगांगप्रसाद के लोगों सुनो। महाराज चन्द्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी है कि कौमुदी महोत्सव के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूं इस्से उस अटारी को बिछौने इत्यादि से सज रक्खो देर क्यों करते हो (आकाश की ओर देख कर) क्या कहा ? कि क्या महाराज चन्द्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी महोत्सव अब को न होगा ? दुर दइमारो ! क्या मरने को लगे हो शीघ्रता करो।

कबित्त ।

बहु फूल की माल लपेट कै खंभन धूप सुगंध सों ताहि धुपाइये ।
तापैं चहूं दिस चंद छपा से सुसोभित चौंर घने लटकाइये ॥
भार सों चारु सिंहासन के मुरछा सें धरा परी धेनु सी पाइये ।
छींटि कै तापैं गुलाब मिल्यौ जल चन्दन ता कहं जाइ जगाइये ॥

(आकाश की ओर देख कर) क्या कहते हो—कि हम लोग अपने काम में लग रहे हैं ? अच्छा २ झटपट सब सिद्ध करो देखो वह महाराज चन्द्रगुप्त आ पहुंचे।

बहु दिन स्रम करि नन्द नृप , बह्यौ राज धुर जौन ।
बालेपन ही में लियौ , चन्द सीस निज तौन ॥
डिगत न नेकहु बिषम पथ , दृढ़ प्रतिज्ञ दृढ़ गात ।
गिरन चहत सम्हरत बहुरि , नेकु न जिय घबरात ॥

(नेपथ्य में) इधर महाराज इधर।

(राजा और प्रतिहारी आते हैं)

राजा।—(आप ही आप) राज उसी का नाम है जिस में अपनी आज्ञा

चले दूसरे के भरोसे राज करना भी एक बोझा ढोना है। क्योंकि—

जो दूजे को हित करै , तो खोवै निज काज ।
जो खोयो निज काज तो , कौन बात को राज ॥
दूजे ही को हित करै , तो वह परवस मूढ़ ।
काठपुतरी सो खाद कछु , पावै कबहुं न कूढ़ ॥

और राज्य पा कर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सम्हालना बहुत कठिन है। क्योंकि—

कूर सदा भाखत पियहि , चञ्चल सहज सुभाव ।
नर गुन औगुन नहिं लखत , सज्जन खल सम भाव ॥
डरत सूर सों भीरु कहं , गिनत न कछु रति* हीन ।
बारनारि अरु लच्छमी , कहो कौन बस कीन ॥

यद्यपि गुरू ने कहा है कि तू झूठी कलह कर के सुतन्त्र हो कर अपना प्रबन्ध आप कर ले पर यह तो बड़ा पाप सा है। अथवा गुरू जी के उपदेश पर चलने से हम लोग तो सदा ही स्वतन्त्र हैं।

जब लौं बिगारै काज नहिं तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै ।
पै शिष्य जाइ कुराह तो गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै ॥
तासों सदा गुरु वाक्य बस हम नित्य पर आधीन हैं ।
निर्लोभ गुरु से सन्त जनही जगत में स्वाधीन हैं ॥

(प्रकाश) आजी वैहीनर सुगांगप्रसाद का मार्ग दिखाओ ।

कंचुकी।—इधर आइये महाराज इधर !

राजा।—(आगे बढ़ता है)

कंचुकी।—महाराज ! सुगांग प्रसाद की यही सीढ़ी है ।

राजा।—(ऊपर चढ़ कर) अहा शरद ऋतु की सोभा से सब दिशा कैसी सुन्दर हो रही हैं—

सरद बिमल ऋतु सोहई , निरमल नील अकास ।
निसानाथ पूरन उदित , सोलह कला प्रकास ॥
चारु चमेली बन रहीं , महमह महंकि सुबास ।
नदी तीर फूले लखो , सेत सेत बहु कास ॥
कमल कमोदनि सरन में , फूले सोभा देत ।

---

* रति का यहां प्रीति अर्थ है ।

भौंर वृन्द जापैं लखौ , गूंजि गूंजि रस लेत ॥
बसन चांदनी चन्दमुख , उडुगन मोती माल।
कास फूल मधु हास यह , शरद किधौं नव बाल ॥

(चारो ओर देख कर) कंचुकी! यह क्या? नगर में चन्द्रिकोत्सव कहीं नहीं मालूम पड़ता क्या तूने सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव होय।

कंचुकी।— महाराज! सब से ताकीद कर दी थी।

राजा।—तो फिर क्यों नहीं हुआ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी।

कंचुकी।—(कान पर हाथ रख कर) राम राम! भला नगर क्या इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आप की आज्ञा न मानै।

राजा।—तो फिर चन्द्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ, देख न—

गज रथ बाजि सजे नहीं , बंधी न बन्दनवार।
तने वितान न कहुं नगर , रञ्जित कहूं न द्वार ॥
नर नारी डोलत न कहुं , फूल माल गल डार।
नृत्य वाद धुनि गीत नहिं , सुनियत श्रवन संभार ॥

कंचुकी। महाराज! ठीक है—ऐसा ही है।

राजा।—क्यों ऐसा ही है?

कंचुकी।—महाराज योंहीं है।

राजा।—स्पष्ट क्यों नहीं कहता?

कंचुकी।—महाराज! चन्द्रिकोत्सव बन्द किया गया है।

राजा।—(क्रोध से)किसने बन्द किया है?

कंचुकी।—(हाथ जोड़ कर) महाराज! यह मैं नहीं कह सकता।

राजा।—कहीं आर्य्य चाणक्य ने तो नहीं बन्द किया?

कंचुकी।—महाराज! और किस को अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी।

राजा।—(अत्यन्त क्रोध से) अच्छा अब हम बैठेंगे।

कंचुकी।—महाराज! यह सिंहासन है विराजिए।

राजा।—(बैठ कर क्रोध से) अच्छा कंचुकी आर्य्य चाणक्य से कह कि महाराज आप को देखा चाहते हैं।

कंचुकी।—जो आज्ञा (बाहर जाता है)

[एक ओर परदा उठाता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखाई पड़ता है]

चाणक्य।—(आप ही आप) दुष्ट राक्षस हमारी बराबरी करता है वह जानता है कि—

जिमि हम नृप अपमान सों , महा क्रोध उर धारि ।
करी प्रतिज्ञा नन्द नृप , नासन को निरधारि ॥
सो नृप नन्दहि पुत्र सह , नासि करी हम पूर्न ।
चन्द्रगुप्त राजा कियौ , करि राक्षस मद चूर्न ॥
तिमि सोऊ मोहि नीति बल , छलन चहत हति चन्द ।
पै मो आछत यह जतन , हथा तासु अति मन्द ॥

(ऊपर देखकर क्रोध से) अरे राक्षस ! छोड़ छोड़ यह व्यर्थ का श्रम; देख—

जिमि नृप नन्दहि मारि कै , हृपलहि दीनो राज ।
आइ नगर चाणक्य किय , दुष्ट सर्प सो काज ॥
तिमि सोऊ नृप चन्द्र को , चाहत करन बिगार ।
निज लघु मति लांघ्यौ चहत , मो बल बुद्धि पहार ॥

(आकाश की ओर देख कर) अरे राक्षस मेरा पीछा छोड़।

क्योंकि—

राज काज मन्त्री चतुर , करत बिना अभिमान ।
जैसो तुव नृप नन्द हो , चन्द्र न तौन समान ॥
तुम कछु नहिं चाणक्य जो , साधौ कठिनहु काज ।
तासों हम सों बैर करि , नहिं सरि है तुव राज ॥

अथवा इस में तो मुझे कुछ सोचना ही न चहिए । क्योंकि—

मम भागुरायन आदि भृत्यन मलय राख्यौ घेरि कै ।
तिमि गए सिद्धारथक ऐहैं तेऊ काज निबेरि कै ॥
अब लखहु करि छल कलह नृप सों भेद-बुद्धि उपाइ कै ।
पर्व्वत जनन सों हम बिगारत राक्षसहि उलटाइ कै ॥

कंचुकी।—हा ! सेवा बड़ी कठिन होती है।

नृप सों सचिव सों सब सुसाहेब गनन सों डरते रहो ।
पुनि बिटहु जे अति पास वे तिनकौं कह्यौ करते रहो ॥
सुख लखत बीतत दिवस निसि भय रहत सङ्कित प्रान है ।
निज उदर पूरन हेतु सेवा वृत्ति स्वान समान है ॥

[चारो ओर घूम कर, देख कर]

अहा! यही आर्य्य चाणक्य का घर है, तो चलूं (कुछ आगे बढ़ कर और देख कर)

अहाहा! यह राजाधिराज श्री मन्त्रीजी के घर की सम्पति है। जो—
कहुं परे गोमय सुष्क कहु सिल परी सोभा दै रही।
कहुं तिल कहूं जव रासि लागी बटत जो भिच्छा लही॥
कहुं कुस परे कहुं समिध सूखत भार सों ताके नयो।
यह लखौ छप्पर महा जरजर छोड़ कैसो झुकि गयो॥

महाराज चन्द्रगुप्त को भाग्य से ऐसा मन्त्री मिला है—
बिन गुनहू के नृपन कों, धन हित गुरुजन धाइ।
सूखो सुख करि झूठहीं, बहु गुन कहहिं बनाइ॥
पै जिनकों तृष्णा नहीं, ते न लबार समान।
तिनसों तृन सम धनिक जन, पावत कबहुं न मान॥

(देखकर डर से) अरे आर्य्य चाणक्य यहां बैठे हैं, जिन्हों ने—
लोक धरसि चन्द्रहि कियो, राजा नन्द गिराइ।
होत प्रात रवि के कढ़त, जिमि ससि तेज नसाइ॥

(प्रगट दंडवत् कर के) जय हो! आर्य्य की जय हो!!

चाणक्य।—(देख कर) कौन है वैहीनर! क्यों आया है।

कंचुकी। आर्य्य! अनेक राजगणों के मुकुट माणिक्य से सर्वदा जिनके पद-तल लाल रहते हैं उन महाराज चन्द्रगुप्त ने आप के चरणों में दण्डवत् करके निवेदन किया है कि यदि आप के किसी कार्य्य में विघ्न न पड़े तो मैं आप का दर्शन किया चाहता हूं।

चाणक्य।—वैहीनर! क्या वृषल मुझे देखा चाहता है। क्या मैंने कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध कर दिया है यह वृषल नहीं जानता?

कंचुकी।—आर्य्य क्यों नहीं।

चाणक्य।—(क्रोध से) हैं किसने कहा बोल तो?

कंचुकी।—(भय से) महाराज प्रसन्न हों। जब सुगांगप्रसाद की अटारी पर गए थे तो देख कर महाराज ने आपही जान लिया कि कौमुदी महोत्सव अब की नहीं हुआ।

चाणक्य।—अरे ठहर मैंने जाना यह तुम्ही लोगों ने वृषल का जी मेरी ओर से फेर कर उसे चढ़ा दिया है, और क्या।

कंचुकी।—(भय से नीचा मुंह करके चुप रह जाता है)।

चाणक्य।—अरे राज के कारबारियों का चाणक्य के ऊपर बड़ा ही विद्वेष पक्षपात है। अच्छा, वृषल कहां है बता ?

कंचुकी।—(डरता हुआ) आर्य्य सुगांगप्रसाद की अटारी पर से महाराज ने मुझे आप के चरणों में भेजा है।

चाणक्य।—(उठ कर) कंचुकी ! सुगांगप्रसाद का मार्ग बता।

कंचुकी।—इधर महाराज (दोनों घूमते हैं)

कंचुकी।—महाराज यह सुगांगप्रसाद की सिढ़ियां है चढ़े। (दोनों सुगांगप्रसाद पर चढ़ते हैं और चाणक्य के घर का परदा गिर के छिप जाता है)

चाणक्य।—(चढ़ कर और चन्द्रगुप्त को देख कर प्रसन्नता से आपही आप) अहा ! वृषल सिंहासन पर बैठा है—

हीन नन्द सों रहित नृप, चन्द्र करत जेहि भोग।
परम होत सन्तोष लखि, आसन राजा जोग॥

(पास जाकर) जय हो वृषल की।

चन्द्रगुप्त।—(उठकर और पैरों पर गिरकर) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त दण्डवत करता है।

चाणक्य।—(हाथ पकड़ कर उठाकर) उठो बेटा उठो।

जहं लौं हिमालय के शिखर सुरधनी कन सीतल रहैं।
जहं लौं विविध मणिखण्ड मण्डित समुद दच्छिन दिसि बहैं॥
तहं लौं सबै नृप आइ भय सों तोहि सीस झुकावहीं।
तिन के मुकुट मणि रंगे तुव पद निरखि हम सुख पावहीं॥

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य ! आप की कृपा से ऐसा ही हो रहा है। बैठिए।

(दोनों यथा स्थान बैठते हैं)

चाणक्य।—वृषल ! कहो मुझे क्यों बुलाया है ?

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य के दर्शन से कृतार्थ होने को।

चाणक्य।—(हंस कर) भया बहुत शिष्टाचार हुआ अब बताओ क्यों बुलाया है, क्योंकि राजा लोग किसी को बेकाम नहीं बुलाते।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य ! आप ने कौमुदी महोत्सव के न होने में क्या फल सोचा है।

चाणक्य।—(हंस कर) तो यही उलहना देने को बुलाया है न ?

चन्द्रगुप्त।—उलहना देने को कभी नहीं।

चाणक्य।—तो क्यों ?

चन्द्रगुप्त।—पूछने को।

चाणक्य।—जब पूछना ही है तब तुम को इस्से क्या शिष्य को सर्व्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए।

चन्द्रगुप्त।—इस में कोई सन्देह नहीं पर आप की रुचि बिना प्रयोजन नहीं प्रवर्त्त होती, इस्से पूछा।

चाणक्य।—ठीक है, तुमने मेरा आशय जान लिया, बिना प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी ओर कभी फिरती ही नहीं।

चन्द्रगुप्त।—इसी से तो सुनने बिना मेरा जी अकुलाता है।

चाणक्य।—सुनो, अर्थ शास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं एक राजा के भरोसे, दूसरा मन्त्री के भरोसे, तीसरा राजा और मन्त्री दोनों के भरोसे; सो तुम्हारा राज तो केवल सचिव के भरोसे है फिर इन बातों के पूछने से क्या? व्यर्थ मुंह दुखाना है यह सब हम लोगों के भरोसे है हम लोग जानैं।

(राजा क्रोध से मुंह फेर लेता है)

[नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं]

प्रथम वै०।—(राग बिहाग) अहो यह शरद शम्भु ह्वै आई।
कास फूल फूले चहुं दिसि तें सोई मनु भस्म लगाई॥
चन्द उदित सोई सीस अभूषन सोभा लगत सुहाई।
तासों रञ्जित घन पटली सोई मनु गज खाल बनाई॥
फूले कुसुम मुण्ड माला सोइ सोहत अति धवलाई।
राजहंस सोभा सोइ मानो हांस बिभव दरसाई॥
अहो यह शरद शम्भु बनि आई॥

(और भी)

(राग कलिंगड़ा) हरौ हरि नयन तुम्हारी बाधा।
सरदागम लखि सेस अंक तें जगे जगत शुभ साधा॥
कछु कछु खुले मुंदे कछु सोभित आलस भरि अनियारे।
अरुन कमल से मद के माते थिर भी जदपि ढरारे॥
सेस सीस मनि चमक चकौंधन तनिकहुं नहिं सकुचाहीं।

नींद भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमला उर माहीं ॥
हरी हरि नैन तुम्हारी बाधा।

दूसरा वै०।—(कड़खे की चाल में)

अहो, जिन कों विधि सब जीव सों बढ़ि दीनो जग काज ।
अरे, दान सलिल बारे सदा जे जीतहिं गजराज ॥
अहो, झुक्यो न जिन को मान तै नृपवर जग सिरताज ।
अरे, सहहिं न आज्ञा भङ्ग जिमि दन्तपात मृगराज ॥

और भी।

अरे, केवल बहु गहिना पहिरि राजा होइ न कोय ।
अहो, जाकी नहीं आज्ञा टरै सो नृप तुम सम होय ॥

चाणक्य।—[सुनकर आप ही आप] भला पहिले ने तो देवता रूप शरद के वर्णन में आशीर्वाद दिया पर इस दूसरे ने क्या कहा, (कुछ सोच कर) अरे जाना यह सब राक्षस की करतूत है। अरे दुष्ट राक्षस क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो नहीं गया है।

चन्द्रगुप्त।—अजी वैहीनर इन दोनों गाने वालों को लाख लाख मोहर दिलवा दो।

वैहीनर।—जो आज्ञा महाराज (उठ कर जाना चाहता है)

चाणक्य।—वैहीनर, ठहर अभी मत जा। वृषल, यह अर्थ कुपात्र को इतना क्यों देते हो?

चन्द्रगुप्त।—आप मुझे सब बातों में योंही रोक दिया करते हैं तब यह मेरा राज क्यों है बरन उलटा बन्धन है।

चाणक्य।—वृषल, जो राजा आप असमर्थ होते हैं उन में इतना ही तो दोष है इस्से जो ऐसी इच्छा हो तो तुम अपने राज का प्रबन्ध आप कर लो।

चन्द्रगुप्त।—बहुत अच्छा आज से मैं ने सब काम सम्हाला।

चाणक्य।—इस्से अच्छो और क्या बात है तो मैं भी अपने अधिकार पर सावधान हूं।

चन्द्रगुप्त।—जब यही है तो पहिले मैं पूछता हूं कि कौमुदी महोत्सव का निषेध क्यों किया गया?

चाणक्य।—मैं भी यही पूछता हूं कि उस के होने का प्रयोजन क्या था?

चन्द्रगुप्त।—पहिले तो मेरी आज्ञा का पालन।

चाणक्य।—मैं ने भी आप के आज्ञा के अयालत के हेतु ही कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध किया। क्योंकि—

आइ चारहू सिन्धु के, छोरहु के भूपाल।
जो सासन सिर पैं धरैं, जिमि फूलनकी माल॥
तेहि हम जो कछु टारहीं, ओउ तुव हित उपदेस।
जासों तुमरो विनय गुन, जग मैं बढ़ै नरेस॥

चन्द्रगुप्त।—और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूं।

चाणक्य।—वह भी कहता हूं।

चन्द्रगुप्त।—कहिए।

चाणक्य।—शोणोत्तरे! अचलदत्त कायस्थ से कहो कि तुम्हारे पास जो भद्रभट इत्यादिकों का लेखपत्र है वह मांगा है।

प्र०।—जो आज्ञा (बाहर से पत्र लाकर देता है)

चाणक्य।—वृषल! सुनो।

चन्द्रगुप्त। मैं उधरही कान लगाए हूं।

चाणक्य।—(पढ़ता है) स्वस्ति परम प्रसिद्ध नाम महाराज श्री चन्द्रगुप्त देव के साथी जो अब उनको छोड़ कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए हैं उनका यह प्रतिज्ञा पत्र है। पहिला गजाध्यक्ष भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुपदत्त, महाप्रतिहार चन्द्रभानु का भानजा हिंगुरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त, महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालव के राजा का पुत्र रोहिताक्ष और क्षत्रियों में सब से प्रधान विजयवर्म्मा (आप ही) ये हम सब लोग यहां महाराज का काम सावधानी से साधते हैं (प्रकाश) यही इस पत्र में लिखा है सुना?

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! मैं इन सबों के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूं।

चाणक्य।—वृषल! सुनो—वह जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष थे वह रात दिन मद्य स्त्री और जूआ में डूब कर अपने काम से निरे बेसुध रहते थे इससे मैंने उनसे अधिकार ले कर केवल निर्वाह के योग जीविका कर दी थी इससे उदास हो कर कुमार मलयकेतु के पास चले गए और वहां अपना अपना कार्य्य सुना कर फिर उसी पद पर नियुक्त हुए हैं, और हिंगुरात और बलगुप्त ऐसे लालची हैं कि कितना भी दिया पर अन्त में

मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे कि यहीं बहुत मिलेगा, और जो आप का लड़कंपन का सेवक राजसेन था उसने आप की थोड़ी ही कृपा से हाथी घोड़ा घर और धन सब पाया पर इस भय से भाग कर मलयकेतु के पास चला गया कि यह सब छिन न जाय, और वह जो सिंह बलदत्त सैनापति का छोटा भाई भागुरायन है उस्से पर्व्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उसने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि जैसे विश्वासघात कर के चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालेगा इस्से यहां से भाग चलो, ऐसे ही बहकाकर कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आप के बैरी चन्दनदासादिकों को दण्ड हुआ तब मारे डर के मलयकेतु के पास जा रहा, उसने भी यह समझ कर कि इसने मेरे प्राण बचाए और मेरे पिता का परिचित भी है उस्को कृतज्ञता से अपना अन्तरङ्गी मन्त्री बनाया है, और वह जो रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा थे वह ऐसे अभिमानी थे कि जब आप उनके और नातेदारों का आदर करते थे तो वह कुढ़ते थे इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गए, बस यही उन लोगों की उदासी का कारण है।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! जब इन सब के भागने का उद्यम जानतेही थे तो क्यों न रोक रक्खा?

चाणक्य।— ऐसा कर नहीं सके।

चन्द्रगुप्त।—क्या आप इसमें असमर्थ हो गए वा कुछ उसमें भी प्रयोजन था?

चाणक्य।—असमर्थ कैसे हो सकते हैं उसमें भी कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! वह प्रयोजन मैं सुना चाहता हूं।

चाणक्य।—सुनो और भूल मत जाओ।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! मैं सुनता हुई हूं भूलूंगा भी नहीं कहिए।

चाणक्य।—अब जो लोग उदास होगए हैं या बिगड़ गए हैं उन के दो ही उपाय हैं या तो फिर से अनुग्रह करें या उनको दण्ड करें, और भद्रभट पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अब उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उनको उनका अधिकार दिया जाय और यह हो नहीं सकता क्योंकि उन को मृगया मद्य पानादिक का जो व्यसन है इस्से इस योग नहीं हैं कि हाथी घोड़ों को सम्हालें और सब सेना की जड़ हाथी घोड़े ही हैं, वैसे ही हिंगुरात बलगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है क्योंकि

उनको सब राज्य पाने से भी सन्तोष न होगा, और राजसेन भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे हैं ये तो प्रसन्न होई नहीं सकते, और रोहिताक्ष विजयवर्मा का तो कुछ पूछना ही नहीं है क्योंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते हैं और उनका कितना भी मान करो उन्हें थोड़ा ही दिखलाता है तो इस्का क्या उपाय है; यह तो अनुग्रह का वर्णन हुआ अब दण्ड का सुनिए, कि यदि हम इन सबों को प्रधान पद पाकर के जो बहुत दिनों से नन्दकुल के सर्व्वदा शुभाकांक्षी और साथी रहे दण्ड दे कर दुखी करें तो नन्दकुल के साथियों का हम पर से विश्वास उठ जाय इस्से छोड़ ही देना योग्य समझा सो इन्हीं सब हमारे भृत्यों के पक्षपाती बन कर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बड़ी सहायता पा कर और अपने पिता के बध से क्रोधित हो कर पर्व्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगों से लड़ने को उद्यत हो रहा है सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है उत्सव का समय नहीं इस्से गढ़ के संस्कार के समय कौमुदी महोत्सव क्या होगा। यही सोच कर इस्का प्रतिषेध कर दिया।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! मुझे अभी इसमें बहुत कुछ पूछना है।

चाणक्य।—भली भांति पूछो क्योंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है।

चन्द्रगुप्त।—यह पूछता हूं—

चाणक्य।—हां मैं भी कहता हूं।

चन्द्रगुप्त।—यह कि हम लोगों के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है उसे आप ने भागती समय क्यों नहीं पकड़ा।

चाणक्य।—वृषल! मलयकेतु के भागने के समय भी दोही उपाय थे या तो मेल करते या दण्ड देते जो मेल करते तो आधा राज देना पड़ता और जो दण्ड देते तो फिर यह हम लोगों की कृतघ्नता सब प्रसिद्ध हो जाती कि इन्हीं लोगों ने पर्व्वतक को भी मरवा डाला और जो आधा राज दे कर अब मेल कर लें तो भी उस बिचारे पर्व्वतक के मारने का पापही पाप हाथ लगै इस्से मलयकेतु को भागती समय छोड़ दिया।

चन्द्रगुप्त।—और भला राक्षस इसी नगर में रहता था उस्का भी आप ने कुछ न किया इस्का क्या उत्तर है?

चाणक्य।—सुनो, राक्षस अपने स्वामी की स्थिर भक्ति से और यहां के बहुत

दिन के रहने से यहां के लोगों का सब नन्दके साथियों का विश्वासपात्र हो रहा है और उसका स्वभाव सब लोग जान गए हैं और उसमें बुद्धि और पौरुष भी है वैसेही उसके सहायक भी हैं और कोष बल भी है इस्से जो वह यहां रहै तो भीतर के सब लोगों को फोड़ कर उपद्रव करै और जो यहां से दूर रहै तो वह ऊपरी जोड़ तोड़ लगावै पर उनके मिटाने में इतनी कठिनाई न हो इस्से उसके जाने की समय उपेक्षा कर दी गई।

चन्द्रगुप्त।—तो जब वह यहां था तभी उस्को वश में क्यों नहीं कर लिया?

चाणक्य।—वश क्या कर लें अनेक उपायों से तो वह छाती में गड़े कांटे की भांति निकाल कर दूर किया गया है उसे दूर करने में और कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त।—तो बल से क्यों नहीं पकड़ रक्खा?

चाणक्य।—वह राक्षस ऐसा नहीं है उस पर जो बल किया जाय तो या तो वह आप मारा जाय या तुम्हारा नाश कर दे; और—

हम खोवैं इक महत नर जो वह पावै नास।
जो वह नासै सैन तुव तौहू जिय अति त्रास॥
तासों काल बल करि बहुत अपने बस करि वाहि।
जिमि गज पकरैं सुघर तिमि बाधैंगे हम ताहि॥

चन्द्रगुप्त।—मैं आप की बात तो नहीं काट सकता पर इस्से तो मन्त्री राक्षस ही बढ़ चढ़ के जान पड़ता है।

चाणक्य।—(क्रोध से) 'आप नहीं' इतना क्यों छोड़ दिया? ऐसा कभी नहीं है उसने क्या किया है कहो तो?

चन्द्रगुप्त।—जो आप न जानते हो तो सुनिए कि वह महात्मा—

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुशलात।
जब लौं जित चाह्यौ रह्यौ धारि सीस पैं लात॥
डौंड़ी फिरन की समय निज बल जय प्रगटाय।
मेरे बल के लोग कों दीनों तुरत हराय॥
मोहे परिजन रीति सों जाके सब बिनु त्रास।
जौ मोपैं निज लोकहू आनहिं नहिं विश्वास॥

चाणक्य।—(हंस कर) हृषल! राक्षस ने यह सब किया?

चन्द्रगुप्त।—हां हां अमात्य राक्षस ने यह सब किया।

चाणक्य।—तो हमने जाना जिस तरह नन्द को नाश कर के तुम राजा हुए वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा।

चन्द्रगुप्त।—आर्य! यह उपालम्भ आप को नहीं शोभा देता, करने वाला सब दैव है।

चाणक्य।—रे कृतघ्न!

अतिहि क्रोध करि खोलि कै सिखा प्रतिज्ञा कीन।
सो सब देखत भुव करी नव नृप नन्द विहीन॥
घिरो खान अरु गीध सों भय उपजावनि हारि।
जारि नन्दहू नहिं भई सान्त मसान दवारि।

चन्द्रगुप्त।—यह सब किसी दूसरे ने किया।

चाणक्य।—किस ने?

चन्द्रगुप्त।—नन्दकुल के द्वेषी दैव ने।

चाणक्य।—दैव तो मूर्ख लोग मानते हैं।

चन्द्रगुप्त।—और विद्वान लोग भी यदा तदा करते हैं।

चाणक्य।—(क्रोध नाट्य कर के) अरे वृषल! क्या नौकरों की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है।

खुली सिखाहू बांधिबे चञ्चल भे पुनि हाथ।

(क्रोध से पैर पृथ्वी पर पटक कर)

घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ॥
नन्द नसे सों निलज ह्वै तू फूल्यौ गरबाय।
सो अभिमान मिटाइहौं तुरतहि तोहि गिराय॥

चन्द्रगुप्त।—(घबड़ा कर) अरे क्या आर्य्य को सचमुच क्रोध आ गया!

फर फर फरकत अधर पुट भए नयन जुग लाल।
चढ़ी जाति भौंहैं कुटिल खांस तजत जिमि व्याल॥
मनहुं अचानक रुद्र दृग खुल्यो त्रितिय दिखरात।

(आवेग सहित)

धरनी धाख्यौ बिनु धसे हा हा किमि पद घात॥

चाणक्य।—(नकली क्रोध रोक कर) तो वृषल इस कोरी बकवाद से क्या लाभ है जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे। (शस्त्र फेंक कर

ओर उठ कर) (आप ही आप) ह ह ह! राक्षस! यही तुमने चाणक्य को जीतने का उपाय किया।

तुम जान्यो चाणक्य सों नृप चन्द्रहि लरवाय।
सहजहि लैहैं राज हम निज बल बुद्धि उपाय॥
सो हम तुमही कहं छलन कियो क्रोध परकाम।
तुमरोई करिहै उलटि यह तुव भेद बिनास॥

(क्रोध प्रगट करता हुआ चला जाता है)

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य वैहीनर चाणक्य का अनादर करके आज से हम सब काम काज आप ही सम्हालेंगे यह लोगों से कह दो।

कंचुकी।—(आप ही आप) अरे आज महाराज ने चाणक्य के पहले आर्य्य शब्द नहीं कहा! क्यों क्या सचमुच अधिकार छीन लिया? वा इस में महाराज का क्या दोष है!

सचिव दोष सों होत हैं नृपहु बुरे ततकाल।
हाथीवान प्रमाद सों गज कहवावत व्याल॥

चन्द्रगुप्त।—क्यों जी क्या सोच रहे हो?

कंचुकी।—यही कि महाराजको महाराज शब्द अब यथार्थ शोभा देता है।

चन्द्रगुप्त।—(आप ही आप) इन्हीं लोगों के धोखा खाने से आर्य्य का काम होगा (प्रगट) शोणोत्तरे! इस रूखी कलह से हमारा सिर दुखने लगा इस से शयन गृह का मार्ग दिखलाओ।

प्रतिहारी।—इधर आवें महाराज इधर आवें।

चन्द्रगुप्त।—(उठ कर चलता हुआ आप ही आप)

गुरु आयसु छल सों कलह करिहू जीय डराय।
किमि नर गुरु जनसों लरहिं यहै सोच जिय हाय॥

(सब जाते हैं—जवनिका गिरती है)

॥ तृतीय अङ्क समाप्त हुआ॥

अथ चतुर्थ अंक ।

॥ स्थान मंत्री राक्षस के घर के बाहर का प्रान्त ॥

(करभक घबड़ाया हुआ आता है)

करभक ।—अहाहा हा ! अहाहा हा !

अतिसय दुरगम ठाम में , सत जोजन सों दूर ।
कौन जात है धाइ बिनु , प्रभु निदेस भरपूर ॥

अब राक्षस मन्त्री के घर चलूं (थका सा घूम कर) अरे कोई चौकीदार है ? स्वामी राक्षस मन्त्री से जाकर कहो कि करभक काम पूरा करके पटने से दौड़ा आता है ।

(दौवारिक आता है)

दौवारिक ।—अजी चिल्लाओ मत स्वामी राक्षस मन्त्री को राजकाज सोचते २ सिर में ऐसी विथा हो गई है कि अब तक सोने के बिछौने से नहीं उठे इस्से एक घड़ी भर ठहरो अवसर मिलता है तो मैं निवेदन किए देता हूं (परदा उठता है और सोने के बिछौने पर चिन्ता में भरा राक्षस और शकटदास दिखाई पड़ते हैं)

राक्षस ।—(आप ही आप) कारज उलटो होत है, कुटिलनीति के जोर ।
का कीजै सोचत यही, जागि होय है भोर ॥

और भी ।

आरम्भ पहिले सोचि रचना वेश की करि लावहीं ।
इक बात में गर्भित बहुत फल गूढ़ भेद दिखावहीं ॥
कारन अकारन सोचि फैली क्रियन कों सकुचावहीं ।
जे करहिं नाटक बहुत दुख हम सरिस तेऊ पावहीं ॥

और भी वह दुष्ट ब्राह्मण चाणक्य—

दौवारिक ।—जय जय ।

राक्षस ।—किसी भांति मिलाया या पकड़ा जा सकता है ?

दौवारिक ।—अमात्य—

राक्षस ।—(बांए नेत्र के फड़कने का अवशकुन देख कर आप ही आप) 'ब्राह्मण चाणक्य-जय जय' और 'पकड़ा जा सकता है ? अमात्य' यह उलटी बात हुई और उसी समय असगुन भी हुआ । तौ भी क्या हुआ उद्यम नहीं छोड़ेंगे (प्रकाश) भद्र ! क्या कहता है ?

दौवारिक।—अमात्य ! पटनेसे करभक आयाहै सो आप से मिला चाहताहै।

राक्षस।—अभी लाओ।

दौवारिक।—जो आज्ञा (करभक के पास जा कर उस्को संग ले आ कर) भद्र ! मन्त्री जी वह बैठे हैं उधर जाओ (जाता है)

करभक।—(मन्त्री को देख कर) जय हो जय हो।

राक्षस।—अजी करभक ! आओ आओ अच्छे हो ?—बैठो।

करभक।—! जो आज्ञा (पृथ्वी पर बैठ जाता है)।

राक्षस।—(आप ही आप) अरे मैंने इस को किस काम का भेद लेने भेजा था यह भूला जाता है (चिन्ता करता है)

(बेंत हाथ में लेकर एक पुरुष आता है)

पुरुष।—हटे रहना—बचे रहना—अजी दूर रहो—दूर रहो—क्या नहीं देखते ?

नृप द्विजादि जिन नरन को, मंगल रूप प्रकास।
ते न नीच मुखहू लखहिं, कैसो पास निवास॥ *

(आकाश की ओर देखकर) अजी क्या कहा कि क्यों हटाते हो ? अमात्य राक्षस के सिर में पीड़ा सुनकर कुमार मलयकेतु उनको देखने को इधर ही आते हैं (जाता है)

(भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु आता है)

मलयकेतु।—(लंबी सांस लेकर—आप ही आप) हा ! देखो पिता को मरे आज दस महीने हुए और व्यर्थ वीरता का अभिमान करके अब तक हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया, वरन तर्पण करना भी छोड़ दिया। या क्या हुआ मैंने तो पहिले यही प्रतिज्ञा ही किया है।

कर वलय उर ताड़त गिरे आंचरहु की सुधि नहिं परी।
मिलि करहिं आरतनाद हाहा अलक खुलि रज सों भरी॥
जो शोक सों भइ मात गन की दशा सो उलटाइ हैं।
करि रिपु जुवतिगन की सोई गति पितहि तृप्ति कराइ हैं॥

और भी—

रन मरि पितु ढिग जात हम, बीरन की गति पाइ।
कै माता दृग जल धरत, रिपु जुवती मुख लाइ॥

---

* प्राचीन काल में आचार्य राजा आदि नीचों को नहीं देखते थे।

(प्रकाश) अजी जाजले! सब राजा लोगों से कहो कि मैं बिना कहे सुने राक्षस मन्त्री के पास अकेला जा कर उनको प्रसन्न करूंगा इससे वे सब लोग उधर ही ठहरें।

कंचुकी।—जो आज्ञा (घूमते २ नेपथ्य की ओर देख कर) अजी राजा लोग सुनो—कुमार की आज्ञा है कि मेरे साथ कोई न चले (देख कर आनन्द से) महाराजकुमार! आप देखिये आप की आज्ञा सुनते ही सब राजा रुक गए—

अति चपल जे रथ चलत ते सुनि चित्र मे तुरतहि भए।
जे खुरन खोंदत नभ पथहि ते वाजिगन झुकि रुकि गए॥
जे रहे धावत ठिठकि ते गज मूक घण्टा सह सधे।
मरजाद तुव नहिं तजहिं न्टपगन जलधि से मानहुं बंधे॥

मलयकेतु।—अजी जाजले! तुम भी सब लोगों को लेकर जाओ एक केवल भागुरायण मेरे संग रहे।

कंचुकी।—जो आज्ञा (सब को ले कर जाता है)

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! जब मैं यहां आता था तो भद्रभट प्रभृति लोगों ने मुझसे निवेदन किया कि "हम राक्षस मन्त्री के द्वारा कुमार के पास नहीं रहा चाहते कुमार के सेनापति शिखरसेन की द्वारा रहेंगे। दुष्ट मन्त्री ही के डर से तो चन्द्रगुप्त को छोड़ कर यहां सब बात का सुबीता जान कर कुमार का आश्रय लिया है" सो उन लोगों की बात का मैं आशय नहीं समझा। *

भागुरायण।—कुमार! यह तो ठीक ही है क्योंकि अपने कल्याण के हेतु सब लोग स्वामी का आश्रय हित और प्रिय के द्वारा करते हैं।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! तो फिर राक्षस मन्त्री तो हमलोगों का परम प्रिय और बड़ा हित है।

भागुरायण।—ठीक है, पर बात यह है कि अमात्य राक्षसका बैर चाणक्य से है कुछ चन्द्रगुप्त से नहीं है इससे जो चाणक्य की बातों से रूठ कर चन्द्रगुप्त उससे मन्त्री का काम ले ले और नन्द कुल की भक्ति से यह नन्द ही के वंश का है यह सोच कर राक्षस चन्द्रगुप्त से मिल जाय और चन्द्रगुप्त भी

* चाणक्य के सम्बन्धी से लोगों ने मलयकेतु से ऐसा कहा था।

अपने बड़े लोगों का पुराना मन्त्री समझ कर उस्को मिला ले तो ऐसा न हो कि कुमार हम लोगों पर भी विश्वास न करैं।

मलयकेतु।—ठीक है, मित्र भागुरायण! राक्षस मन्त्री का घर कहां है?

भागुरायण।—इधर—कुमार इधर (दोनों घूमते हैं) कुमार! यही राक्षस मन्त्री का घर है—चलिये।

मलयकेतु।—चलें (दोनों राक्षस के निकट जाते हैं)

राक्षस।—अहा स्मरण आया (प्रकाश) कहो जी तुमने कुसुमपुर में स्तनकलस वैतालिक को देखा था?

कंचुकी।—क्यों नहीं।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! जब तक कुसुमपुर की बातें हों तब तक हम लोग इधर ही ठहरकर सुनें कि क्या बात होती है। क्योंकि—

भेद न कछु जामैं खुलै, याही भय सब ठौर।
नृप सों मन्त्री जन कहहिं, बात और की और॥

भागुरायण।—जो आज्ञा (दोनों ठहर जाते हैं)

राक्षस।—क्यों जी वह काम सिद्ध हुआ?

कंचुकी।—अमात्य की कृपा से सब काम सिद्ध ही हैं।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! वह कौन सा काम है?

भागुरायण।—कुमार! मन्त्री के जी की बातें बड़ी गुप्त हैं कौन जाने इस्से देखिये अभी सुन लेते हैं कि क्या कहते हैं।

राक्षस।—अजी भली भांति कहो।

कंचुकी।—सुनिये—जिस समय आपने आज्ञा दिया कि करभक तुम जाकर वैतालिक स्तनकलस से कह दो कि जब जब चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा भङ्ग करै तब तब तुम ऐसे श्लोक पढ़ो जिस्से उस्का जी और भी फिर जाय।

राक्षस।—हां तब?

कंचुकी।—तब मैंने पटने में जाकर स्तनकलस से आप का संदेसा कह दिया।

राक्षस।—तब?

कंचुकी।—इस्के पीछे नन्दकुल के विनाश से दुखी लोगों का जी बहलाने के हेतु चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में कौमुदी महोत्सव होने की डौंड़ी पिटा दी और उस्को बहुत दिन से बिछड़े हुए मित्रों के मिलाप की भांति पुर के निवासियों ने बड़ी प्रसन्नता पूर्व्वक स्नेह से मान लिया।

राक्षस।—(आंसू भर कर) हा देव नन्द!

जदपि उदित कुमुदन सहित , पाइ चांदनी चन्द ।
तदपि न तुम बिन लसत है , नृपससि! जगदानन्द ॥

हां फिर क्या हुआ?

कंचुकी।—तब चाणक्य दुष्ट ने सब लोगों के नेत्र के परमानन्ददायक उस उत्सव को रोक दिया और उसी समय स्तनकलस ने ऐसे ऐसे श्लोक पढ़े कि राजा का भी मन फिर जाय।

राक्षस।—वाह मित्र स्तनकलस, वाह क्यों न हो अच्छे समय में भेद बीज बोया है फल अवश्य होगा। क्योंकि—

नृप रूठै अचरज कहा , सकल लोग जा सङ्ग ।
छोटे हू माने बुरो , परे रङ्ग में भङ्ग ॥

मलयकेतु।—ठीक है (नृप रूठै यह दोहा फिर पढ़ता है)

राक्षस।—हां फिर क्या हुआ?

कंचुकी।—तब आज्ञा भङ्ग से रुष्ट हो कर चन्द्रगुप्त ने आप की बड़ी प्रशंसा किया और दुष्ट चाणक्य से अधिकार ले लिया।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! देखो प्रशंसा कर के राक्षस में चन्द्रगुप्त ने अपनी भक्ति दिखाया।

भागुरायण।—गुण प्रशंसा से बढ़ कर चाणक्य का अधिकार लेने से।

राक्षस।—क्यों जी एक कौमुदी महोत्सव के निषेध ही से चाणक्य चन्द्रगुप्त में बिगाड़ हुआ कि कोई और कारण भी है?

मलयकेतु।—क्यों मित्र भागुरायण! अब और बैर में यह क्या फल निकालेंगे?

भागुरायण।—यह फल निकाला है कि चाणक्य बड़ा बुद्धिमान है वह व्यर्थ चन्द्रगुप्त को क्रोधित न करावैगा और चन्द्रगुप्त भी उसकी बातैं जानता है वह भी बिना बात चाणक्य का ऐसा अपमान न करैगा इस्से उन लोगों में बहुत झगड़े से जो बिगाड़ होगा तो पक्का होगा।

कंचुकी।—आर्य्य! और भी कई कारण हैं।

राक्षस।—कौन?

कंचुकी।—कि जब पहिले यहां से राक्षस और कुमार मलयकेतु भागे तब उस ने क्यों नहीं पकड़ा?

राक्षस।—(हर्ष से) मित्र शकटदास! अब तो चन्द्रगुप्त हाथ में आ जायगा।

शकटदास।—अब चन्दनदास छूटेगा और आप कुटुम्ब मे मिलेंगे वैसेही जीवसिद्धि इत्यादि लोग क्लेश मे छूटेंगे।

भागुरायण।—(आप ही आप) हां अवश्य जीवसिद्धि का क्लेश छूटा।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! अब मेरे हाथ चन्द्रगुप्त आवेगा इस में इनका क्या अभिप्राय है?

भागुरायण।—और क्या होगा, यही होगा कि यह चाणक्य से छूटे चन्द्रगुप्त के उद्धार का समय देखते हैं। ✱

राक्षस।—अजी अब अधिकार छिन जाने पर वह ब्राह्मण कहां है?

कांचुकी।—अभी तो पटने ही में है।

राक्षस।—(घबड़ा कर) हैं! अभी वहीं है? तपोवन नहीं चला गया? या फिर कोई प्रतिज्ञा नहीं की?

कंचुकी।—अब तपोबन जायगा—ऐसा सुनते हैं।

राक्षस।—(घबड़ा कर) शकटदास यह बात तो काम की नहीं,

देव नन्द को नहिं सह्यौ , जिन भोजन अपमान।
सो निज क्रत नृप चन्द्र को , बात न सहिहै जान॥

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! चाणक्य के तपोबन जाने वा फिर प्रतिज्ञा करने में कौन कार्य्यसिद्धि निकाली है।

भागुरायण।—कुमार यह तो कोई कठिन बात नहीं है इस का आशय तो स्पष्ट ही है कि चन्द्रगुप्त से जितनी दूर चाणक्य रहैगा उतनी ही कार्य्यसिद्धि होगी।

शकटदास।—अमात्य! आप व्यर्थ सोच न करैं, क्योंकि देखैं—

सबहि भांति अधिकार लहि , अभिमानी नृप चन्द।
नहिं सहिहै अपमान अब , राजा होइ स्वछन्द॥
तिमि चाणक्यहु पाइ दुख , एक प्रतिज्ञा पूरि।
अब दूजो करि है न कछु , उद्यम निज मद चूरि॥

राक्षस।—ऐसाही होगा मित्र शकटदास जा कर करभक को डेरा इत्यादि दो।

शकटदास।—जो आज्ञा।

✱ राक्षस ने तो "चन्द्रगुप्त हाथ में आवेगा" इस आशय से कहा था कि चन्द्रगुप्त जीता जायगा पर भागुरायण ने भेद करने को मलयकेतु को उसका उलटा अर्थ समझाया।

(करभक को लेकर जाता है)

राक्षस।—इस समय कुमार से मिलने की इच्छा है।

मलयकेतु।—(आगे बढ़ कर) मैं आप ही आप से मिलने को आया हूं।

राक्षस।—(संभ्रम से उठ कर) अरे कुमार आप ही आ गए! आइए, इस आसन पर बैठिए।

मलयकेतु।—मैं बैठता हूं आप बिराजिए।

(दोनों बैठते हैं)

मलयकेतु।—इस समय सिर की पीड़ा कैसी है?

राक्षस।—जब तक कुमार के बदले महाराज कह कर आप को नहीं पुकार सकते तब तक यह पीड़ा कैसे छूटेगी *।

मलयकेतु।—आप ने जो प्रतिज्ञा की है तो सब कुछ होईगा। परन्तु सब सैना सामन्त के होते भी अब आप किस बात का आसरा देखते हैं?

राक्षस।—किसी बात का नहीं, अब चढ़ाई कीजिए।

मलयकेतु।—अमात्य! क्या इस समय शत्रु किसी सङ्कट में है?

राक्षस।—बड़े।

मलयकेतु।—किस सङ्कट में?

राक्षस।—मन्त्री सङ्कट में।

मलयकेतु।—मन्त्रीसङ्कट तो कोई सङ्कट नहीं है।

राक्षस।—और किसी राजा को न हो तो न हो पर चन्द्रगुप्त को तो अवश्य है।

मलयकेतु।—आर्य्य! मेरी जान में चन्द्रगुप्त को और भी नहीं है।

राक्षस।—आप ने कैसे जाना कि चन्द्रगुप्त को मन्त्रीसङ्कट सङ्कट नहीं है।

मलयकेतु।—क्योंकि चन्द्रगुप्त के लोग तो चाणक्य के कारण उस से उदास रहते हैं, जब चाणक्य ही न रहैगा तो उस के सब कामों को लोग और भी सन्तोष से करैंगे।

राक्षस।—कुमार ऐसा नहीं है क्योंकि यहां दो प्रकार के लोग हैं एक चन्द्रगुप्त के साथी दूसरे नन्दकुल के मित्र, उन में जो चन्द्रगुप्त के साथी हैं उनको चाणक्य ही से दुःख था कुछ नन्दकुल के मित्रों को नहीं, क्योंकि वह लोग तो यही सोचते हैं कि इसी कृतघ्न चन्द्रगुप्तने राज के लोभ से अपना

---

* अर्थात् चन्द्रगुप्त को जीत कर जब आप को महाराज बना लेंगे तब स्वस्थ होंगे।

बिलकुल नाश किया है, पर क्या करें उन का कोई आश्रय नहीं है इस्से चन्द्रगुप्त के आसरे पड़े हैं, जिस दिन आप को शत्रु के नाश में और अपने पक्ष के उद्धार में समर्थ देखेंगे उसी दिन चन्द्रगुप्त को छोड़ कर आप से मिल जांयगे, इसके उदाहरण हमी लोग हैं।

मलयकेतु।—आर्य्य! चन्द्रगुप्त के हारने का एक यही कारण है कि कोई और भी है?

राक्षस।—और बहुत क्या होंगे एक यही बड़ा भारी है।

मलयकेतु।—क्यों आर्य्य! यही क्यों प्रधान है? क्या चन्द्रगुप्त और मन्त्रियों से या आप अपना काम करने में असमर्थ हैं?

राक्षस।—निरा असमर्थ हैं।

मलयकेतु।—क्यों?

राक्षस।—यों कि जो आप राज्य संभालते हैं या जिन का राज राजा और मन्त्री दोनों करते हैं वह राजा ऐसे हों तो हों; परन्तु चन्द्रगुप्त तो कदापि ऐसा नहीं है। चन्द्रगुप्त एक तो दुरात्मा है दूसरे वह तो सचिव होके भरोसे सब काम करता है इस्से वह कुछ व्यवहार जानताही नहीं तो फिर वह सब काम कैसे कर सकता है? क्योंकि—

लक्ष्मी करत निवास अति, प्रबल सचिव नृप पाय।
पै निज बाल सुभाव सों, इकहिं तजत अकुलाय॥

और भी—

जो नृप बालक सो रहत, सदा सचिव के गोद।
बिन कछु जग देखे सुने, सो नहिं पावत मोद॥

मलयकेतु।—(आप ही आप) तो हम अच्छे हैं कि सचिव के अधिकार में नहीं (प्रकाश) अमात्य! यद्यपि यह ठीक है तथापि जहां शत्रु के अनेक छिद्र हैं तहां एक इसी सिद्धि से सब काम न निकलेगा।

राक्षस।—कुमार के सब काम इसी से सिद्ध होंगे। देखिये—

चाणक्य को अधिकार छूट्यो चन्द्र हैं राजा नए।
पुर नन्द में अनुरक्त तुम निज बल सहित चढ़ते भए॥

जब आप हम।—(कह कर लज्जा से कुछ ठहर जाता है)

तुव बस सकल उद्यम सहित रन मति करी।
वह कौन सी नृप! बात जो नहिं सिद्धि ह्वैहै ता घरी॥

मलयकेतु।—अमात्य! जो अब आप ऐसा लड़ाई का समय देखते हैं तो देर कर के क्यों बैठे हैं? देखिए—

इन को ऊंचो सीस है, वाको उच्च करार।
श्याम दोऊ वह जल स्रवत, ये गण्डन मधु धार॥
उतै भंवर को शब्द इत, भंवर करत गुंजार।
निज मम तेहि लखि नासिहैं, दन्तन तोरि कछार॥
सीस सोन सिन्दूर सों, ते मतङ्ग बल दाप।
सोन सहज ही सोखिहैं, निश्चय जानहु आप॥*

और भी।

गरजि गरजि गंभीर रव, बरसि बरसि मधुधार।
शत्रु नगर गज घेरिहैं, घन जिमि विविध पहार॥

(शस्त्र उठा कर भागुरायन कंचुकी के साथ जाता है)

राक्षस।—कोई है?

(प्रियम्वदक आता है)

प्रियम्वदक।—आज्ञा?

राक्षस।—देख तो द्वार पर कौन भिक्षुक खड़ा है?

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा (बाहर जा कर फिर आता है) अमात्य! एक क्षपणक भिक्षुक।

राक्षस—(असगुन जान कर आप ही आप) पहिले ही क्षपणक का दर्शन हुआ!

प्रियम्वदक।—जीवसिद्धि है।

राक्षस।—अच्छा बोला कर ले आ।

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा (जाता है)

(क्षपणक आता है)

क्षपणक।—पहिले कटु परिणाम मधु, औषध सम उपदेश।
मोह व्याधि के वैद्य गुरु, तिनको सुनहु निदेस

(पास जा कर) उपासक! धर्म लाभ हो।

राक्षस।—जोतिषी जी बताओ अब हम लोग प्रस्थान किस दिन करैं?

क्षपणक।—(कुछ सोचकर) उपासक! मुहूर्त तो देखा। आज भद्रा तो पहर

---

* पटना घेरने में सोन उतर कर जाना था।

पहिले ही छूट गई है और तिथी भी संपूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी है और आप लोगों को उत्तर से दक्षिण जाना है और नक्षत्र भी दक्षिण ही है।

अथए सूरहि चन्द के , उदये गमन प्रशस्त ।
पाइ लगन बुध केतु तौ , उदयो हू भी अस्त ॥ *

राक्षस।—अजी पहिले तो तिथि ही नहीं शुद्ध है।

क्षपणक।—उपासक!

एक गुनो तिथि होत है , त्यौं चौगुन नक्षत्र ।
लगन होत चौंतिस गुनो , यह भाखत सब पत्र ॥
लगन होत है शुभ लगन , छोड़ि क्रूर ग्रह एक ।
जाहु चन्द बल देखि कै , पावहु लाभ अनेक ॥ †

---

* भद्रा छूट गई अर्थात् कल्यान को तो आप ने जब चन्द्रगुप्त का पक्ष छोड़ा तभी छोड़ा और संपूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी है अर्थात् चन्द्रगुप्त का प्रताप पूर्ण व्याप्त है। उत्तर नाम प्राचीन पक्ष छोड़ कर दक्षिण अर्थात् यम की दिशा को जाना है। नक्षत्र दक्षिण है अर्थात् आप का वाम (विरुद्ध पक्ष) नक्षत्र और आप का दक्षिण पक्ष (मलयकेतु) नक्षत्र और आप का दक्षिण पक्ष (मलयकेतु) नक्षत्र (बिना क्षत्र के) है। अथए इत्यादि, तुम जो सूर हो उस की बुद्धि के अस्त के समय और चन्द्रगुप्त के उदय के समय जाना अच्छा है अर्थात् चाणक्य की ऐसे समय में जय होगी। लग्न अर्थात् कारण भाव में बुध चाणक्य पड़ा है इस से केतु अर्थात् मलयकेतु का उदय भी है तो भी अस्त ही होगा। अर्थात् इस युद्ध में चन्द्रगुप्त जीतैगा और मलयकेतु हारैगा। 'सूर अथए' इस पद से जीवसिद्धि ने अमङ्गल भी किया। आश्विन पूर्णिमा तिथि, भरणी नक्षत्र, गुरु वार, मेष के चन्द्रमा, मीन लग्न, में उसने यात्रा बतलाई। इस में भरणी नक्षत्र गुरुवार पूर्णिमा तिथि यह सब दक्षिण की यात्रा में निषिद्ध हैं। फिर सूर्य्य मृत है चन्द्र जीवित है यह भी बुरा है। लग्न में मीन का बुध पड़ने से नीच का होने से बुरा है। यात्रा में नक्षत्र दक्षिण होने ही से बुरा है।

† अर्थात् मलयकेतु का साथ छोड़ दो तो तुम्हारा भला हो। वास्तव में चाणक्य के मित्र होने से जीवसिद्धि ने साइत भी उलटी दी। ज्योतिष के अनुसार अत्यन्त क्रूर वेला क्रूर ग्रह वेध में युद्ध आरंभ होना चाहिए उस के विरुद्ध सौम्य समय में युद्ध जात्रा कही जिस का फल पराजय है।

राक्षस।—अजी तुम और जोतिषियों से जा कर झगड़ो।

क्षपणक।—आप ही झगड़िये मैं जाता हूं।

राक्षस।—क्या आप रूस तो नहीं गए?

क्षपणक।—नहीं तुम से ज्योतिषी नहीं रूसा है।

राक्षस।—तो कौन रूसा है?

क्षपणक।—(आप ही आप) भगवान, कि तुम अपना पक्ष छोड़ कर शत्रु का पक्ष ले बैठे हो (जाता है)

राक्षस।—प्रियम्वदक! देख तो कौन समय है?

सिद्धार्थ।—जो आज्ञा (बाहर से हो आता है) आर्य्य! सूर्य्यास्त होता है।

राक्षस।—(आसन से उठ कर और देख कर) अहा भगवान सूर्य्य अस्ताचल को चले—

जब सूरज उदयो प्रबल, तेज धारि आकास।
तब उपवन तरुवर सबै, छायानुत भे पास॥
दूर परे ते तरु सबै, अस्त भए रवि ताप।
जिमि धन विन स्वामिहि तजै, भृत्य स्वारथी आप॥

(दोनों जाते हैं)

इति चतुर्थोऽङ्कः।

अथ पञ्चमोऽङ्कः।

(हाथ में मोहर, गहिने की पेटी और पत्र ले कर सिद्धार्थक आता है)

सद्धार्थक।—अहाहा! देशकाल के कलश में , सिंची बुद्धि फल जौन ।
लता नीति चाणक्य की , बहु फल देहै तौन ॥
अमात्य राक्षस की मोहर का आर्थ्य चाणक्य का लिखा हुआ यह लेख और मोहर तथा यह आभूषण की पेटिका ले कर मैं पटने जाता हूं (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे! यह क्या क्षपणक आता है? हायहाय यह तो बुरा असगुन हुआ तो मैं सूरज को देखकर इस्का दोष छुड़ा लूं।

(क्षपणक आता है)

क्षपणक।—नमो नमो अर्हन्त कों , जो निज बुद्धि प्रताप ।
लोकोत्तर की सिद्धि सब , करत हस्तगत आप ॥

सिद्धार्थक।—भदन्त! प्रणाम।

क्षपणक।—उपासक! धर्म्म लाभ हो (भली भांति देखकर) आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग कर रक्खा है।

सिद्धार्थक।—भदन्त! तुमने कैसे जाना?

क्षपणक।—इस में छिपी कौन बात है? जैसे समुद्र नाव पर सब के आगे मार्ग दिखाने वाला मांझी रहता है वैसे ही तेरे हाथ में यह लखौटा है।

सिद्धार्थक।—अजी भदन्त भला यह तुमने ठीक जाना कि मैं परदेस जाता हूं पर यह कहो कि आज दिन कैसा है?

क्षपणक।—(हंस कर) वाह श्रावक वाह! तुम मूड़ मुड़ा कर भी नक्षत्र पूछते हो।

सिद्धार्थक।—भला अब क्या बिगड़ा है कहते क्यों नहीं दिन अच्छा होगा जायगें न अच्छा होगा फिर आवैंगे।

क्षपणक।—चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो मलयकेतु के काटक से बिना मोहर भए कोई जाने नहीं पाता।

सिद्धार्थक।—यह नियम कब से हुआ?

क्षपणक।—सुनो पहिले तो कुछ भी रोक टोक नहीं थी पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाय न आवे। इस्से जो तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो क्योंकि पीछे से तुम्हे हाथ पैर न बंधवाना पड़े।

सिद्धार्थक।—क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के अन्तरङ्ग खिलाड़ी मित्र हैं हमें कौन रोक सकता है।

क्षपणक।—चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओगे।

सिद्धार्थक।—भदन्त! क्रोध मत करो कहो कि काम सिद्ध हो।

क्षपणक।—जाओ काम सिद्ध होगा हम भी पटने जाने के हेतु मलयकेतु से मोहर लेने जाते हैं।

(दोनों जाते हैं)

॥ इति प्रवेशक ॥

(भागुरायण और सेवक आते हैं)

भागुरायण।—(आप ही आप) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है।

कहुं विरल कहुं सघन कहुं, विफल कहूं फलवान।
कहूं लस कहुं अति युक्त कछु, भेद परत नहि जान॥
कहूं गुप्त अति ही रहत, कबहूं प्रगट लखात।
कठिन नीति चानक्य की, भेद न जान्यो जात॥

(प्रगट) भासुरक मलयकेतु से मुझे क्षणभर भी दूर रहने में दुख होता है इस से बिछौना बिछा तो बैठें।

सेवक।—जो आज्ञा, बिछौना बिछा है विराजिए।

भागुरायण।—[आसन पर बैठकर] भासुरक! बाहर कोई मुझ से मिलने आवे तो आने देना।

सेवक।—जो आज्ञा, [जाता है]

भागुरायण।—[आप ही आप करुणा से] राम राम! मलयकेतु तो मुझ से इतना प्रेम करता है मैं उसका बिगाड़ किस तरह करूंगा? अथवा—

जस कुल तजि अपमान सहि, धन हित परवस होय।
जिन बेच्यो निज प्रान तन, सबै सकत करि सोय॥

[आगे आगे मलयकेतु और पीछे प्रतीहारी आते हैं]

मलयकेतु।—[आप ही आप] क्या करें? राक्षस का चित्त मेरी ओर से कैसा है यह सोचते हैं तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते हैं कुछ निर्णय नहीं होता।

नन्दवंश को जानि कै, ताहि चन्द की चाह।

कै अपनायो जानि निज , मेरो करत निबाह ॥
को हित अनहित तासु को , यह नहिं जान्यो जात ।
तासों जिय सन्देह अति , भेद न कछू लखात ॥

[प्रगट] विजये भागुरायण कहां हैं देखतो !

प्रतीहारी।—महाराज भागुरायण वह बैठे हुए आप की सेना के जाने वाले लोगों को राहखर्च और परवाना बांट रहे हैं।

मलयकेतु।—विजये तुम दबे पांव से उधर से आओ मैं पीछे से जाकर मित्र भागुरायन की आंखें बन्द करता हूं।

प्रतीहारी।— जी आज्ञा।

[दोनों दबे पांव से चलते हैं और भासुरक आता है]

भासुरक।—[भागुरायण से] बाहर क्षपणक आया है उस को खर्च चहिए।

भागुरायण।—अच्छा यहां भेजदो।

भासुरक।—जो आज्ञा [जाता है]।

[क्षपणक आता है]

क्षपणक।—श्रावक को धर्म लाभ हो।

भागुरायण।—[छल से उस की ओर देख कर] यह तो राक्षस का मित्र जीव सिद्ध है [प्रगट] भदन्त तुम नगर में राक्षस के किसी काम से जाते होंगे?

क्षपणक।—[कान पर हाथ रखकर] छी छी ! हम से राक्षस वा पिशाच से क्या काम।

भागुरायण।—आज तुम से और मित्र से कुछ प्रेम कलह हुआ है पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है।

क्षपणक।—राक्षस ने कुछ अपराध नहीं किया है अपराधी तो हम हैं।

भागुरायण।—हहहह। भदन्त तुम्हारे इस कहने से तो मुझ को सुनने की और भी उत्कण्ठा होती है।

मलयकेतु।—[आप ही आप] मुझ को भी।

भागुरायण।—तो भदन्त कहते क्यों नहीं?

क्षपणक।—तुम सुन के क्या करोगे?

भागुरायण।—तो जाने दो हमें कुछ आग्रह नहीं है गुप्त होय तो मत कहो।

क्षपणक।—नहीं उपासक! गुप्त ऐसा नहीं है पर वह बहुत बुरी बात है।

भागुरायण।—तो जाओ हम तुम को परवाना न देंगे।

क्षपणक।—[आप ही आप को भांति] जो यह इतना आग्रह करता है तो कह दें [प्रत्यक्ष] श्रावक! निरुपाय ही कर कहना पड़ा सुनो। मैं पहिले कुसुम पुर में रहता था तब संयोग से मुझ से राक्षस से मित्रता हो गई फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग करा के बिचारे पर्व्वतेश्वर को मार डाला।

मलयकेतु।—[आंखों में पानी भरके] हाय हाय! राक्षस ने हमारे पिता को मारा चाणक्य ने नहीं मारा० हा!

भागुरायण।—हां तो फिर क्या हुआ?

क्षपणक।—फिर मुझ को राक्षस का मित्र जान कर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझ को नगर से निकाल दिया तब मैं राक्षस के यहां आया पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझ को ऐसा काम करने कहता है जिस से मेरा प्राण जाय।

भागुरायण।—भदन्त! हम तो यह समझते हैं कि पहिले जो आधा राज देने कहा था वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म्म किया राक्षस ने नहीं किया।

क्षपणक।—[कान पर हाथ रख कर] कभी नहीं चाणक्य तो विषकन्या का नाम भी नहीं जानता यह घोर कर्म्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है।

भागुरायण।—हाय हाय! बड़े कष्ट की बात है। लो मुहर तो तुम को देते हैं पर कुमार को भी यह बात सुना दो।

मलयकेतु।—[आगे बढ़ कर]

सुन्यौ मित्र! श्रुति भेद कर, शत्रु कियौ जो हाल।
पिता मरन को मोहिं दुख, दुगुन भयो एहि काल॥

क्षपणक।—[आप ही आप] मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन लिया तो मेरा काम हो गया [जाता है]

मलयकेतु।—[दांत पीस कर ऊपर देख कर] अरे राक्षस!

जिन तोपै बिश्वास करि, सौंप्यौ सब धन धाम।
ताहि मारि दुख दै सबन, सांचो किय निज नाम॥

भागुरायण।—[आपही आप] आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि अमात्य राक्षस के प्राण की सर्वथा रक्षा करना इस्से अब बात फेरैं। [प्रकाश] कुमार! इतना आवेग मत कीजिए। आप आसन पर बैठिए तो मैं कुछ निवेदन करूं।

मलयकेतु।—मित्र क्या कहते हो कहो [बैठ जाता है]

भागुरायण।—कुमार! बात यह है कि अर्थ शास्त्र वालों की मित्रता और शत्रुता अर्थ ही के अनुसार होती है साधारण लोगों की भांति इच्छानुसार नहीं होती। उस समय सर्व्वार्थ सिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था तब देव पर्व्वतेश्वर ही इस कार्य्य में कंटक थे तो उस कार्य्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं। आप देखिए—

मित्र शत्रु ह्वै जात हैं, शत्रु करहिं अति नेह।
अर्थ नीति बस लोग सब, बदलहिं मानहुं देह॥

इस से राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिए। और जब तक नन्दराज्य न मिले तब तक उस पर प्रगट स्नेह ही रखना नीति सिद्ध है। राज्य मिलने पर कुमार जो चाहेंगे करेंगे।

मलयकेतु—मित्र ऐसा ही होगा। तुम ने बहुत ठीक सोचा है। इस समय इस के वध करने से प्रजागण उदास हो जायंगे और ऐसा होने से जय में भी सन्देह होगा।

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य।—कुमार की जय हो। कुमार के कटक द्वार के रक्षाधिकारी दीर्घचक्षु ने निवेदन किया है कि मुद्रा लिए बिना एक पुरुष कुछ पत्र सहित पकड़ा गया है सो उस को आप एक बेर देखलें।

भागुरायण।—अच्छा उस को ले आओ।

पुरुष।—जो आज्ञा।

(जाता है और हाथ बंधे हुए सिद्धार्थ को लेकर आता है)

सिद्धार्थक।—(आप ही आप)

गुन पैं रिझवत, दोस सों, दूर बचावत जौन।
स्वामि भक्ति जननि सरिस, प्रनमत नित हम तौन॥

पुरुष।—(हाथ जोड़ कर) कुमार यही मनुष्य है।

भागुरायण।—(अच्छी तरह देखकर) यह क्या बाहर का मनुष्य है या यहीं किसी का नौकर है।

सिद्धार्थक।—मैं अमात्य राक्षस का पासवरती सेवक हूं।

भागुरायण।—तो तुम क्यों मुद्रा लिए बिना कटक के बाहर जाते थे।

सिद्धार्थक।—आर्य्य काम की जल्दी से।

भागुरायण।—ऐसा कौन काम है जिस के आगे राजाज्ञा को भी कुछ माल नहीं गिना।

सिद्धार्थक।—(भागुरायण के हाथ में लेख देता है)

भागुरायण।—(लेख ले कर देख कर) कुमार इस लेख पर अमात्य राक्षस की मुहर है।

मलयकेतु—ऐसी तरह से खोल कर दो कि मुहर न टूटे।

भागुरायण।—(पत्र खोल कर मलयकेतु को देता है)

मलयकेतु।—(पढ़ता है) स्वस्ति। यथा स्थान में कहीं से कोई किसी पुरुष विशेष को कहता है। हमारे विपक्ष को निराकरण कर के सच्चे मनुष्यने सचाई दिखाई। अब हमारे पहिले के रक्खे हुए हमारे हितकारी चरों को भी जो जो देने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना। यह लोग प्रसन्न होंगे तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भांति अपने उपकारी की सेवा करेंगे। सच्चे लोग कहीं नहीं भूलते तो भी हम स्मरण कराते हैं। इन में से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते हैं और कोई राज चाहते हैं। हम को सत्यवादी ने जो तीन अलङ्कार भेजे सो मिले। हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना। और ज़बानी हमारे अत्यन्त प्रमाणिक सिद्धार्थक से सुन लेना। *

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण इस लेख का आशय क्या है।

भागुरायण।—भद्रसिद्धार्थक! यह लेख किस का है।

सिद्धार्थक।—आर्य्य! मैं नहीं जानता।

भागुरायण।—धूर्त्त० लेख ले कर जाता है और यह नहीं जानता कि किसने लिखा है। और संदेसा किस से कहैगा।

सिद्धार्थक।—(डरते हुए की भांति) आप से।

भागुरायण।—क्यों रे। हम से।

सिद्धार्थक।—आपने पकड़ लिया। हम कुछ नहीं जानते कि क्या बात है।

---

* यह वही लेख है जिस को चाणक्य ने शकटदास से धोखा दे कर लिखवाया था और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर कर के सिद्धार्थक को दिया था।

भागुरायण।—(क्रोध से) अब जानैगा। भद्र भासुरक! इस को बाहर ले जा कर जब तक यह सब कुछ न बतलावै तब तक खूब मारो।

पुरुष।—जो आज्ञा (सिद्धार्थक को बाहर ले कर जाता है और हाथ में एक पेटी लिए फिर आता है) आर्य्य! उस को मारने के समय उस के बगल में से यह मुहर की हुई पेटी गिर पड़ी।

भागुरायण।—(देख कर) कुमार इस पर भी राक्षस की मुहर है।

मलयकेतु।—यही लेख अशून्य करने को होगी। इस की भी मुहर बचा कर हम को दिखलाओ।

भागुरायण। (पेटी खोल कर दिखलाता है)।

मलयकेतु।—अरे यह तो वही सब आभरण हैं जो हमने राक्षस को भेजे थे। * निश्चय यह चन्द्रगुप्त को लिखा है।

भागुरायण।—कुमार! अभी सब संशय मिटा जाता है। भासुरक उस को और मारो।

पुरुष।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है) † आर्य्य हमने उस को बहुत मारा है अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे।

मलयकेतु। अच्छा ले आओ।

पुरुष।—जो कुमार की आज्ञा (बाहर जाकर सिद्धार्थ को ले कर आता है)।

---

* दूसरा अङ्क पढ़ने से यहां की सब कथा खुल जायगी। चाणक्य ने चालाकी कर के चन्द्रगुप्त से पर्व्वतेश्वर के आभरण का दान कराया था और अपने ही ब्राह्मणों को दिलवाया था। उन्ही लोगों ने राक्षस के हाथ वह आभरण बेंचे जिस के विषय में कि इस पत्र में लिखा है "हम को सत्यवादी ने तीन अलङ्कार भेजे सो मिले।" जिस में मलयकेतु को बिश्वास हो कि पर्व्वतेश्वर के आभरण राक्षस ने मोल नहीं लिए किन्तु चन्द्रगुप्त ने उस को भेजे और मलयकेतु ने कंचुकी के द्वारा जो आभरण राक्षस को भेजे थे वही इस पेटी में बन्द थे। जिस में मलयकेतु को यह सन्देह हो कि राक्षस इन आभरणों को चन्द्रगुप्त को भेजता है।

† ऐसे अवसर पर नाटक खेलने वालों को उचित है कि बाहर जाकर बहुत जल्द न चले आवें। और वह जिस कार्य्य के हेतु गए हैं नेपथ्य में उसका अनुकरण करें। जैसा भासुरक को सिद्धार्थक मारने के हेतु भेजा गया है तो उस को नेपथ्य में मारने का सा कुछ शब्द कर के तब फिर आना चाहिए॥

सिद्धार्थक।—(मलयकेतु के पैरों पर गिर कर) कुमार हम को अभय दान दीजिए।

मलयकेतु।—भद्र! उठो। शरनागत जन यहां सदा अभय हैं। तुम इस का वृत्तान्त कहो।

सिद्धार्थक।—(उठ कर) सुनिए। मुझ को अमात्य राक्षस ने यह पत्र दे कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा था।

मलयकेतु।—ज़बानी क्या कहने कहा था वह कहो।

सिद्धार्थक।—कुमार! मुझको अमात्य राक्षस ने यह कहने कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्म्मा, मलयाधिपति सिंहनाद, काश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष, * सिन्धु महाराज सिन्धुसेन और पारसीक पालक मेघाक्ष

---

* काश्मीर के राजा के विषय में मुद्राराक्षस के कवि को भ्रम हुआ है यह सम्भव होता है। राज तरंगिणी में कोई राजा पुष्कराक्ष नाम का नहीं है। जिस समय में पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त राज्य करता था उस समय काश्मीर में विजय जयेन्द्र सन्धिमान मेघवाहन और प्रवरसेन इन्हीं राजों के होने का सम्भव है। कनिङ्हम लेसन विलसन इत्यादि विद्वानों के मत में सौ बरस के लगभग का अन्तर है इसी से मैं ने यहां कई राजों का सम्भव होना लिखा। इन राजाओं के जीवन इतिहास में पटने तक किसीका आना नहीं लिखा है और न चन्द्रगुप्त के काल की किसी घटना से उन से सम्बन्ध है। मेघाक्ष मेघवाहन को लिखा हो यह सम्भव हो सकता है। क्योंकि मेघवाहन पहले गान्धार देश का राजा था फिर काश्मीर का राजा हुआ। भ्रम से इसको पारसीक राज लिख दिया हो। या सिल्यूकस का शैलाक्ष अनुवाद न करके मेघाक्ष किया हो। सन्धिमान और प्रवर सेन से सिन्धु सेन निकाला हो। भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमा पर उस समय सिकन्दर के मरने से बड़ा ही गड़बड़ था इस से कुछ शुद्ध वृत्तान्त नहीं मिलता। सम्भव है कि कवि ने जो कुछ उस समय सुना लिख दिया। वा यह भी सम्भव है कि यह सब देश और नाम केवल काव्य कल्पना हो। इतिहासों से यह भी विदित होता है कि मेगास्थनिस (Megasthenes) नामक एक राजदूत सिल्यूकस का चन्द्रगुप्त की सभा में आया था सम्भव है कि इसी का नाम मेघाक्ष लिखा हो। यदि शुद्ध राजतरंगिणी का हिसाब लीजिए तो एक दूसरीही लड़ मिलती है। इसके मत से ६५३ बरस कलियुग बीते महाभारत

इन पांच राजाओं से आप के पूर्व्व में सन्धि हो चुकी है। इस में पहिले तीन तो मलयकेतु का राज चाहते हैं और बाकी दो खज़ाना और हाथी चाहते हैं। जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़ कर मुझ को प्रसन्न किया उसी तरह इन लोगों को भी प्रसन्न करना चाहिए। यही राजसन्देश है।

मलयकेतु।—(आप ही आप) क्या चित्रवर्म्मादिक भी हमारे द्रोही हैं? तभी राक्षस में उन लोगों की ऐसी प्रीति है। (प्रकाश) विजये! हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते हैं।

प्रतीहारी।—जो आज्ञा (जाता) है।

(एक परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ चिन्ता की मुद्रा में एक पुरुष के साथ दिखलाई पड़ता है *)

का युद्ध हुआ। फिर १०१ बरस में तीन गोनर्द हुए अब ७५४ ग० क० सम्वत हुआ। इस के पीछे १२६६ बरस के राजाओं का वृत्त नहीं मालूम। (२०२० ग० क०) इस समय के ८६७ वर्ष पीछे उत्पलाक्ष हिरण्याक्ष और हिरण्यकुल इस नाम के राजा हुए। २७८० ग० क० के पास इन का राज आरम्भ हुआ और २८८७ ग० क० तक रहा। इस वर्ष गत कलि ४८८२ इस से चन्द्रगुप्त का समय २८०० ग० क० हुआ तो उत्पलाक्ष हिरण्य वा हिरण्याक्ष राजा राजतरंगिणी के मत से चन्द्रगुप्त के समय में थे। (राजतरंगिणी प्र० त० २८७ श्लोक० से) उत्पलाक्ष इतिख्यातिः पेशलाक्षतयागतः। तस्यूनस्त्रिंशतं सार्द्धान् वर्षाणामवशान्महीं। तस्यसूनुर्हिरण्याक्षो स्वनामाङ्कपुरंव्यधात्। क्ष्मांसप्तत्रिंशतंवर्षान् सप्तमासांश्चभुक्तवान्॥ हिरण्यकुलइत्यस्य हिरण्याक्षस्यचात्मजः। षष्टिं षष्टिंच मुकुलस्तस्यूनरभवत् समाः॥ अथम्लेच्छगणाकीर्णे मंडलेचंडचेष्टितः। इत्यादि। यह सम्बन्ध दो तीन बातों से पुष्ट होता है। एक तो यह स्पष्ट सम्भव है कि उत्पलाक्ष का पुष्कराक्ष हो गया हो। दूसरे उन्ही लोगों के समय उस प्रान्त में म्लेच्छों का आना लिखा है। तीसरे इसी समय से गान्धारवर्बर आदि देशों के लोगों का व्यवहार यहां प्रचलित हुआ। इन बातों से निश्चित होता है कि यही उत्पलाक्ष वा हिरण्याक्ष पुष्कराक्ष नाम से लिखा है विरोध केवल इतना ही है कि राज तरंगिणी में चन्द्रगुप्त का वृत्तांत नहीं है।

* इस पांचवें अङ्क में चार बेर दृश्य बदला है० पहिले प्रवेशक फिर भागुरायण का प्रवेश और तीसरा यह राक्षस का प्रवेश० चौथा राक्षस का फिर मलय-

राक्षस।—(आपही आप) चन्द्रगुप्त की ओर के बहुत लोग हमारी सेना में भरती होरहे हैं इस से हमारा मन शुद्ध नहीं है। क्योंकि।

रहत साध्यतें अन्वित अरु विलसत निज पच्छहि ।
सोई साधन साधक जो नहिं छुअत विपच्छहि ॥
जो पुनि आपु असिद्ध सपच्छ विपच्छहु में सम ।
ताछु कहु नहिं निज पच्छ माहिं जाको है संगम ॥
नरपति ऐसे साधनन कों अनुचित अंगीकार करि ।
सब भांति पराजित होत हैं वादी लों बहुविधि बिगरि† ॥

केतु के पास जाना। नए नाटकों के अनुसार चार दृश्यों वा गर्भाङ्कों में इस को बांट सकते हैं यथा पहिला दृश्य राजमार्ग दूसरा युद्ध के डेरों के बीच में मार्ग और तीसरा राक्षस का डेरा चौथा मलयकेतु का डेरा।

† न्याय शास्त्र में अनुमान के प्रकरण में किसी पदार्थ को दूसरे पदार्थ के साथ बारबार रहते देख कर व्याप्ति ज्ञान होता है कि जहां पहला पदार्थ रहता है वहां दूसरे अवश्य रहता होगा। जैसा रसोई के घर में अग्नि के साथ धूंए को बराबर देख कर व्याप्ति ज्ञान होता है कि जहां धुवां होगा वहां अग्नि भी अवश्य होगा। इसी भांति और कहीं भी यदि दूसरे पदार्थ को देखो तो पहले पदार्थ का ज्ञान होता है कि वहां भी अग्नि अवश्य होगा। इसी को अनुमिति कहते हैं। जिस को वाद में सिद्धि करनी हो उस को साध्य कहते हैं जैसे अग्नि। जिस के द्वारा सिद्ध हो उसे हेतु और साधन कहते हैं जैसे धूम। जहां साध्य का रहना निश्चित हो वह सपक्ष कहलाता है जैसे पाकशाला। जिस में अनुमिति से साध्य की सिद्धि करनी हो वह पक्ष कहलाता है जैसे पर्वत। जहां साध्य का निश्चय अभाव हो वह विपक्ष कहलाता है जैसा जलाशय। यहां पर कवि ने अपनी न्याय शास्त्र की जानकारी का परिचय देने को यह छन्द बनाया है। जैसे न्याय शास्त्र में वाद करने वाला पूर्वोक्त साधनादिकों को न जान कर स्वपक्ष स्थापन में असमर्थ हो कर हार जाता है वैसेही जो राजा (साधक) सेना आदि साधन से अन्वित है और अपने पक्ष को जानता है विपक्ष से बचता है वह जय पाता है। जो आप साध्यों [सेना नीति आदिकों] से हीन (असिद्ध) है और जिस को शत्रु मित्र का ज्ञान नहीं है और जो अपने पक्ष को नहीं समझता और अनुचित साधनों का [अर्थात् शत्रु से मिले हुए लोगों का] अंगीकार करता है वह हारता है। यह राक्षस

वा जो लोग चन्द्रगुप्त से उदास होगए हैं वही लोग इधर मिले हैं मैं व्यर्थ सोच करता हूं। (प्रगट) प्रियम्वदक! कुमार के अनुयायी राजा लोगों से हमारी ओर से कह दो कि अब कुसुमपुर दिन दिन पास आता जाता है इस से सब लोग अपनी सेना अलग अलग कर के जो जहां नियुक्त हों वहां सावधानी से रहैं॥

आगे खस अरु मगध चलैं जय ध्वजहि उड़ाए।
यवन और गंधार रहैं मधि सैन जमाए॥
चेदि हून सक राज लोग पीछे सों धावहिं।
कौलूतादिक नृपति कुमारहि घेरे आवहिं *॥

ने इसी विचार पर कहा कि चन्द्रगुप्त के लोग इधर बहुत मिले हैं इस से हारने का सन्देह है। [दर्शनों का थोड़ा सा वर्णन पाठक गण को जानकारी के हेतु पीछे किया जायगा]॥

* खस हिमालय के उत्तर की एक जाति। कोई विद्वान तिव्वत्त कोई लद्दाख़ को खस देश मानते हैं। यवन शब्द से मुख्य तात्पर्य यूनान प्रान्त के देशों से है (Bactria. Lovia. Greek.) परन्तु पश्चिम की विदेशी और अन्यधर्मी जाति मात्र को मुहाविरे में यवन कहते हैं। गान्धार जिस का अपभ्रंश कन्दहार है। चेदि देश बुंदेलखण्ड। कोई कोई चंदेरी के छोटे शहर को चेदि देश की राजधानी कहते हैं। हून देश योरोप के तत्काल के किसी असभ्य देश का नाम। (Huns. Hungary.) कोई विद्वान मध्य एशिया में हून देश मानते हैं। शक को कोई विद्वान तातार देश कहते हैं और कोई (Scythians) को शक कहते हैं। कोई बलूचिस्तान के पास के देशों को शक देश मानते हैं। कौलूत देश के राजा चित्रवर्मादिक राक्षस के बड़े विश्वस्त थे इसी से कुमार की अंगरक्षा इन को दी थी। इन राजाओं के नाम और देश का कुछ और पता मिलने को हम सिकन्दर के बिजय की बड़ी बड़ी पुस्तकों को देखैं। क्योंकि बहुत सी बातैं जिन का पता इस देश की पुस्तकों से नहीं लगता बिदेशी पुस्तकैं उन को सहज में बतला देती हैं। इस हेतु यहां तीन अङ्गरेज़ी पुस्तकों से हम थोड़ा सा अनुवाद करते हैं (1) Alexander the Great and his successors. (2) History of Greece. (3) Plutarch's lives of illustrious men. V. II. "सिकन्दर के सिपाही लोग केवल ऋतु और थकावट ही से नहीं डरे किन्तु उन्हों ने यह भी सुना

प्रियम्वदक।—अमात्य की जो आज्ञा (जाता है)

(प्रतीहारी आता है)

प्रतीहारी।—अमात्य की जय हो। कुंमार अमात्य को देखना चाहते हैं।

कि गंगा छ सौ फ़ुट गहरी और चार मील चौड़ी है। Ganderites और Praisians के राज गण अस्सी हजार सवार दो लाख सिपाही छ हजार हाथी और आठ हजार रथ सजे हुए सिकन्दर से लड़ने को तयार हैं। इतनी सेना मगध देश में एकत्र होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि ऐन्द्राकुतस (चन्द्रगुप्त) ने सिल्यूसक को एक ही बेर पांच सौ हाथी दिए थे और एक बेर छ लाख सेना ले कर सारा हिन्दुस्तान जीता था।" यह गान्दरिटस गान्धार और प्रेसिअन फारस प्रान्त के किसी देश का नाम होगा। हम को इन पांच राजाओं में कुलूत और मलय इन दो देशों की विशेष चिन्ता है इस हेतु इन देशों का विशेष अन्वेषण करकैं आगे लिखते हैं "एक बेर सिकन्दर [Malli] माल्लि वा मल्लि नामक भारत के विख्यात लड़ने वाली जाति से जब वह उन को जीतने को गया था मरते मरते बचा। जब सिकन्दर ने उन लोगों का दुरग घेर लिया और दीवार पर के लोगों को अपने शस्त्र से मारडाला तो साहस कर के अकेला दीवार पर चढ़ कर भीतर कूद पड़ा और वहां शत्रुओं से ऐसा घिर गया कि यदि उस के सिपाही साथ ही न पहुंचते तो वह टुकड़े २ हो जाता०।" यह मल्ली देश की मुद्राराक्षस का मलय देश है यह संभव होता है। यद्यपि अंगरेज़ी वाले यह देस कहां था इस का कुछ वर्णन नहीं करते किन्तु हिन्दुस्थान से लौटते समय यह देस उस को मिला था इस से अनुमान होता है कि कहीं बलूचिस्तान के पास होगा। आगे चल कर फिर लिखते हैं "नदियों के मुहाने पर पहुंचने के पीछे उस को एक टापू मिला जिस को उस ने शिलोसतिस Scilloustis लिखा है पर आरियन [आर्य] लोग उस टापू को किलूता Cillutta कहते हैं।" क्या आश्चर्य है कि यही कुलूत हो। वह लोग यह भी लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने छोटेपन में सिकन्दर को देखा था और उस के विषय में उसने यह अनुमति दी थी कि सिकन्दर यदि स्वभाव अपने वश में रखता तो सारी पृथ्वी जीतता। अब इन पुस्तकों से राजाओं के नाम भी कुछ मिलाइए। पर्व्वतेश्वर और बर्ब्बर यह दोनों शब्द Barbarian बर्बरेयिन से कैसे पास हैं। काश्मीरादि देश का राजा जिस के पंजाब अति निकट है पुष्कराक्ष ग्रीक लोगों के पोरस शब्द के पास

राक्षस।—भद्र क्षण भर ठहरो। बाहर कौन है?

(एक मनुष्य आता है)।

मनुष्य।—अमात्य! क्या आज्ञा है॥

राक्षस।—भद्र! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हम को आभरण पहराया है तब से उन के सामने नंगे अंग जाना हम को उचित नहीं है। इस से जो तीन आभरण मोल लिए हैं उन में से एक भेज दें।

मनुष्य।—जो अमात्य की आज्ञा। (बाहर जाता है आभरण ले कर आता है।) अमात्य! अलंकार लीजिए।

राक्षस।—(अलंकार धारण करके) भद्र! राजकुल में जाने का मार्ग बतलाओ।

प्रतीहारी।—इधर से आइए।

राक्षस।—अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है।

सेवक प्रभु सों डरत सदाही। पराधीन सपने सुख नाहीं॥
जे ऊंचे पद के अधिकारी। तिन को मनहीं मन भय भारी॥
सबही द्वेष बड़न सों करहीं। अनुछिन कान स्वामि को भरहीं॥
जिमि जे जनमे ते मरैं, मिले अवसि बिलगाहिं।
तिमि जे अति ऊंचे चढ़े, गिरि हैं संसय नाहिं॥

हैं। पुष्कराक्ष को पुसकारस और उस से पोरस हुआ हो तो क्या आश्चर्य है। प्यूकेसतस वा पूसेतस [जो सिकन्दर के पीछे पारस का गवर्नर हुआ था] भी पुष्कराक्ष के पास है किन्तु यहां पारस का राजा मेघाक्ष लिखा है। इन राजाओं का ठीक ठीक ग्रीक नाम या जो देश उन का विशाखदत्त ने लिखा उस को यूनान वाले उस समय क्या कहते थे यह निर्णय करना बहुत कठिन है। संस्कृत के शब्द भी यूनानी में इतने बदल जाते हैं जिस का कुछ हिसाब नहीं। चन्द्रगुप्त का ऐन्ड्राकोत्तस वा सैन्ड्राकोटस। पाटलिपुत्र का पालीबोत्रा वा पालीभोत्तरा। तक्षक का तैक्साइलस। यही बात यदि हम यूनानी शब्दों को संस्कृत के सादृश्यानुसार अनुवाद करें तो उपस्थित होंगी। अलेकज़ैंडर एलेकजेन्दर इत्यादि का फारसी सिकन्दर हुआ। हम यदि इन शब्दों को संस्कृत Sanskritised करें तो अलक्षेन्द्र वा लक्षेन्द्र वा शीकेन्द्र वा शीकान्दर वा शिक्षेन्द्र इत्यादि शब्द होंगे। अब कहिए कहां के शब्द कहां जा पड़े। इसी से ठीक ठीक नामग्राम का निर्णय होना बहुत कठिन है। केवल शब्द विद्या के पंडितों के कुतूहल के हेतु इतना भी लिखा गया।

प्रतीहारी।—(आगे बढ़ कर) अमात्य ! कुमार यह विराजते हैं आप जाइये।

राक्षस।—अरे कुमार यह बैठे हैं।

लखत चरन की ओर हू , तेऊ न देखत ताहि ।
अचल दृष्टि इक ओर ही , रही बुद्धि अवगाहि ॥
कर पै धारि कपोल निज , लसत झुको अवनीस ।
दुसह काज के भार सो , मनहुं नमित भो सीस ॥

[* आगे बढ़ कर] कुमार की जय हो ।

मलयकेतु।—आर्य ! प्रणाम करता हूं। आसन पर विराजिए।

राक्षस।—[बैठता है]।

मलयकेतु।—आर्य ! बहुत दिनों से हम लोगों ने आप को नहीं देखा ।

राक्षस।—कुमार ! सेना को आगे बढ़ाने के प्रबन्ध में फंसने के कारण हम को यह उपालम्भ सुनना पड़ा।

मलयकेतु।—अमात्य ! सेना के प्रयाण का आप ने क्या प्रबन्ध किया है मैं भी सुनना चाहता हूं।

राक्षस।—कुमार ! आप के अनुयायी राजा लोगों को यह आज्ञा दिया है ['आगे खस अरु मगध' इत्यादि छन्द पढ़ता है]।

मलयकेतु।—[आप ही आप] हां ! जाना ! जो हमारे नाश करने के हेतु चन्द्रगुप्त से मिले हैं वही हम को घेरे रहैंगे [प्रकाश] आर्य ! अब कुसुमपुर में कोई आता है या वहां जाता है कि नहीं ?

राक्षस।—अब यहां किसी के आने जाने से क्या प्रयोजन। पांच छ दिन में हम लोग ही वहां पहुंचैंगे।

मलयकेतु।— [आप ही आप] अभी सब खुल जाता है [प्रगट] जो यही बात है तो इस मनुष्य को चिट्ठी ले कर आप ने कुसुमपुर क्यों भेजा था ?

राक्षस।—[देख कर] अरे सिद्धार्थक है ? भद्र यह क्या ?

सिद्धार्थक।—[भय और लज्जा नाट्य कर के] अमात्य हम को क्षमा कीजिए। अमात्य हमारा कुछ भी दोष नहीं है। मार खाते खाते हम आप का रहस्य छिपा न सके।

राक्षस।—भद्र ! वह कौन सा रहस्य है यह हम को नहीं समझ पड़ता।

---

* यहीं पर चौथा दृश्य आरम्भ होता है ।

सिद्धार्थक।—निवेदन करते हैं। मार खाने से। [इतना ही कर लज्जा से नीचा मुंह कर लेता है]।

मलयकेतु।—भागुरायण ! स्वामी के सामने लज्जा और भय से यह कुछ न कह सकेगा इस से तुम सब बात आर्य से कहो।

भागुरायण।—कुमार की जो आज्ञा। अमात्य ! यह कहता है कि अमात्य राक्षस ने हम को चिट्ठी दे कर और संदेश कह कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस।—भद्र सिद्धार्थक ! क्या यह सत्य है ?

सिद्धार्थक।—[लज्जा नाट्य कर के] मार खाने के डर से मैंने कह दिया।

राक्षस।—कुमार ! मार की डर से लोग क्या नहीं कह देते।

मलयकेतु।—भागुरायण ! चिट्ठी दिखला दो और संदेसा वह अपने मुंह से कहैगा।

भागुरायण।—[चिट्ठी खोल कर 'स्वस्ति कहीं से कोई किसी को इत्यादि पढ़ता है]।

राक्षस।—कुमार ! कुमार ! यह सब शत्रु का प्रयोग है।

मलयकेतु।—लेख शून्य करने को आर्य ने जो आभरण भेजे हैं वह शत्रु कैसे भेजैगा। [आभरण दिखलाता है]।

राक्षस।—कुमार यह मैंने किसी को नहीं भेजा। कुमार ने यह मुझ को दिया और मैंने प्रसन्न हो कर सिद्धार्थक को दिया।

भागुरायण।—अमात्य ! ऐसे उत्तम आभरणों का विशेष कर अपने अंग से उतार कर कुमार की दी हुई वस्तु का यह पात्र है ?

मलयकेतु।—और संदेश भी बड़े प्रमाणिक सिद्धार्थक से सुनना यह आर्य ने लिखा है।

राक्षस।—कैसा संदेश और कैसी चिट्ठी। यह हमारा कुछ नहीं है।

मलयकेतु।—तो मुहर किस की है ?

राक्षस।—धूर्त्त लोग कपट मुद्रा भी बना लेते हैं।

भागुरायण।—कुमार ! अमात्य सच कहते हैं। सिद्धार्थक ! यह चिट्ठी किस की लिखी है ?

सिद्धार्थक।—[राक्षस का मुंह देख कर चुप रह जाता]।

भागुरायण।—चुप मत रहो। जी कड़ा कर के कहो।

सिद्धार्थक।—आर्य! शकट दास ने।

राक्षस।—शकटदास ने लिखा तो मानो मैंने ही लिखा।

मलयकेतु।—विजये! शकटदास को हम देखा चाहते हैं।

भागुरायण।—(आप ही आप) आर्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नहीं करते। जो शकटदास आ कर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है यह सब वृत्तान्त कह देगा तो मलयकेतु फिर बहंक जायगा। (प्रकाश) कुमार! शकटदास अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करेंगे इस से उन का कोई और लेख मंगा कर अक्षर मिला लिए जायं।

मलयकेतु।—विजये! ऐसा ही करो।

भागुरायण।—और मुहर भी आवै।

मलयकेतु।—हां यह भी।

कंचुकी।—जो आज्ञा (बाहर जाता है और पत्र और मुहर ले कर आता है) कुमार! यह शकटदास का लेख और मुहर है।

मलयकेतु।—(देख कर और अक्षर और मुहर को मिलान कर के) आर्य! अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस।—(आप ही आप) अक्षर निस्सन्देह मिलते हैं किन्तु शकटदास हमारा मित्र है इस हिसाब से नहीं मिलते। तो क्या शकटदास ही ने लिखा। अथवा—

पुत्र दार की याद करि, स्वामि भक्ति तजि देत।
छोड़ि अचल जस कों करत, चञ्चल धन सों जन हेत॥

या इस में सन्देह ही क्या है।

मुद्रा ताके हाथ की, सिद्धार्थक हू मित्र।
ताही के कर को लिख्यौ, पत्रहु साधन चित्र॥
मिलि कै शत्रुन सों करन, भेद भूलि निज धर्म।
स्वामि विमुख शकट हि कियो, निश्चय यह खल कर्म॥

मलयकेतु।—आर्य! श्रीमान् ने तीन आभरण भेजे सो मिले. यह जो आपने लिखा है सो उसी में का एक आभरण यह भी है? (राक्षस के पहने हुए आभरण को देख कर आप ही आप) क्या यह पिता के पहने हुए आभरण हैं (प्रकाश) आर्य! यह आभरण आपने कहां से पाया?

राक्षस।—जौहरी से मोल लिया था।

मलयकेतु।—विजये! तुम इन आभरणों को पहचानती हो?

कंचुकी (देख कर आंसू भर के) कुमार! हम सुगृहीत नाम धेय महाराज पर्व्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानेंगे।

मलयकेतु।—(आंखों में आंसू भर के)

भूषण प्रिय! भूषण सबै, कुल भूषण तुम अंग।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन संग॥

राक्षस।—(आप ही आप) ये पर्व्वतेश्वर के पहिने हुए आभरण हैं? (प्रकाश) जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियों ने ही वेंचा है।

मलयकेतु।—आर्य! पिता के पहने हुए आभरण और फिर चन्द्रगुप्त के हाथ पड़े हुए जौहरी वेंचै यह कभी हो नहीं सकता। अथवा हो सकता है।

अधिक लाभ के लोभ सों, क्रूर! त्यागि सब नेह।
बदले इन आभरन के, तुम वेंच्यौ मम देह॥

राक्षस।—(आप ही आप) अरे! यह दांव तो पूरा वैठ गया।

मम लेख नहिं यह किमि कहैं मुद्रा छपी जब हाथ की।
बिश्वास होत न शकट तजि है प्रीति कबहूं साथ की॥
पुनि वेचिहै नृप चन्द्र भूषन कौन यह पतियाइ है।
ता सों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइ है॥

मलयकेतु।—आर्य! हम यह पूछते हैं।

राक्षस।—जो आर्य हो उस से पूछो हम अब पापकारी अनार्य हो गए हैं।

मलयकेतु।—स्वामि पुत्र तुव मौर्य हम, मित्र पुत्र सह हेत।
पैहो उत वाको कियो, इत तुम हम कों देत।
सचिवहु भे उत दास ही, इत तुम स्वामी आप॥
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीनो यह पाप॥

राक्षस।—(आंखों में आंसू भर के) कुमार! इस का निर्णय तो आप ही ने कर दिया।

स्वामि पुत्र मम मौर्य तुम, मित्र पुत्र सह हेतु।
पैहैं उत वाको दियो, इत हम तुम कों देत॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत हम स्वामी आप॥
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीनो यह पाप॥

मलयकेतु।—(चिट्ठी पेटी इत्यादि दिखला कर) यह सब क्या है ?

राक्षस।—(आंखों में आंसू भर के) यह सब चाणक्य ने नहीं किया दैव ने किया।

निज प्रभु सों करि नेह जे भृत्य समर्पत देह।
तिन सों अपुने सुत सरिस निवाहत नेह॥
ते गुन गाहक नृप सबै जिन मारे छन मांहि।
ताही विधि को दोस यह औरन को कछु नांहि॥

मलयकेतु।—(क्रोध पूर्व्वक (अनार्य ! अब तक छल किए जाते हौ कि यह सब दैव ने किया।

विष कन्या दै पितु हत्यो, प्रथम प्रीति उपजाय।
अब रिपु सों मिलि हम सबन, बधन चहत ललचाय॥

राक्षस।—(दुःख से आप ही आप) हां ! यह और जले पर नमक है। (प्रगट कानों पर हाथ रख कर) नारायण ! देव पर्व्वतेश्वर का कोई अपराध हमने नहीं किया।

मलयकेतु।—फिर पिता को किसने मारा ?

राक्षस।—यह दैव से पूछो।

मलयकेतु।—दैव से पूछैं। जीव सिद्धि क्षपणक से न पूछैं ?

राक्षस।—(आप ही आप) क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्त चर है ! हाय ! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर लिया ?

मलयकेतु।—(क्रोध से) शिखरसेन सेनापति से कहो कि राक्षस से मिल कर चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करने को पांच राजे जो हमारा बुरा चाहते हैं, उन में कौलूतचित्रवर्मा मलयाधिपति सिंहनाद और काश्मीराधीश पुष्कराक्ष ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इनको भूमि ही में गाड़ दे और सिन्धुराज सुषेण और पारसीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सेना चाहते थे सो इन को हाथी ही के पैर के नीचे पिसवा दो॥ *

पुरुष।—जो कुमार की आज्ञा। (जाता है)

---

* यही बात ऐथीनियन लोगों ने दारा से कही थी। Wilson. कहते हैं कि चाणक्य की आज्ञा से ये राजे सब क़ैद कर लिए गए थे मारे नहीं गए थे।

मलयकेतु।—राक्षस! हम मलयकेतु हैं कुछ तुम से विश्वासघाती राक्षस नहीं है † इस से तुम जाकर अच्छी तरह चन्द्रगुप्त का आश्रय करो।

चन्द्रगुप्त चानक्य सों , मिलिए सुख सों आप ।
हम तीनहुं को नासि हैं , जिमि त्रिवर्ग कहं पाप ‡ ॥

भागुरायण।—कुमार! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिए। कुसुमपुर घेरने को हमारी सेना चढ़ चुकी है॥

उड़िकै तिय गनगंड जुगल कहं मलिन बनावति ।
अलिकुल से कल अलकन निज कन धवल छवावति ॥
चपल तुरग खुर घात उठी घन घुमड़ि नवीनी ।
सत्नुसीस पैं धूरि परै गज मद सों भीनी ॥

[अपने भृत्यों के साथ मलयकेतु जाता है]

राक्षस—(घबड़ा कर) हाय! हाय! चित्रवर्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए। हाय! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु को नहीं मित्रों ही को नाश करने को होती है। अब हम मन्द भाग्य क्या करैं।

जांहि तपोवन? पै न मन , शांत होत सह क्रोध ।
प्रानदेहिं रिपु के जिअत? , यह नारिन को बोध ॥
खींचि खड्ग कर पतंग सम , जाहिं अनल अरि पास ।
पै या साहस होइ है , चन्दनदास विनास ॥

(सोचता हुआ जाता है)

पटाक्षेप। इति पंचम अंक।

---

† अर्थात् हम तुम्हारा प्राण नहीं मारते।

‡ जैसे धर्म अर्थ काम को पाप नाश कर देता है।

छठां अङ्क ।

स्थान नगर के बाहर सड़क ।

(कपड़ा गहिना पहिने हुए सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक ।—जलद नील तन जयति जय , केशव केशी काल ।
जयति सुजन जन दृष्टि ससि , चन्द्रगुप्त नरपाल ॥
जयति आर्य चानक्य की , नीति सहज बल भौन ।
बिनहीं साजे सैन नित , जीतत अरि कुल जौन ॥

चलो आज पुराने मित्र समिद्धार्थक से भेंट करें (घूम कर)
अरे ! मित्र समिद्धार्थक आप ही इधर आता है ।

(समिद्धार्थक आता है)

समिद्धार्थक ।—मिटत ताप नहिं पान सों , होत उछाह बिनास ।
बिना मीत के सुख सबै , औरहु करत उदास ॥

सुना है कि मलयकेतु के कटक से मित्र सिद्धार्थक आ गया है। उसी को खोजने को हम भी निकले हैं कि मिले तो बड़ा आनन्द हो। (आगे बढ़ कर) अहा ! सिद्धार्थक तो यहीं है। कहो मित्र अच्छे तो हो।

सिद्धार्थक ।—अहा ! मित्र समिद्धार्थक आप ही आगए। (बढ़ कर) कहो मित्र क्षेम कुशल तो है।

(दोनों गले से मिलते हैं)

समिद्धार्थक ।—भला यहां कुशल कहां कि तुम्हारे ऐसा मित्र बहुत दिन पीछे घर भी आया तो बिना मिले फिर चला गया ।

सिद्धार्थक ।—मित्र क्षमा करो। मुझ को देखते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि इस प्रिय वृत्तान्त को अभी चन्द्रमा सदृश प्रकाशित शोभा वाले परम प्रिय महाराज प्रिय दर्शन से जा कर कहो। मैं उसी समय महाराज के पास चला गया और उन से निवेदन कर के यह सब पुरस्कार पा कर तुमसे मिलने को तुम्हारे घर अभी जाता ही था।

समिद्धार्थक ।—मित्र ! जो सुनने के योग्य हो तो महाराज प्रिय दर्शन से जो प्रियवृत्तान्त कहा है वह हम भी सुनें।

सिद्धार्थक ।—मित्र ! तुम से भी कोई बात छिपी है। सुनो। आर्य चाणक्य की नीति से मोहित मति हो कर उस नष्ट मलयकेतु ने राक्षस को दूर कर दिया और चित्रवर्मादिक पांचो प्रबल राजों को मरवा डाला। यह

देखते ही और सब राजे अपने प्राण और राज्य का संशय समझ कर उस को छोड़ कर सेना सहित अपने अपने देश चले गए। जब शत्रु ऐसी निर्बल अवस्था में हुआ तो भद्रभट पुरुदत्त डिंगुरात बलगुप्त राजसेन भागुरायण रोहिताक्ष विजयवर्मा इत्यादि लोगों ने मलयकेतु को क़ैद कर लिया।

समिद्धार्थक।—मित्र लोग तो यह जानते हैं कि भद्रभट इत्यादि लोग महाराज चन्द्रश्री को छोड़ कर मलयकेतु से मिल गए। तो क्या कुकवियों के नाटक की भांति इस के मुख में और तथा निर्वहण में और बात है *।

सिद्धार्थक।—वयस्य! सुनो। जैसे दैव की गति नहीं जानी जाती वैसे ही आर्य चाणक्य की जिस नीति की भी गति नहीं जानी जाती उस को नमस्कार है।

समिद्धार्थक।—हां कहो तब क्या हुआ।

सिद्धार्थक।—तब इधर से सब सामग्री ले कर आर्य चाणक्य बाहर निकले और विपक्ष के शेष राजाओं को निःशेष कर के बर्बर लोगों की सब सामग्री लूट ली।

समिद्धार्थक।—तो वह सब अब कहां है।

सिद्धार्थक।—वह देखो।

स्रवत गंडमद गरव गज नदत मेघ अनुहार।
चाबुक भय चितवत चपल खरे अश्व बहु हार॥

समिद्धार्थक।—अच्छा यह सब जाने दो। यह कहो कि सब लोगों के सामने इतना अनादर पाकर फिर भी आर्य चाणक्य उसी मन्त्री के काम को क्यों करते हैं।

सिद्धार्थक।—मित्र तुम अब तक निरे सीधेसाधे बने हो। अरे अमात्य राक्षस भी आर्य चाणक्य की जिन चालों को नहीं समझ सकते उनको हम तुम क्या समझेंगे।

समिद्धार्थक।—वयस्य! अमात्य राक्षस अब कहां हैं।

सिद्धार्थक।—उस प्रलय कोलाहल के बढ़ने के समय मलयकेतु की सैना से निकल कर उन्दुर नामक चर के साथ कुसुमपुर ही की ओर वह आते हैं यह आर्य चाणक्य को समाचार मिला है।

---

* अर्थात् नाटक की उत्तमता यही है कि जिस वर्णन रीति और रस से आरम्भ हो वैसे ही समाप्त हो यह नहीं कि पहिले कुछ पीछे कुछ।

समिद्धार्थक।—मित्र! नन्दराज्य के फिर स्थापन की प्रतिज्ञा कर के स्वनाम तुल्य पराक्रम अमात्य राक्षस उस काम को पूरा किए बिना फिर कैसे कुसुमपुर आते हैं?

सिद्धार्थक।—हम सोचते हैं कि चन्दनदास के स्नेह से।

समिद्धार्थक।—ठीक है चन्दनदास के स्नेह ही से। किन्तु तुम सोचते हो कि चन्दनदास के प्राण बचैंगे?

सिद्धार्थक।—कहां उस दीन के प्राण बचैंगे। हमी दोनों को बध स्थान में ले जाकर उस को मारना पड़ैगा।

समिद्धार्थक।—(क्रोध से) क्या आर्य चाणक्य के पास कोई घातक नहीं है कि ऐसा नीच काम हम लोग करैं?

सिद्धार्थक।—मित्र! ऐसा कौन है जिस को इस जीव लोक में रहना हो और वह आर्य चाणक्य की आज्ञा न मानै। चलो हम लोग चंडाल का वेष कर चन्दनदास को बध स्थान में ले चलैं।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक।

६ अंक।

दृश्य। बाहरी प्रान्त में प्राचीन बारी

(फांसी हाथ में लिए हुए एक पुरुष आता है)

पुरुष।—पट गुन सुदृढ़ गुथी सुख फांसी। जय उपाय परिपाटी गांसी॥
रिपु बन्धन में पटु प्रति पोरी। जय चानक्य नीति की डोरी॥
आर्य चाणक्य के चर उन्दुर ने इसी स्थान में मुझ को अमात्य राक्षस से मिलने कहा है। (देख कर) यह अमात्य राक्षस सब अंग छिपाए हुए आते हैं। तब तक इस पुरानी बारी में छिप कर हम देखें यह कहां ठहरते हैं। (छिप कर बैठता है)।

(सब अंग छिपाए हुए राक्षस आता है)

राक्षस।—(आंखों में आंसू भर के) हाय! बड़े कष्ट की बात है।

आस्रय बिनसें और पैं, जिमि कुलटा तिय जाय।
तजि तिमि नन्दहि चंचला, चन्द्रहि लपटी धाय॥
देखादेखी प्रजहु सब, कीनो ता अनुगौन।
तजि कै निज नृप नेह सब, कियो कुसुमपुर भौन॥
छोड़ि बिफल उद्योग मैं, तजि कै कारज भार।
आप्त मित्र हू थकि रहे, सिर बिनु जिमि अहि छार॥
तजि कै निज पति भुवनपति, सुकुल जात नृपनन्द।
श्री वृषली गइ वृषल ढिग, सील त्यागि करि छन्द॥
जाइ तहां थिर ह्वै रही, निज गुन सहज बिसारि।
बस न चलत जब बामबिधि, सब कछु देत बिगारि॥
नन्द मरे सैलेस्वरहि, दैन चह्यो हम राज।
सोऊ बिनसे तब कियो, तासुत हित सो साज॥
बिगर्‍यौ तौन प्रबन्ध हू, मिट्यौ मनोरथ मूल।
दोस कहा चानक्य को, दैवहि भो प्रतिकूल॥

वाहरे म्लेच्छ मलयकेतु की मूर्खता! जिस ने इतना नहीं समझा कि—

मरे स्वामिहू नहिं तज्यौ, जिन निज नृप अनुराग।
लोभ छाड़ि दै प्रान जिन, करी सत्रु सों लाग॥
सोई राच्छस सत्रु सों, मिलि है? यह अन्धेर।
इतनो सूझ्यौ वाहि नहिं, दई दैव मति फेर॥

सो अब भी शत्रु के हाथ में पड़ के राक्षस बन में चला जायगा पर चन्द्रगुप्त से संधि न करैगा। लोग झूठा कहैं यह अयश हो पर शत्रु की बात कौन सहैगा। (चारो ओर देख कर) हा! इसी प्रान्त में देवनन्द रथ पर चढ़ कर फिरने आते थे।

इतहि देव अभ्यास हित , सर सजि धनु सन्धानि ।
रचत रहे ध्रुव चित्र सम , रथ सुचक्र परिखानि ॥
जहं नृपगन संकित रहे , इत उत थमे लखात ।
सोई भुव ऊजर भई , दृगन लखी नहिं जात ॥

हाय! यह मन्द भाग्य अब कहां जाय? (चारो ओर देख कर) चलो इस पुरानी बारी में कुछ देर ठहर कर मित्र चन्दनदास का कुछ समाचार लें। (घूम कर आप ही आप) अहा! पुरुषों के भाग्य से उन्नति अवनति की भी क्या क्या गति होती है कोई नहीं जानता।

जिमि नव ससि कहं सब लखत , निज निज करहि उठाय ।
तिमि नृप सब हम को रहे , लखत अनन्द बढ़ाय ॥
चाहत हे नृपगन सबै , जासु कृपा दृग कोर ।
सो हम इत संकित चहत , मानहुं कोऊ चोर ॥

वा जिस के प्रसाद से यह सब था जब वही नहीं है तो यह होईगा। (देखकर) यह पुराना उद्यान कैसा भयानक हो रहा है।

नसे विपुल नृप कुल सरिस , बड़े बड़े गृह जाल ।
मित्र नास सों साधुजन , हिय सम सूखे ताल ॥
तरुवर भे फलहीन जिमि , बिधि बिगरे सब रीति ।
तृन सों लोपी भूमि जिमि , मति लहि मूढ़ कुनीति ॥
तीछन परसु प्रहार सों , कटे तरोवर गात ।
रोअत मिलि पिंडुक संग , ताके घाव लखात* ।
दुखी जानि निज मित्र कहं , अहि मनु लेत उसास ।
निज केंचुल मिस धरत हैं , फाहा तरु ब्रन पास ।
तरु गन को सूख्यो हियो , छिदे कीट सों गात ।
दुखी पत्र फल छांह बिनु , मनु समान सब जात ॥

* वृक्ष के खोंड़रे में से जो शब्द निकलता है वही मानों वृक्ष रोते हैं और उन वृक्षोंपर पेंड़की बोलती हैं वह मानो रोने में वृक्षों का साथ देती हैं।

तो तब तक हम इस सिला पर, जो भाग्य हीनों को सुलभ है लेटें। (बैठ कर और कान देकर सुन कर) अरे! यह शंख डंके से मिला हुआ नान्दी शब्द कहां हो रहा है।

अति ही तीखन होन सों , फोरत स्रोता कान ।
जब न समायो घरन में , तब द्रुत कियो पयान ॥
संख पटह धुनि सों मिल्यौ , भारी मंगल नाद ।
निकस्यौ मनहु दिगन्त की , दूरी देखन स्वाद ॥

(कुछ सोच कर) हां जाना। यह मलयकेतु के पकड़ जाने पर राजकुल *
(रुक कर) मौर्यकुल को आनन्द देने को हो रहा है।
(आंखों में आंसू भर कर) हाय! बड़े दुःख की बात है।

मेरे बिनु अब जीति दल , शत्रु पाइ बल घोर ।
मोहि सुनावन हेत ही , कीन्हो शब्द कठोर ॥

पुरुष।—अब तो यह बैठे हैं तो अब आर्य चाणक्य की आज्ञा पूरी करें। [राक्षस की ओर न देख कर अपने गले में फांसी लगाना चाहता है]।

राक्षस।—[देख कर आप ही आप] अरे यह फांसी क्यों लगाता है निश्चय कोई हमारा सा दुखिया है। जो होय पूछें तो सही। [प्रकाश] भद्र यह क्या करते हो।

पुरुष।—[रोकर] मित्रों के दुःख से दुखी हो कर हमारे ऐसे मन्दभाग्यों को जो कर्तव्य है।

राक्षस।—(आप ही आप) पहलेही कहा था कोई हमारा सा दुखिया है। (प्रकाश) भद्र † जो अति गुप्त वा किसी विशेष कार्य की बात न हो तो हम से कहो कि तुम क्यों प्राण त्याग करते हो।

पुरुष।—आर्य! न तो गुप्त ही है न कोई बड़े काम की बात है परन्तु मित्र के दुःख से मैं अब क्षण भर भी ठहर नहीं सकता।

राक्षस।—(आप ही आप दुःख से) मित्र की बिपत्ति में हम पराए लोगों की भांति उदासीन हो कर जो देर करते हैं मानों उस में शीघ्रता करने की

---

* जहां ऐसी उक्ति होती है वहां यह ध्वनि है कि मानो पूर्व में जो कहा था वह ठीक है रुक कर आग्रह से फिर कुछ और कह दिया।

† यहां संस्कृत में व्यसनसब्रह्मचारिन् सम्बोधन है।

यह अपना दुःख करने के बहाने शोभा देता है। (प्रकाश) भद्र जो रहस्य नहीं है तो हम सुना चाहते हैं कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है।

पुरुष।—आप को इस में बड़ा ही हठ है तो कहना पड़ा। इस नगर में जिष्णुदास नामक एक महाजन है।

राक्षस।—(आप ही आप) वह तो चन्दनदास का बड़ा मित्र है।

पुरुष।—वह हमारा प्यारा मित्र है।

राक्षस।—(आप ही आप) कहता है कि वह हमारा प्यारा मित्र है। इस अति निकट सम्बन्ध से इम को चन्दनदास का वृत्तान्त ज्ञात होगा।

पुरुष।—(रोकर) सो दीन जनों को सब धन दे कर वह अब अग्नि प्रवेश करने जाता है। यह सुन कर हम यहां आए हैं कि इस दुःख वार्त्ता सुनने के पूर्व ही अपना प्राण दे दें।

राक्षस।—भद्र तुम्हारे मित्र के अग्नि प्रवेश का कारण क्या है!

के तेहि रोग असाध्य भयो कोउ जाको न औषध नाहिं निदान है।

पुरुष।—नहीं आर्य!

राक्षस।—कै विष अग्निहुसों वढ़ि कै नृप कोप महा फांसि तरगत प्रान है।

पुरुष।—रामराम! चन्द्रगुप्त के राज्य में लोगों को प्राण हिंसा का भय कहां!

राक्षस।—कै कोउ सुन्दरीपै जिय देत लग्यो हिय मांहि वियोग को बान है।

पुरुष।—रामराम! महाजन लोगों को यह चाल नहीं विशेष कर के साधु जिष्णुदास को।

राक्षस। तो कह मित्र हि को दुःख वाहूकें नास को हेतु तुम्हारे समान है।

पुरुष। हां आर्य।

राक्षस।—[घबड़ा कर आप ही आप] अरे इस के मित्र का प्रिय मित्र तो चन्दनदास ही है और यह कहता है कि सुहृद् विनाश ही उसके विनाश का हेतु है इस से मित्र के स्नेह से मेरा चित्त बहुत ही घबड़ाता है। [प्रकाश] भद्र! तुम्हारे मित्र का चरित्र हम सविस्तर सुना चाहते हैं।

पुरुष।—आर्य! अब मैं किसी प्रकार से मरने में विलम्ब नहीं कर सकता।

राक्षस।—यह वृत्तान्त तो अवश्य सुनने के योग्य है इस से कहो।

पुरुष।—क्या करें। आप ऐसा हठ करते हैं तो सुनिए।

राक्षस।—हां जी लगा कर सुनते हैं कहो।

पुरुष।—आपने सुना ही होगा कि इस नगर में प्रसिद्ध जौहरी सेठ चन्दनदास हैं।

राक्षस।—[दुःख से आप ही आप] दैव ने हमारे विनाश का द्वार अब खोल दिया। हृदय! स्थिर हो अभी न जाने क्या क्या कष्ट तुम को सुनना होगा। (प्रकाश) भद्र हमने भी सुना है कि वह साधु अत्यन्त मित्र वत्सल है।

पुरुष।—वह जिष्णुदास के अत्यन्त मित्र हैं।

राक्षस।—[आप ही आप] यह सब हृदय के हेतु शोक का वज्रपात है। [प्रकाश] हां आगे।

पुरुष।—सो जिष्णुदास ने मित्र की भांति चन्द्रगुप्त से बहुत विनय किया।

राक्षस। क्या क्या?

पुरुष।—कि देव! हमारे घर में जो कुछ कुटुम्बपालन का द्रव्य है आप सब ले लें पर हमारे मित्र चन्दनदास को छोड़ दें।

राक्षस।—[आप ही आप] वाह जिष्णुदास तुम धन्य हो! तुम ने मित्र स्नेह का निर्बाह किया।

जा धन के हित नारी तजैं पति पूत तजैं पितु सील हि खोई
भाई सों भाई लरैं रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजैं दुख जोई॥
ता धन कों बनियां ह्वै गिन्यौ न दियो दुख मीत सों आरत होई।
स्वारथ अर्थ तुम्हारोई है तुमरे सम और न या जग कोई॥

(प्रकाश) इस बात पर मौर्य ने क्या कहा?

पुरुष।—आर्य! इस पर चन्द्रगुप्त ने उस से कहा कि जिष्णुदास! हम ने धन के हेतु चन्दनदास को नहीं दण्ड दिया है। इस ने अमात्य राक्षस का कुटुम्ब अपने घर में छिपाया और बहुत मांगने पर भी न दिया। अब भी जो यह दे दे तो छूट जाय नहीं तो इस को प्राण दंड होगा तभी हमारा क्रोध शान्त होगा और दूसरे लोगों को भी इससे डर होगी। यह कर उस को बध्य स्थान में भेज दिया। जिष्णुदास ने कहा कि हम कान से अपने मित्र का अमङ्गल सुनने के पहिले मर जांय तो अच्छी बात है और अग्नि में प्रवेश करने को बन में चले गए। हम ने भी इसी हेतु की उन का मरण न सुनैं यह निश्चय किया कि फांसी लगा कर मर जांय और इसी हेतु यहां आए हैं।

राक्षस।—(घबड़ा कर) अभी चन्दनदास को मारा तो नहीं?

पुरुष।—आर्य! अभी नहीं मारा है बारंबार अब भी उस से अमात्य राक्षस

का कुटुम्ब मांगते हैं और वह मित्र वत्सलता से नहीं देते इसी में इतना बिलम्ब हुआ।

राक्षस।—(सहर्ष आप ही आप) वाह मित्र चन्दनदास वाह! धन्य धन्य!

मित्र परीच्छहु में कियो , सरनागत प्रतिपाल।
निरमल जस सिवि * सो लियो , तुम या काल कराल॥

(प्रकाश) भद्र! तुम शीघ्र जा कर जिष्णुदास को जलने से रोको हम जाकर अभी चन्दनदास को छुड़ाते हैं।

पुरुष।—आर्य! आप किस उपाय से चन्दनदास को छुड़ाइएगा।

राक्षस।—(आतंक से खड्ग मियान से खींच कर) इस दुःख में एकान्त मित्र निष्कृप कृपाण से।

समर साध तन पुलकित नित साथी मम कर को।
रन महं बारहिं बार परिछ्यो जिन बल पर को॥
विगत जलद नभ नील खड्ग यह रोस बढ़ावत।
मीत कष्ट सों दुखिहु मोहि रन हित उमगावत॥

पुरुष।—सेठ चन्दनदास के प्राण बचने का उपाय मैंने सुना किन्तु ऐसे टेढ़े

---

* शिवि वे कहे शरणागत कपोत के हेतु अपना शरीर दे दिया था।

राजा सिवि जब ९२ यज्ञ कर चुके और आगे फिर प्रारंभ किया तब इन्द्र को भय हुई कि अब मेरा पद लेने में आठ यज्ञ बाकी है उस ने अग्नि को कपोत बनाया और आप बाज बन उन के मारने को चला तब वह भागा हुआ राजा की शरण में गया राजा ने उस का वचन सुन बाज को देख यज्ञशाला में अपनी गोदी में छिपा लिया और बाज को निवारण किया। बाज बोला कि महाराज आप यहां यह क्या अनर्थ करते हैं कि मेरा आहार छीन लिया मैं भूख से शरीर को छोड़ आप को पापभागी करूंगा तब राजा ने कहा कि इसे तो नहीं देंगे इस के पलटे में जो मांगेगा सो देंगे पश्चात् इस प्रति उत्तर में यह बात ठहरी कि राजा कबूतर के तुल्य तौल के शरीर का मांस दे तब हम कबूतर को छोड़ देवें इस बात पर राजा प्रसन्न हो तुला पर एक ओर कपोत को बैठाय दूसरी ओर अपनी शरीर का मांस काट कर चढ़ाने लगे परन्तु सब शरीर का मांस काट काट के चढ़ाय दिया कबूतर के समान नहीं हुआ तब राजा ने गले पर खड्ग चलाया त्योंहीं विष्णु ने हाथ पकड़ आपने लोक को भेज दिया।

समय में इस का परिणाम क्या होगा वह मैं नहीं कह सकता (राक्षस को देख कर पैर पर गिरता है) आर्य ? क्या सुगृहीत नामधेय अमात्य राक्षस आप ही हैं! यह मेरा संदेह आप दूर कीजिये।

राक्षस।—भद्र! भर्त्तृ कुल विनाश से दुखी और मित्र के नाश का कारण यथार्थ नामा अनार्य राक्षस मैं ही हूं।

पुरुष।—(फिर पैर पर गिरता है) धन्य हैं! बड़ा ही आनन्द हुआ। आपने हम को आज कृतकृत्य किया।

राक्षस।—भद्र! उठो। देर करने की कोई अवश्यकता नहीं। जिष्णुदास से कहो कि राक्षस चन्दनदास को अभी छुड़ाता है।

(खड्ग खींचे हुए। 'समर साध' इत्यादि पढ़ता हुआ इधर उधर टहलता है)

पुरुष।—(पैर पर गिर कर) अमात्य चरण प्रसन्न हों। मैं यह बिनती करता हूं कि चन्द्रगुप्त दुष्ट ने पहले शकटदास के बध की आज्ञा दी थी। फिर न जाने कौन शकटदास को छुड़ा कर उसको कहीं परदेस में भगा लेगया। आर्य शकटदास के बध में धोखा खाने से चन्द्रगुप्त ने क्रोध कर के प्रमादी समझ कर उन बधिकों ही को मार डाला। तब से बधिक जो किसी को बध्य स्थान में ले जाते हैं और मार्ग में किसी को शस्त्र खींचे हुए देखते हैं तो छुड़ा लेजाने के भय से अपराधी को बीच ही में तुरंत मार डालते हैं। इस से शस्त्र खींचे हुए आप के वहां जाने से चन्दनदास की मृत्यु, में और भी शीघ्रता होगी (जाता है)।

राक्षस।—(आप ही आप) उस चाणक्य बटु का नीति मार्ग कुछ समझ नहीं पड़ता। क्योंकि।

सकट बच्यौ जो ता कहें　,　तो क्यौं घातक घात।
जाल भयो का खेल मैं　,　कछु समझ्यौ नहिं जात॥

(सोच कर) नहिं शस्त्र को यह काल यासों मीत जीवन जाइ है।
जौं नीति सोचैं या समय तो व्यर्थ समय नसाइ है॥
चुप रहनहु नहिं जोग जब मम हित बिपति चन्दन पर्‌यौ।
तासों बचावन प्रियहि अब हम देह निज विक्रय कर्‌यौ॥

(तलवार फेंक कर जाता है)

छठां अंक समाप्त हुआ।

सप्तम अंक।

स्थान, सूली देने का मसान।

(पहिला चांडाल आता है)

चांडाल।—हटो लोगो हटो दूर हो भाइयो दूर हो। जो अपना प्रान धन और कुल बचाना हो तो दूर हो। राजा का विरोध यत्न पूर्वक छोड़ो।

करि कै पथ्य विरोध इक , रोगी त्यागत प्रान ।
पै विरोध नृप सों किए , नसत सकुल नर जान ॥

जो न मानो तो इस राजा के विरोधी को देखो जो स्त्री पुत्र समेत यहां सूली देने को लाया जाता है (ऊपर देख कर) क्या कहा ? कि इस चन्दनदास के छूटने का कुछ उपाय भी है ? भला इस बिचारे के छूटने का कौन उपाय है ? पर हां जो यह मंत्री राक्षस का कुटुम्ब दे दे तो छूट जाय (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा ? कि यह शरणागत वत्सल प्राण देगा पर यह बुरा कर्म्म न करैगा ? तो फिर इस्की बुरी गति होगी क्योंकि बचने का तो वही एक उपाय है (कंधे पर सूली रक्खे मृत्यु का कपड़ा पहिने चन्दनदास उसकी स्त्री और पुत्र और दूसरा चांडाल आते हैं)

स्त्री।—हाय हाय ! जो हमलोग नित्य अपनी बात बिगड़ने के डर से फूंक फूंक कर पैर रखते थे उन्ही हम लोगों की चोरों की भांति मृत्यु होती है। काल देवता को नमस्कार है जिसको मित्र उदासीन सभी एकसे हैं क्योंकि।

छोड़ि मांस भख मरन भय , जियहिं खाइ तृन घास।
तिन गरीब मृग को करहिं , निरदय व्याधा नास ॥

[चारो ओर देख कर]

अरे भाई जिष्णुदास ! मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते।
हाय ऐसे समय मैं कौन ठहर सकता है

चं॰ दा॰ (आंसूभर कर) हाय यह मेरे सब मित्र बिचारे कुछ नहीं कर सकते केवल रोते हैं और अपने को अकर्मण्य समझ शोक से सूखा सूखा मुंह किए आंसू भरी आंखों से एक टक मेरीही ओर देखते चले आते हैं।

दोनो चांडाल।—अजी चन्दनदास अब तुम फांसी के स्थान पर आ चुके इस्से कुटुम्ब को विदा करो।

चं॰दा॰।—(स्त्री से) अब तुम पुत्र को लेकर जाओ क्योंकि आगे तुम्हारे जाने की भूमि नहीं है।

स्त्री।—ऐसे समय में तो हम लोगों को विदा करना उचितही है क्योंकि आप परलोक में जाते हैं कुछ परदेस नहीं जाते (रोती है)

चंदा०।—सुनो मैं कुछ अपने दोष से नहीं मारा जाता एक मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं तो इस हर्ष के स्थान पर क्यों रोती है।

स्त्री।—नाथ जो यह बात है तो कुटुम्ब को क्यों विदा करते हो।

चंदा०।—तो फिर तुम क्या कहती हो?

स्त्री।—(आंसू भर कर) नाथ कृपा करके मुझे भी साथ ले चलो।

चंदा०।—हा! यह तुम कैसी बात कहती हो! अरे तुम इस बालक का मुंह देखो और इस की रक्षा करो क्योंकि यह बिचारा कुछ भी लोक व्यवहार नहीं जानता। यह किसका मुंह देख के जिएगा।

स्त्री।—इस्की रक्षा कुल देवी करैंगी। बेटा! अब पिता फिर न मिलैंगे इस्से मिलकर प्रणाम करले।

बालक।—(पैरों पर गिर के) पिता मैं आप के बिना क्या करूंगा।

चंदा०।—बेटा जहां चाणक्य न हो वहां बसना।

दोनों चांडाल।—(सूली खड़ी कर के (अजी चन्दनदास! देखो सूली खड़ी हुई अब सावधान हो जाओ।

स्त्री।—[रोकर] लोगो बचाओ अरे कोई बचाओ।

चंदा०।—भाइयो तनिक ठहरो [स्त्री से] अरे अब तुम रो रो कर क्या नन्दों को स्वर्ग से बुलालोगी। अब वे लोग यहां नहीं हैं जो स्त्रियों पर सर्व्वदा दया रखते थे।

१ चांडाल।—अरे वेणुवेत्रक! पकड़ इस चन्दनदास को घर वाले आप ही रो पीट कर चले जायंगे।

२ चांडाल!—अच्छा वज्रलोमक पकड़ता हूं।

चंदा०।—भाइयो तनिक ठहरो मैं अपने लड़के से तो मिल लूं (लड़के को गले लगा कर और मांथा सूंघ कर) बेटा! मरना तो था ही पर एक मित्र के हेतु मरते हैं इस्से सोच मत कर।

पुरुष।—पिता क्या हमारे कुल के लोग ऐसा ही करते आए हैं? (पैर पर गिर पड़ता है)।

२ चांडाल—पकड़ रे वज्रलोमक (दोनों चन्दनदास को पकड़ते हैं)

स्त्री।—लोगो बचाओ रे बचाओ।

(वेग से राक्षस आता है)

राक्षस।—डरो मत डरो मत। सुनो सुनो सेनापति! चन्दनदास को मत मारना क्योंकि!

नसत स्वामि कुल जिन लख्यो , निज चख प्रभु समान ।
मित्र दुःख हू में धख्यो , निलज छोड़ जिन प्रान ॥
तुम सों हारि बिगारि सब , कढ़ी न जाकी सांस ।
ता राक्षस के कंठ में , डारहु यह जम फांस ॥

च॰दा॰।—(देख कर और आंखों में आंसू भर कर) अमात्य! यह क्या करते हो।

राक्षस।—मित्र तुम्हारे सच्चरित्र का एक छोटा सा अनुकरण।

अमात्य।—मेरा किया तो सब निष्फल हो गया पर आप ने ऐसी समय यह साहस अनुचित किया।

राक्षस।—मित्र चंदनदास! उराहना मत दो सभी स्वारथी हैं (चांडाल से) अजी तुम उस दुष्ट चाणक्य से कहो।

दोनों चांडाल — क्या कहैं।

राक्षस।—जिन कलि में हू मित्र हित , तृन सम छोड़े प्रान ।
जाके जस रबि सामुहे , शिवि जस दीप समान ॥
जाकी अति निर्म्मल चरित , दया आदि नित जानि ।
बौद्धहु सब लज्जित भए , परम शुद्ध जेहि मानि ॥
ता पूजा के पात्र कों , मारत तू धरि पाप—।
जाके हितु सो शत्रु तुव , आयो इत मैं आप ॥

१ चांडाल।—अरे वेणुवेत्रक तू चंदनदास को पकड़ कर इस मसान के पेड़ की छाया में बैठ तब से मन्त्री चाणक्य को मैं समाचार दूं कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

२ चांडाल।—अच्छा रे वज्रलोमक (चंदनदास, स्त्री बालक और सूली को ले कर जाता है)।

१ चांडाल।—(राक्षस को लेकर घूम कर) अरे यहां पर कौन है? नन्द कुल सेना संचय के चूरण करने वाले वज्र से वैसे ही मौर्य्य कुल में लक्ष्मी और धर्म्म स्थापन करने वाले आर्य्य चाणक्य से कहो।

राक्षस।—(आप ही आप) हाय यह भी राक्षस को सुनना लिखा था।

१ चांडाल।—कि आप की नीति ने जिस्की बुद्धि को घेर लिआ है वह अ-
मात्य राक्षस पकड़ा गया।

(परदे में सब शरीर छिपाए केवल मुख खोले चाणक्य आता है)

चाणक्य।—अरे कहो कहो।

किन जिन बसनहि में धरी, कठिन अगिनि की ज्वाल ?
रोकी किन गति बायु की, डोरिन ही के जाल ?
किन गजपति मर्द्दन प्रबल, सिंह पींजरा दीन ?
किन केवल निज बाहु बल, पार समुद्रहि कीन ?

१ चांडाल।—परम नीति निपुण आप ही ने तो।

चाणक्य।—अजी ऐसा मत कहो बरन नंद कुल द्वेषी दैव ने यह कहो।

राक्षस।—(देख कर आप ही आप) अरे क्या यही दुरात्मा वा महात्मा
कौटिल्य है।

सागर जिमि बहु रत्न मय, तिमि सब गुण की खानि।
तोष होत नहिं देखि गुण, बैरी हू निज जानि॥

चाणक्य।—(देख कर) अरे यही अमात्य राक्षस है जिस महात्मा ने।

बहु दुख सों सोचत सदा, जागत रैन बिहाय।
मेरी मति अरु चन्द्र की, सैनहि दई थकाय॥

(परदे से बाहर निकल कर) अजी अजी अमात्य राक्षस ! मैं बिष्णुगुप्त
आप को दण्डवत करता हूं। (पैर छूता है)

राक्षस।—(आप ही आप) अब मुझे अमात्य कहना तो केवल मुहं चिढ़ा-
ना है (प्रगट) अजी 'बिष्णुगुप्त' मैं चांडालों से छू गया हूं इस्से मुझे
मत छूओ।

चाणक्य।—अमात्य राक्षस ! वह श्वपाक नहीं है वह आप का जाना सुना
सिद्धार्थक नामा राजपुरुष है और दूसरा भी समिद्धार्थक नामा राजपुरुष
ही है और इन्ही दोनों द्वारा विश्वास उत्पन्न करके उस दिन शकटदास
को धोखा दे कर मैंने वह पत्र लिखवाया था।

राक्षस।—(आपही आप) अहा बहुत अच्छा हुआ कि मेरा शकटदास पर
से संदेह दूर हो गया।

चाणक्य।—बहुत कहां तक कहूं—

वे सब भद्र भटादि वह, सिद्धार्थक वह लेख।

वह भदन्त वह भूपनहु , वह नट आरत भेख ॥
वह दुख चन्दनदास को , जो कछु दियो दिखाय ।
सो सब मम (लज्जा से कुछ सकुच कर)
सो सब राजा चन्द्र को , तुम सों मिलन उपाय ।

देखिए यह राजा भी आप से मिलने आपही आते हैं।

राक्षस (आप ही आप) अब क्या करें ? (प्रगट) हां मैं देख रहा हूं।

(सेवकों के संग राजा आता है)

राजा (आप ही आप) गुरू जी ने बिना युद्ध ही दुर्जय शत्रु का कुल जीत लिया इस में कोई संदेह नहीं. मैं तो बड़ा लज्जित हो रहा हूं क्योंकि—

ह्वै बिनु काम लजाइ करि , नीचो मुख भरि सोक ।
सोवत सदा निषङ्ग में , मम बानन के थोक ॥
सोवहिं धनुष उतारि हम , जदपि सकहिं जग जीति ।
जा गुरु के जागत सदा , नीति निपुण गत भीति ॥

(चाणक्य के पास जा कर) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

चाणक्य।—वृषल ! अब सब असीस सच्ची हुई इससे इन पूज्य अमात्य राक्षस को नमस्कार करो यह तुम्हारे पिता के सब मन्त्रिओं में मुख्य हैं।

राक्षस।—(आप ही आप) लगाया न इस ने सम्बन्ध ।

राजा।—(राक्षस के पास जा कर) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है ।

राक्षस।—(देख कर आप ही आप) अहा यही चन्द्रगुप्त है।

होनहार जाको उदय , बालपने हीं जोइ ।
राज लच्छी जिन बाल गज , जूथाधिप सम होइ ॥

(प्रगट) महाराज जय होय ।

राजा।—आर्य्य !

तुमरे आछत बहुरि गुरु , जागत नीति प्रवीन ।
कहहु कहा या जगत में , जाहि न जय हम कौन ॥

राक्षस।—(आप ही आप) देखो यह चाणक्य का सिखाया पढ़ाया मुझ से कैसी सेवकों की सी बात करता है। नहीं २ यह आप ही बिनीत है। अहा देखो चन्द्रगुप्त पर डाह के बदले उलटा अनुराग होता है। चाणक्य सब स्थान पर यशस्वी है, क्योंकि—

पाइ स्वामि सतपात्र जौ , मन्त्री मूरख होइ ।

तौहू पावै लाभ जस , इत तौ पण्डित दोइ ॥
मूरख स्वामी लहि गिरै , चतुर सचिव हूं हारि ।
नदी तीर तरु जिमि नसत , जीरन ह्वै लहि बारि ॥

चाणक्य।—क्यों अमात्य राक्षस ! आप क्या चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हैं।

राक्षस।—इस में क्या सन्देह है।

चाणक्य।—पर अमात्य आप शस्त्र ग्रहण नहीं करते इस्से संदेह होता है कि आप ने अभी राजा पर अनुग्रह नहीं किया इस्से जो सच्च ही चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हो तो यह शस्त्र लीजिए।

राक्षस।—सुनो विष्णुगुप्त ऐसा कभी नहीं हो सकता क्योंकि हम लोग उस योग्य नहीं विशेष कर के जब तक तुम शस्त्र ग्रहण किए हो तब तक हमारा शस्त्र ग्रहण करने का क्या काम है।

चाणक्य।—भला अमात्य आप ने यह कहां से निकाला कि हम योग्य हैं और आप अयोग्य हैं क्योंकि देखिए—

रहत लगामहिं कसे अश्व की पीठ न छोड़त ।
खान पान असनान भोग तजि सुख नहिं मोड़त ॥
छूटे सब सुख साज नींद नहिं आवत नयनन ।
निसि दिन चौंकत रहत बीर सब भयधरि निज मन ॥
यह हौदन सों सब कन कस्यौ नृप गजगन अवरेखिए ।
रिपुदर्प्प दूरकर अति प्रबल निज महात्म बलदेखिए ॥

वा इन बातों से क्या आप के शस्त्र ग्रहण किए बिना तो चन्दनदास बचता भी नहीं।

राक्षस।—(आप ही आप)

नन्द नेह छूट्यौ नहीं , दास भये अरि साथ ।
ते तरु कैसे काटि हैं , जे पाले निज हाथ ॥
कैसे करिहैं मित्र पैं , हम निज कर सों घात ।
अहो भाग्य गति अति प्रबल , मोहि कछु जानि न जात ॥

(प्रकाश) अच्छा विष्णुगुप्त ! मंगाओ खड्ग "नमस्सर्व्व कार्य्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत् स्नेहाय" देखो मैं उपस्थित हूं।

चाणक्य।—(राक्षस को खड्ग दे कर हर्ष से) राजन् वृषल ! बधाई है बधाई

है। अब अमात्य राक्षस ने तुम पर अनुग्रह किया अब तुम्हारी दिन दिन बढ़ती ही है।

राजा।—यह सब आप की कृपा का फल है।

(पुरुष आता है)

पुरुष।—जय हो महाराज की जय हो। महाराज भद्रभट भागुरायणादिक मलयकेतु को हाथ पैर बांध कर लाए हैं और द्वार पर खड़े हैं; इस्में महाराज की क्या आज्ञा होती है।

चाणक्य।—हां सुना। अजी अमात्य राक्षस से निवेदन करो अब सब काम वही करेंगे।

राक्षस।—(आप ही आप) कैसा अपने वश में कर के मुझी से कहलाता है। क्या करें? (प्रकाश) महाराज! चन्द्रगुप्त! यह तो आप जानते ही हैं कि हम लोगों का मलयकेतु का कुछ दिन तक सम्बन्ध रहा है। इस्से उस के प्रान तो बचाने ही चाहिए।

राजा।—(चाणक्य का मुंह देखता है)।

चाणक्य।—महाराज अमात्य राक्षस की पहिली बात तो सर्व्वथा माननी ही चाहिए (पुरुष से) अजी तुम भद्र भटादिकों से कह दो कि अमात्य राक्षस के कहने से महाराज चन्द्रगुप्त मलयकेतु को उस के पिता का राज्य देते हैं इस्से तुम लोग संग जा कर उस को राज पर बैठा आओ।

पुरुष।—जो आज्ञा।

चाणक्य।—अजी अभी ठहरो सुनो विजयपाल दुर्गपाल से यह कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र ग्रहण से प्रसन्न हो कर महाराज चन्द्रगुप्त यह आज्ञा करते हैं कि चन्दनदास को सब नगरों का जगत सेठ कर दो।

पुरुष।—जो आज्ञा (जाता है)

चाणक्य।—चन्द्रगुप्त अब और मैं क्या तुम्हारा प्रिय करूं।

राजा।—इस्से बढ़ कर और क्या भला होगा।

मैत्री राक्षस सों भई, मिल्यो अकंटक राज।
नन्द नसे सब अब कहा, यासों बढ़ि सुख साज॥

चाणक्य।—(कंचुकी से) विजये! दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि अमात्य राक्षस के मिल से प्रसन्न हो कर महाराज चन्द्रगुप्त आज्ञा करते हैं कि

हाथी घोड़ों को छोड़ कर और सब बंधुओं का बन्धन छोड़ दो वा जब अमात्य राक्षस मंत्री हुए तब अब हाथी घोड़ों का क्या सोच है इस्से।

छोड़ौ सब गज तुरंग अब , कछु मत राखौ बांधि।
केवल हम बांधत शिखा , निज परतिज्ञा साधि॥

[शिखा बांधता है]

कंचुकी।—जो आज्ञा [जाता है]।

चाणक्य।—अमात्य राक्षस! मैं इस्से बढ़ कर और कुछ भी आप का प्रिय कर सकता हूं।

राक्षस।—इस्से बढ़ कर और हमारा क्या प्रिय होगा पर जो इतने पर भी सन्तोष न हो तो यह आशीर्व्वाद सत्य हो।

" वाराही मात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपा।
यस्यप्राग्दन्तकोटिम्प्रलयपरिगताशिश्रिये भूत एष॥
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवरं राज मूर्त्तेः।
सश्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतुमहीम्पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः॥ "

[सब जाते हैं]

सप्तम अंक समाप्त हुआ

इति।

APPENDIX A.

उपसंहार (अक्षर) क।

इस नाटक में आदि अन्त तथा अंकों के विश्राम स्थल में रंगशाला में ये गीत गाने चाहिएं. यथा ॥

सब के पूर्व मंगलाचरण में।

(ध्रुवपद चौताला)

जय जय जगदीस राम स्याम धाम पूर्ण काम आनन्द घन ब्रह्म विष्णु सत चित सुखकारी। कंस रावनादि काल सतत प्रनत भक्त पाल सोभित गल मुक्तमाल दीनतापहारी। प्रेम भरन पाप हरन असरन जन सरन चरन सुखहि करन दुखहि दरन वृन्दावनचारी। रमावास जग निवास रास रमन समन त्रास विनवत हरिचन्द दास जय जय गिरिधारी ॥ १ ॥

(प्रस्तावना के अंत में प्रथम अंक के आरंभ में)

(चाल लखनऊ की ठुमरी शाहजादे आलम तेरे लिये, इस चाल की)

जिन के हित कारक पण्डित हैं तिन कों कहा सत्रुन को डर है। समुझैं जग में सब नीतिन्ह जो तिन्हैं दुर्ग विदेस मनो घर है। जिन मित्रता राखी है लायक सों तिनको तिनका हू महा सर है। जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं तिन की जय ही सब ही थर है ॥ २ ॥

(प्रथम अंक की समाप्ति और दूसरे अंक के प्रारम्भ में)

जग में घर की फूट बुरी। घर के फूटहि सों बिनसाई सुवरन लंकपुरी ॥ फूटहि सों सब कौरव नासे भारत जुद्ध भयो। जाको घाटो या भारत में अब लौं नहिं पुजयो ॥ फूटहि सों जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होइ गुलाम। फूट ही सों नवनंद बिनासे गयो मगध को राज। चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सह साज ॥ जो जग में धनमान और बल अपुनो राखन होय। तो अपने घर में भूलेहू फूट करौ मति कोय ॥ ३ ॥

(दूसरे अंक की समाप्ति तीसरे अंक के आरम्भ में)

जग में तेई चतुर कहावैं। जे सब विधि अपने कारज कों नीको भांति

बनावैं ॥ पच्यौ लिख्यो किन छोड़ जुपै नहिं कारज साधन जानै। ताही कों मूरख या जग मैं सब कोऊ अनुमानै ॥ छल मैं पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहु गायो। पै अरि सों छल किए दोष नहीं मुनियन यहै बतायो ॥४॥

(तीसरे अंक की समाप्ति और चतुर्थ अंक के आरंभ में)

ठुमरी—तिन को न कछू कबहूं बिगरै, गुरु लोगन को कहनो जे करैं। जिन कों गुर पन्थ दिखावत हैं ते कुपन्थ पैं भूलि न पांव धरैं ॥ जिन कौं गुरु रच्छत आप रहैं ते बिगारे न वैरिन के बिगरैं ॥ गुरु को उपदेस सुनौ सब ही जग कारज जासों,सबै समरैं ॥ ५ ॥

(चतुर्थ अंक की समाप्ति और पंचम अंक के आरम्भ में) (पूरबी)

करि मूरख मित्र मिताई, फिर पछितैहो रे भाई। अन्त दगा खैहो सिर धुनिहो रहिहो सबैं गवाई ॥ मूरख जो कछु हितहु करै तो तामैं अन्त बुराई। उलटो उलटो काज करत सब दैहै अन्त नसाई ॥ लाख करौ हित मूरख सों पै ताहि न कछु समझाई। अन्त बुराई सिर पैं ऐहै रहि जैहो मुंह बाई ॥ फिर पछितैहो रे भाई ॥ ६ ॥

(पंचम अंक की समाप्ति और षष्ठ अंक के आरम्भ में) (काफी ताल होली का)

छलियन सो रहो सावधान नहिं तो पछताओगे। इन की बातन मैं फंसि रहिहो सबहि गंवाओगे। स्वारथ लोभी जन सों आखिर दगा उठाओगे। तब सुख पैहो जब सांचन सों नेह बढ़ाओगे ॥ छलियन सो. ॥ ७ ॥

(छठें अंक की समाप्ति और सातएं अंक के आरम्भ में)

('जिन के मन में सिय राम बसैं' इस धुन को)

जग सूरज चंद टरैं तो टरैं पै न सज्जन नेहु कबौं बिचलै। धन सम्पति सर्बस गेह नसौ नहिं प्रेम की मेड़ सों एड़ टलै। सतवादिन कों तिनका सम प्रान रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै। निज मीत की प्रीत प्रतीत रहौ इक और सबै जग जाउ भलै ॥ ८ ॥

(अन्त में गाने को) (बिहाग) (श्लोक के अर्थ अनुसार)

हरौ हरि रूप सबै जग बाधा। जा सरूप सों धरनि उधारी निज जन कारज साधा ॥ जिमि तव दाढ़ अग्र लै राखी महि हति असुर गिरायो। कनकदृष्टि म्लेच्छन हूं तिमि किन अबलौं मारि नसायो ॥ आरज राज रूप तुम तासों मांगत यह बरदाना। प्रजा कुमुदगन चन्द्र नृपति को करहु सकुल कल्याना ॥ ६ ॥

(बिहाग ठुमरी)

'पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीओ सदा विकटोरिया रानी'। सूरज चन्द्र प्रकास करैं जब लौं रहै सातहु सिन्धु मैं पानी ॥ राज करौ सुख सों तब लौं निज पुत्र औ पौत्र समेत सयानी। पालौ प्रजा गन कौं सुख सौं जग कीरति गान करैं गुन गानी ॥ १० ॥

कालिंगड़ा—लहौ सुख सब विधि भारत वासी। विद्या कला जगत की सीखौ तजि आलस की फांसी ॥ अपनो देस धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्त निज दासी। उद्यम करिकै होउ एक मति निज बल बुद्धि प्रकासी ॥ पंचपीर की भगति छांड़ि कै ह्वै हरिचरन उपासी। जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुन रासी ॥ ११ ॥

APPENDIX B.
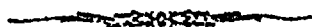
उपसंहार (अंक) ख

इस नाटक के विषय में विलसन साहिब लिखते हैं कि यह नाटक और नाटकों से अति विचित्र है क्योंकि इस में सम्पूर्ण राजनीति के व्यवहारों का वर्णन है . चन्द्रगुप्त (जो यूनानी लोगों का सैन्द्रोकोतस Sandrocottus. है) और पाटलिपुत्र (जो यूरप की पाली बोत्तरा Palibothra है) के वर्णन का ऐतिहासिक नाटक होने के कारण यह विशेष दृष्टि देने के योग्य है

इस नाटक का कवि विशाखदत्त महाराज पृथु का पुत्र और सामन्त बटेश्वरदत्त का पौत्र था . इस लिखने से अनुमान होता है कि दिल्ली के अन्तिम हिन्दूराजा पृथ्वीराज चौहान ही का पुत्र विशाखदत्त है क्योंकि अन्तिम श्लोक से विदेशी शत्रु की जय की ध्वनि पाई जाती है . भेद इतना ही है कि रायसे में पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और दादा का आनन्द लिखा है . मैं यह अनुमान करता हूं कि सामन्तबटेश्वर इतने बड़े नाम को कोई शीघ्रता में या लघु करके कहे तो सामन्तबटेश्वर हो सकता है और सम्भव है चन्द ने भाषा में सामन्तबटेश्वर को ही सोमेश्वर लिखा हो ।

मेजर विल्फर्ड ने मुद्राराक्षस के कवि का नाम गोदावरी तीर निवासी अनन्त लिखा है किन्तु यह केवल भ्रममात्र है . जितनी प्राचीन पुस्तकें उत्तर वा दक्षिण में मिलीं किसी में अनन्त का नाम नहीं मिला है ।

इस नाटक पर बटेश्वर मैथिल पण्डित की एक टीका भी है . कहते हैं कि गुहसेन नामक किसी अपर पण्डित की भी एक टीका है ; किन्तु देखने में नहीं आई . महाराज तंजोर के पुस्तकालय में व्यास राज यज्वा की एक टीका और है ॥

चन्द्रगुप्त * की कथा विष्णुपुराण भागवत आदि पुराणों में और बृह-

---

* प्रियदर्शी, प्रियदर्शन, चन्द्र, चन्द्रगुप्त, श्रीचन्द्र, चंदश्री, मौर्य, यह सब चन्द्रगुप्त के नाम हैं और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रोमिल वा द्रोहिण, अंशुल कौटिल्य, यह सब चाणक्य के नाम हैं ।

कथा में वर्णित हैं. कहते हैं कि त्रिकाटपली के राजा चंद्रहास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है।

महानन्द अथवा महापद्मनन्द भी शूद्रा के गर्भ से था और कहते हैं कि चन्द्रगुप्त इस की एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था. यह पूर्व पीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र थी. इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में यहां कुछ लिखना अवश्य हुआ. सूर्यवंशी सुदर्शन * राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व में इस नगर को बनाया. कहते हैं कि कन्या को संस्थापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसा कर उसका नाम पाटलिपुत्र रक्खा था. वायुपुराण में जरासन्ध के पूर्व पुरुष वसु राजा ने बिहारप्रान्त का राज्य संस्थापन किया यह लिखा है. कोई कहते हैं कि वेदों में जिस वसु के यज्ञ का वर्णन है वही राज्य गिरि राज्य का संस्थापक है. (जो लोग चरणाद्रि को राजगृह का पर्वत बतलाते हैं उन को केवल भ्रम है.) इस राज्य का प्रारम्भ चाहे जिस तरह हुआ हो जरासन्ध ही के समय से यह प्रख्यात हुआ. मार्टिन साहब ने जरासन्ध के विषय में एक अपूर्व कथा लिखी है. वह कहते हैं कि जरासन्ध दो पहाड़ियों पर दो पैर रखकर द्वारका में जब स्त्रियां नहाती थीं तो ऊंचा हो कर उन को घूरता था इसी अपराध पर श्री कृष्ण ने उसको मरवा डाला !!!

मगध शब्द मग से बना है. कहते हैं कि श्री कृष्ण के पुत्र साम्ब ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्ठान करने को बुलाया था और वे जिस देश में बसे उस की मगध संज्ञा हुई. जिन अंगरेज़ विद्वानों ने 'मगध देश' शब्द को मद्ध [मध्यदेश] का अपभ्रंश माना है उन्हें शुद्ध भ्रम हो गया है. जैसा कि मेजर विल्फर्ड पालीबोत्रा को राजमहल के पास गङ्गा और कोसी के सङ्गम पर बतलाते और पटने का शुद्ध नाम पद्मावती कहते हैं. यों तो पाली इस नाम के कई शहर हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध हैं किन्तु पाली बोत्रा पाटलिपुत्र ही है. सोन के किनारे मावली पुर एक स्थान है जिस का शुद्ध नाम महाबलीपुर है. महाबली नन्द का नामान्तर भी है इसी से और वहां प्राचीन चिन्ह मिलने से कोई कोई शंका करते हैं कि बलीपुर वा बलिपुत्र का पालीबोत्रा अपभ्रंश है किन्तु यह भी भ्रम ही है. राजाओं के नाम

---

* सुदर्शन सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामांतर था. किसी २ ने भ्रम से पाटली को शूद्रक की कन्या लिखा है ॥

से अनेक ग्राम बसते हैं इसमें कोई हानि नहीं किन्तु इन लोगों की राजधानी पाटली पुत्र ही थी. ॥

कुछ विद्वानों का मत है कि मग लोग मिश्र से आए और यहां आकर Isiris और Osiris नामक देव और देवी की पूजा प्रचलित की. यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश बोध होते हैं. किसी पुराण में महाराज दशरथ ने शाकद्वीपियों को बुलाया यह लिखा है. इस देश में पहले कोल और चेरू (चोल) लोग बहुत रहते थे. शुनक और अजक इस देश में प्रसिद्ध हुए. कहते हैं कि इन दोनों को लड़कर ब्राह्मणों ने निकाल दिया. इसी इतिहास से भुइंहार जाति का भी सूत्र पात होता है और जरासन्ध के यज्ञ से भुइंहारों की उत्पत्ति वाली किम्वदन्ती* इस का पोषण करती है. बहुत दिन तक ये युद्ध प्रिय ब्राह्मण यहां राज्य करते रहे. किन्तु एक जैन पण्डित जो ८०० वर्ष ईसामसीह के पूर्व हुआ है लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीत कर निकाल दिया. कहते हैं कि बिहार के पास बारागंज में इस के किले का चिन्ह भी है. यूनानी विद्वानों और वायुपुराण के मत से उदयाश्व ने मगध राज संस्थापन किया इस का समय ५५० ई० पू० बतलाते हैं और चन्द्रगुप्त को इससे तेरहवां राजा मानते है ० यूनानी

* भारतवर्षीय राजदर्पण प्रथमखण्ड में लिखा है। "यह भी प्रसिद्ध है कि मगधाधिपति महाराज जरासन्ध के यज्ञ के समय लक्ष ब्राह्मण भोजन करानेे के प्रयोजन होने पर राजा के अज्ञात में उन् के कोई कर्म्माध्यक्ष जिन् को ब्राह्मणों के ले आने की आज्ञा हुई थी उन्ने अनेक कष्ट से भी आज्ञानुयायी ब्राह्मण संग्रह करने में असमर्थ हो कर राज दण्ड के भय से अपर जाति के लोगों के गले में यज्ञोपवीत डाल भोजन करवा दिया। पीछे उन् सबों के जात बिरादरी के उन्के साथ आहार व्यवहार परित्याग करने से वे सब कोई राजा जरासन्ध के पास जाकर उन्के कर्माध्यक्ष के नाम पर नालिश करके उन्होंने आद्योपान्त सब वृत्तान्त प्रकाश कर दिया। जिस् पर राजा लाचार हो कर उन्हीं के गुजरान के लिये अपने अधिकार में भूमि देकर उन् सबों को बसाया। इसी से उन् खानदानों को आज तक भूमिहार ब्राह्मण कहते हैं। और एक प्रमाण इस्का यह है कि इन भूमिहारों के बास स्थान उस समय के मगध राज्य के सीमा के बाहर और अन्यत्र प्रायः दृष्टि गोचर नहीं होते हैं।" इसके सिवाय बिहार दर्पण में भूमिहारों की उत्पत्ति लिखी है।

लोगों ने सोन का नाम Erannoboas (इरन्नोवाओस) लिखा है. यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रंश है. (हिरन्न वाह) स्वर्णनद और शोन का अपभ्रंश सोन है. मैगास्थिनस अपने लेख में पटने के नगर को ८० स्टेडिया (आठ मील) लम्बा और १५ चौड़ा लिखता है जिस से स्पष्ट होता है कि पटना पूर्वकाल ही से लम्बा नगर है * उसने उस समय नगर के चारो ओर ३० फुट गहिरी खाई फिर ऊंची दीवार और उस में ५७० बुर्ज और ६४ फाटक लिखे हैं. यूनानी लोग जो इस देश को Prasii प्रासिइ कहते हैं वह पालाशी का अपभ्रंश बोध होता है क्योंकि जैन ग्रन्थों में उस भूमि के पलाश वृक्ष से आच्छादित होने का वर्णन देखा गया है. ॥

जैन और बौद्धों से इस देश से और भी घनिष्ट सम्बन्ध हैं. मसीह से छ सौ बरस पहले बुद्ध पहलेपहल राजगृह ही में उदास हो कर चले गए थे. उस समय इस देशकी बड़ी समृद्धि लिखी है. और राजाका नाम बिम्बसार लिखा है. (जैन लोग अपने बीसवें तीर्थंकर सुव्रत स्वामी का राजगृह में कल्याणक भी मानते हैं.) बिम्बसार ने राजधानी के पासही इन के रहने को कालद नामक विहार भी बना दिया था. फिर अजातशत्रु और अशोक के समय में भी बहुत से स्तूप बने. बौद्धों के बड़े बड़े धर्म समाज इस देश में हुए. उस काल में हिन्दू लोग इस बौद्ध धर्म के अत्यन्त विद्वेषी थे. क्या आश्चर्य है कि बुद्धों के द्वेषही से मगध देश को इन लोगों ने अपवित्र ठहराया हो और गोतम की निन्दा ही के हेतु अहल्या की कथा बनाई हो ॥

---

* जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियों ने उस समय इस धूम से किया है उस की वर्त्तमान स्थिति यह है. पटने का जिला २४° ५८′ से २५° ४२′ लैटि और ८४° ४४′ से ८६° ०५′ लोंग० पृथ्वी २१०१ मील समचतुष्कोन. १५५९६३८ मनुष्य संख्या. पटने की सीमा उत्तर गङ्गा, पश्चिम सोन, पूर्व मुंगेर का जिला. और दक्षिण गया का जिला. नगर की बस्ती अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हजार घर है. साढ़े आठ लाख मन के लगभग बाहर से प्रति वर्ष यहां माल आता और पांच लाख मन के लगभग जाता है. हिन्दुओं में छ जाति यहां विशेष है. यथा एक लाख अस्सी हजार ग्वाला, एक लाख सत्तर हजार कुनबी, एक लाख सत्रह हजार गुइंहार, पचासी हजार चमार, अस्सी हजार कोइरी और आठ हजार राजपूत. अब दो लाख के आसपास मुसलमान पटने के जिले में बसते हैं ॥

भारत नचत्र नज्ची राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहासतिमिर-नाशक के तीसरे भाग में इस समय और देशके विषय में जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं. इससे बहुत सी बात उस समय की स्पष्ट होजांयगी. ॥

प्रसिद्ध यात्री हिअान सांग सन् ६३७ ई० में जब भारत वर्ष में आया था तब मगध देश हर्ष वर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार में था. किन्तु दूसरे इतिहास लेखक सन् २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते हैं और अंध्रवंश का भी राज्य चिन्ह सम्भलपुर में दिखलाते हैं. ॥

सन् १२९२ ई०में पहले इस देश में मुसलमानों का राज्य हुआ. उस समय पटना बनारस के बन्दावत राजपूत राजा इन्द्रदमन के अधिकार में था. सन् १२२५ में अलतमिशने इयासुद्दीन को मगध प्रान्त का स्वतन्त्र सूबेदार नियत किया. इस के थोड़े ही काल पीछे फिर हिन्दू लोग स्वतन्त्र हो गए. फिर मुसल्मानों ने लड़कर अधिकार किया सही किन्तु झगड़ा नित्य होता रहा. यहां तक कि सन् १३९३ में हिन्दू लोग स्वतन्त्र रूप में फिर यहां के राजा हो गए और तीसरे महमूद को बड़ी भारी हार हुई. यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था. इस समय में गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश छोड़कर लड़ने आए *. ये और पञ्जाब से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिन्दू मगध देश में जाकर प्राण त्याग करना पड़ा पुण्य समझते थे. प्रजापाल नामक एक राजा ने सन् १४०० के लग भग बीस बरस मगध देश को स्वतन्त्र रक्खा. किन्तु आर्य मलारी देव ने यह स्वतन्त्रता

---

* गया के भूगोल में पण्डित शिवनारायण त्रिवेदी भी लिखते हैं। "औरंगाबाद से तीन कोस अग्निकोण देव बड़ी भारी बस्ती है यहां श्री भगवान-सूर्य्यनारायण का बड़ा भारी संगीन पच्छिम रुख का मन्दिर है यह मन्दिर देखने से बहुत प्राचीन जान पड़ता है यहां कातिक और चैत की छठ को बड़ा मेला लगता है दूर दूर के लोग यहां आते और अपने अपने लड़कों का मुण्डन छेदन आदि की मनौती उतारते हैं. मन्दिर से थोड़ी दूर दक्खिन बाजार के पूरब ओर सूर्य्यकुंड का तालाव है इस तालाव से सटा हुआ और एक कच्चा तालाव है उसमें कमल बहुत फूलते हैं देव राजधानी है यहां के राजा महाराजा उदयपुर के घराने के मड़ियार राजपूत हैं इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम में बहुत प्रसिद्ध होते आये हैं यहां के महाराज

स्थिर नहीं रक्खी और पुण्य धाम गया फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया. सन् १४७८ तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार में रहा. फिर बहलूल वंश ने इस को जीत लिया था किन्तु १४९१ में हसन शाह ने फिर जीत लिया. इस के पीछे बंगाल के पठानों से और जौनपुर वालों से कई लड़ाई हुईं और १४९४ में दोनों राज्य में एक सुलहनामा हो गया. इस के पीछे सूर लोगों का अधिकार हुआ और शेरशाह ने बिहार छोड़कर पटने को राजधानी किया. सूरों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई०) यह देश मुग़लों के अधीन हुआ और अन्त में जरासन्ध और चन्द्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य वेश और आर्य नाम परित्याग करके औरङ्गजेब के पोते अज़ीमशाह के नाम पर अपना नाम अज़ीमाबाद प्रसिद्ध किया. (१६९७ ई०) बंगाले के सूबेदारों में सब से पहले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतन्त्र समझा था किन्तु १७५७ ई० की पलासी की लड़ाई में मीरजाफर अङ्गरेजों के बल से बिहार बंगाला और उड़ीसा का अधिनायक हुआ. किन्तु अन्त में जगद्विजयी अङ्गरेजों ने सन् १७६३ में पूर्व में पटना अधिकार करके दूसरे बरस बक्सर की प्रसिद्ध लड़ाई जीत कर स्वतन्त्र रूप से सिंह चिन्ह की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रांत मात्र को हिन्दोस्तान के मानचित्र में लाल रङ्ग से स्थापित कर दिया. ॥

जस्टिन (Justin) कहता है (१) सन्द्रकुत्तस महा पराक्रमी था.

श्री जयप्रकाश सिंह के० सी० एस० आई० बड़े शूर सुशील और उदार मनुष्य थे यहां से २ कोस दक्खिन कंचनपुर में राजा साहिब की बाग और मकान देखने लायक बना है। देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है उसके पास पहाड़ के ऊपर देव के सूर्य्य मन्दिर के ढंग का एक महादेव का मन्दिर है पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है जान पड़ता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहां ही रहते थे पीछे देव में बसे देव और उमगा दोनों इन्हीं की राजधानी थी इससे दोनों नाम साथ ही बोले जाते हैं (देवमूंगा) तिल संक्रांति को उमगा में बड़ा मेला लगता है ॥"

इससे स्पष्ट हुआ कि उदयपुर से जो राणा लोग आये उन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं। और बिहार दर्प्पण से भी यह बात पाई जाती है कि मड़ियार लोग मेवाड़ से आये हैं।

(1) Justin His. Phellipp. Lib. XV Cap. IV.

असंख्य सैन्य संग्रह करके विरुद्ध लोगों का इसने सामना किया था. डायडोरस सिक्यूलस (Deodorus Siculus) कहता है (२) प्राच्यदेश के राजा जन्द्रमा के पास २०००० अश्व २००००० पदाती २००० रथ और ४००० हाथी थे. यद्यपि यह Xandramas शब्द चन्द्रमाका अपभ्रंश है किन्तु कई भ्रान्त यूनानियों ने नन्द को भी इसी नाम से लिखा है. क्विन्तस कारशिअस (Quintus Curtius) लिखता है (३) चन्द्रमा के चौरकार पिता ने पहले मगध राज को फिर उसके पुत्रों को नाशकर के रानी के गर्भ में अपने उत्पन्न किए हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया. स्त्राबो (Strabo) कहता है (४) सिल्यूकस ने मेगस्थानिस को संद्रकुत्तस के निकट भेजा और अपना भारतवर्षीय समस्त राज्य देकर उस से संधि कर लिया. आरियन (Orriun) (५) लिखता है कि मेगास्थनिस अनेक बार संद्रकुत्तस की सभा में गया था. प्लूटार्क (Plutarch) ने (६) चन्द्रगुप्त को दो लक्ष सैना का नायक लिखा है. इन सब लेखों को पौराणिक वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकन्दर कृत पुरु पराजय के पीछे मगध राज मन्त्री द्वारा निहत हुए और उनके लड़के भी उसी गति को पहुंचे और उसके पीछे चन्द्रगुप्त राजा हुआ. किन्तु बहुत से यूनानी लेखकों ने चन्द्रगुप्त को पट्टरानी के गर्भ में चौरकार से उत्पन्न लिखकर व्यर्थ अपने को भ्रम में डाला है. चन्द्रगुप्त क्षत्रिय वीर्य से दासी में उत्पन्न था यह सर्व साधारण का सिद्धान्त है. (७) इस क्रम से ३२७ ई० पू० में नन्द का मरण और ३१४ ई० पू० में चन्द्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है. पारस देश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति सुन्दर कन्या हुई थी वही चन्द्रगुप्त को दी गई. ३०२ ई० पू० में यह सन्धि और विवाह हुआ. इसी कारण अनेक

---

(2) Deodorus Siculus XVII. 93.

(3) Quintus Curtius IX. 2.

(4) Strabo XV. 2. 9.

(5) Orriun Indica, X. 5.

(6) Plutarch Vita Alexandri O. 62.

(७) टाड आदि कई लोगों का अनुमान है कि मोरी वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चितौर के राजा थे वे भी मौर्य थे. क्या चन्द्रगुप्त चौहान था ? या ये मोरी सब शूद्र थे ?

यवन सेना चन्द्रगुप्त के पास रहती थी . २९२ ई० पूर्व में चन्द्रगुप्त २४ बरस राज्य करके मरा. ।

चन्द्रगुप्त के इस मगध राज्य को आईने अकबरी में मकाता लिखा है . डिग्विगनेस (Deguignes) कहता है कि चीनी मगध देश को मकियात कहते हैं . केम्फर (Kemfer) लिखता है कि जापानी लोग उस को मगत् काफ कहते हैं. (काफ शब्द जापानी में देश वाची है.) प्राचीन फारसी लेखकों ने इस देश का नाम मावाद या मुवाद लिखा है. मगध राज्य में अनुगांग प्रदेश मिलने ही से तिब्बत वाले इस देश को अनुखेंक वा अनोनखेक कहते हैं. और तातार वाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं. ।

सिसली डिउडौरस ने लिखा है, कि मगधराजधानी पालीपुत्र भारत वर्षीय हर्क्यूलस देवता द्वारा स्थापित हुई. सिसिरो ने इन्हीं हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता का नामान्तर बेलस (बलः) लिखा है . बल शब्द बलदेव जी का बोध करता है और इन्हीं का नामान्तर बली भी है . कहते हैं कि निज पुत्र अङ्गद के निमित्त बलदेव जी ने यह पुरी निर्माण की इसी से बलीपुत्र पुरी इसका नाम हुआ . इसी से पाली पुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया . पाली भाषा पाली धर्म पाली देश इत्यादि शब्द भी इसी से निकले हैं . कहते हैं बाणासुर के बसाए हुए जहां तीन पुर थे उन्हों को जीतकर बलदेव जी ने अपने पुत्रों के हेतु पुर निर्माण किये . यह तीनों नगर महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास हाते में, एक विदर्भ देश में (मुज़फ़रपुर वर्त्तमान नाम) और एक (राजमहल वर्त्तमान नाम से) वङ्ग देश में है . कोई कोई बालेश्वर मैसूर पुरनियां प्रभृति को भी बाणासुर की राजधानी बतलाते हैं . यहां एक बात बड़ी विचित्र प्रगट होती है . बाणासुर भी वलिपुत्र है . क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलिपुत्र शब्द निकला हो . कोई नन्द ही का नामान्तर महाबली कहते हैं और कहते हैं कि पूर्व में गङ्गा जी के किनारे नन्द ने केवल एक महल बनाया था उसके चारो ओर लोग धीरे २ बसने लगे और फिर वह पत्तन (पटना) हो गया. कोई महाबली के पितामह उदसी (उदासी . उदयाश्वो . उदय सिंह ?) ने ४५० ई० पू० इस को बसाया मानते हैं . कोई पाटली देवी के कारण पाटलिपुत्र नाम मानते हैं . ।

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम सुमाल्य

लिखा है. बृहत्कथा में लिखते हैं कि शकटाल ने इन्द्रदत्त का शरीर जला दिया इस से योगानन्द (अर्थात् नन्द के शरीर में इन्द्रदत्त की आत्मा) फिर राजा हुआ. व्याड़िजाने के समय शकटाल को नाश करने का मंत्र दे गया था. वररुचि मन्त्री हुआ किन्तु योगानन्द ने मदमत्त होकर उसको नाश करना चाहा इससे वह शकटार के घर में छिपा. उसकी स्त्री उपकोशा पति को मृत समझ कर सती हो गई. योगानन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था किन्तु फिर तपोवन में चला गया. फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नन्द के नाश का कारण हुआ. उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त जो कि योगानन्द का पुत्र था उस को मार कर चन्द्रगुप्त को जो कि असली नन्द का पुत्र था गद्दी पर बैठाया.।

ढुंढि पण्डित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दों में मुख्य था. इस को दो स्त्री थी. सुनन्दा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी उस का नाम मुरा था. एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहां गया और ऋषि ह्रत मार्जन के समय सुनन्दा पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी. मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रसन्न होकर वरदान दिया. सुनन्दा को एक मांस पिण्ड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ. राक्षस ने मांस पिण्ड काटकर नौ टुकड़े किया जिस से नौ लड़के हुए. मौर्य को सौ लड़के थे जिस में चन्द्रगुप्त सब से बड़ा बुद्धिमान था. सर्वार्थसिद्धि ने नन्दों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा. नन्दों ने ईर्षा से मौर्य और उस के लड़कों को मार डाला किन्तु चन्द्रगुप्त चाणक्य ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नन्दों को नाश कर के राजा हुआ.।

योंही भिन्न भिन्न कवियों और विद्वानों ने भिन्न भिन्न कथा लिखी हैं. किन्तु सब के मूल का सिद्धान्त पास पास एक ही आता है.।

इतिहासतिमिरनाशक में इस विषय में जो कुछ लिखा है वह नीचे प्रकाश किया जाता है।

बिम्बसार को उस के लड़के अजातशत्रु ने मार डाला मालूम होता है कि यह फ़साद ब्राह्मणों ने उठाया अजातशत्रु बौद्ध मत का शत्रु था शाक्य मुनि गौतम बुद्ध श्रावस्ति में रहने लगा यहां भी प्रसेनजित को उस के बेटे ने गद्दी से उठा दिया शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में गया।

अजात शत्रु की दुश्मनी बौद्धमत से धीरे धीरे बहुत कम हो गयी शाक्य

मुनि गौतम बुद्ध फिर मगध में गया पटना उस समय एक गांव था वहां हरकारों की चौकी में ठहरा वहां से विशाली (१) में गया विशाली की रानी एकवेश्या थी वहां से पावा (२) गया वहां से कुशीनारगया बौद्धें के लिखने बमूजिब उसी जगह सन् ईसवी से ५४३ बरस पहले ८० बरस की उमर में साल के वृक्ष के नीचे बाईं करवट लेटे हुए इनका निर्वाण(३) हुआ काश्यप उस का जानशीन हुआ अजातशत्रु के पीछे तीन राजा अपने बाप को मार मार मगध की गद्दी पर बैठे यहां तक कि प्रजा ने घबराकर विशाला की वेश्या के बेटे शिशुनाम मंत्री को गद्दी पर बैठा दिया यह बड़ा बुद्धिमान था इस के बेटे कालअशोक ने जिस का नाम ब्राह्मणों ने काकवर्ण भी लिखा है पटना अपनी राजधानी बनाया॥

जब सिकन्दर का सेनापति बाबिल का बादशाह सिल्यूकस सूबेदारों के तदारुक को आया पटने से सिंधु किनारे तक नन्द के बेटे चन्द्रगुप्त के अमल दखल में पाया बड़ा बहादुर था शेर ने इस का पसीना चाटा था और जंगली हाथी ने इस के सामने सिर झुका दिया था॥

पुराणों में बिम्बसार को शिशुनाग के बेटे काकवर्ण का परपोता बतलाया है और नन्दिवर्धन को बिम्बसार के बेटे अजातशत्रु का परपोता और कहा है कि नन्दिवर्धन का बेटा महानन्द और महानन्द का बेटा शूद्री से महापद्मनन्द और इसी महापद्मनन्द और उसके आठ लड़कों के बाद जिन्हें नवनन्द कहते हैं चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा बौद्ध कहते हैं कि तक्षशिला के

---

(१) जैनी महावीर के समय विशाली अथवा विशाला का राजा चेटक * बतलाते हैं यह जगह पटने के उत्तर तिरहुत में है उजड़ गयी है। वहां वाले अब उसे बसाढ़ पुकारते हैं॥

(२) जैनी यहां महावीर का निर्वाण बतलाते हैं पर जिस जगह को अब पावापुर मानते हैं असल में वह नहीं है पावा विशाली से पश्चिम और गङ्गा से उत्तर होना चाहिये॥

(३) जैनी अपने चौबीसवें अर्थात् सब से पिछले तीर्थंकर महावीर का निर्वाण बिक्रम के सम्वत् से ४७० अर्थात् सन् ईसवी से ५२७ बरस पहले बतलाते हैं और महावीर के निर्वाण से २५० बरस पहले अपने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण मानते हैं॥

---

* कैसे आश्चर्य की बात है, चेटक रंडी के भड़ुवे को भी कहते हैं (हरिश्चन्द्र।)

रहने वाले चाणक्य ब्राह्मण ने धन नन्द को मार के चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और वह मोरिय नगर के राजा का लड़का था और उसी जाति का था जिस में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध पैदा हुआ॥

मेघास्थिनी लिखता है कि पहाड़ों में शिव और मैदान में विष्णु पुजते हैं पुजारी अपने बदन रङ्ग * कर और सिर में फूलों की माला लपेट कर घण्टा और झांझ बजाते हैं एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की स्त्री व्याह नहीं सकता है और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नहीं कर सकता है हिन्दू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कन्धों पर कपड़ा ‡ रखते हैं जूते उन के रंग बरंग के चमकदार और कारचोबी होते हैं बदन पर अकसर गहने और मिहंदी से रंगते हैं और दाढ़ी मूछ पर खिज़ाब करते हैं छतरी सिवाय बड़े आदमियों के और कोई नहीं लगा सकता रथों में लड़ाई के समय घोड़े और मंजिल काटने के लिये बैल जोते जाते हैं हाथियों पर भारी जर्दोजी झूल डालते हैं सड़कों की मरम्मत होती है पुलिस का अच्छा इन्तिज़ाम है चन्द्रगुप्त के लश्कर में औसत चोरी तीस रुपये रोज़ से जियादा नहीं सुनी जाती है राजा जमीन की पैदावार से चौथाई लेता है ।

चन्द्रगुप्त सन् ईसवी के ९१ बरस पहले मरा उस के बेटे बिन्दुसार के पास यूनानी एलची दयोमेकस (Diamachos) आया था परन्तु वायुपुराण में उसका नाम भद्रसार और भागवत्त में वारिसार और मत्स्यपुराण में शायद बृहद्रथ लिखा है केवल विष्णुपुराण बौद्ध ग्रन्थों के साथ बिन्दुसार बतलाता है उस के १६ रानी थीं और उन से १०१ लड़के उन में अशोक § जो पीछे से धर्मअशोक कहलाया बहुत तेज था उज्जैन का नाजिम था वहां के एक सेठ ¶ की लड़की देवी व्याही थी उसी से महेन्द्र लड़का और संघमिता जिसे सुमित्रा भी कहते हैं लड़की हुई थी ॥

---

* चन्दन इत्यादि लगाकर ।

‡ अर्थात् पगड़ी दुपट्टा ।

§ जैनियों के ग्रन्थों में इसी का नाम अशोक श्री लिखा है ।

¶ सेठ श्रेष्ठी का अपभ्रंश है अर्थात् जो सब से बड़ा हो ।

एन आदेश होता है सो अन्वादेश ही में होता है । अन्वादेश उसे कहते हैं कि किसी कार्य के लिये उसी का फिर प्रयोग करना पड़े । उदाहरण । अनेन व्याकरणमधीतं एनं छन्दोऽध्यापय । एतयोः पवित्रं कुलं एनयोः प्रभूतं स्वम् । इत्यादि । यहां समस्त श्लोक भर में कहीं इदस् वा एतद् शब्द का प्रयोग नहीं है तो अन्वादेश भी नहीं हुआ । और अन्वादेश नहीं रहने से (एनं) इदम् वा एतद् शब्द का व्याकरण रीति से बन नहीं सकता इसलिये पूर्वोक्त अर्थ करना पड़ा ।

बुधानां योगः बुधयोगः इस अर्थ से अधिक बुद्धिमान् बुध, गुरु, शुक्र तीनों का योग सूर्य को रहने से ग्रहण नहीं हो सकता वा ग्रहण का अशुभ फल नहीं हो सकता. ऐसा सूत्रधार नटी से कहता है यही अभिप्राय ठीक है ।

पञ्चग्रह संयोगान्न किल ग्रहणस्य संभवो भवति ।

(" वाराही संहिता राहु चार श्लोक १७ ")

अर्थ—पांच ग्रहों का संयोग होने से ग्रहण का संभव नहीं होता । यहां भी राहु, सूर्य, बुध, गुरु और शुक्र पांच ग्रहों का संयोग हुआ ही इस लिये ग्रहण का संभव नहीं यह सूत्रधार का तात्पर्य होगा ।

अथवा । वाराही संहिता राहु चार श्लोक ६२ देखो ।

यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रह जनितं ग्रहणेप्रमोक्षणे वा ।
सुरपति गुरुणा वलोकिते तच्छमसुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः ॥

अर्थ—जो ग्रहजनित अशुभफल दृष्टि के वश से ग्रहण और मोक्ष समय में कहा वह वृहस्पति की दृष्टि होने से शान्त हो जाता है जैसे सुलगा हुआ अग्नि जल से शान्त होता है । यहां भी उक्त अर्थ से वृहस्पति की दृष्टि है अतः अशुभ फल नहीं हो सकता । यह सूत्रधार का तात्पर्य होगा ऐसा भी कह सकते हैं ।

उसी श्लोक का अन्वय सहित अर्थ जो चन्द्रगुप्त के अर्थ को प्रकाश करके चाणक्य के प्रवेश की प्रस्तावना करता है । इदानीं सकेतुः क्रूरग्रहः असंपूर्ण मण्डलं चन्द्रवलात् अभिभवितु मिच्छति एनं बुधयोगस्तुरक्षति । इस समय केतु (मलयकेतु) सहित क्रूरग्रह (राक्षस) जिस का मण्डल (राज्य) पूरा नहीं हुआ है उस चन्द्र (चन्द्रगुप्त) को बलात्कार से पराजय करने चाहता है, प्रभु तक बुद्धिमानों का (गुप्त पुरुष जो चाणक्य के भेजे थे उन का) योग तो रक्षा करता है । एनं शब्द की सिद्धि पूर्व प्रकार से ही जानो

केवल भेद इतना ही है कि पहले अर्थ में इन शब्द से सूर्य और दूसरे अर्थ में प्रभु (राजा वा बड़े लोक) लेते हैं। "इनः सूर्ये प्रभौ" नानार्थ वर्ग अमर कोष में लिखा भीहै।

सारांश इस लिखित अर्थ पर सर्वलोक विचार करके फिर उस के गुण दोषों पर ध्यान देवें इतनी ही प्रार्थना है। इति शुभम्।

उदय पुर }
१८ नवम्बर } विनायक शास्त्री।

केतु वर्णन।

कविवचनसुधा जिल्द १२ नंबर ४९—१८—७—८१

प्राचीन भारतवर्षीय सिद्धान्तज्ञों का केतु संबंधी विचार।

जो अकस्मात् अग्नि सदृश आकाश में देख पड़े उसे केतु कहते हैं परन्तु खद्योतादि से भिन्न हो। ये केतु तीन प्रकार के होते हैं दिव्य अन्तरिक्ष और भौम। जिनकी स्थिती भूवायु से ऊपर है वे दिव्य, जिनके रूप घोड़े हाथी ध्वज वृक्षादि के सदृश होते हैं अर्थात् जो भूवायु मे उत्पन्न होते हैं वे आन्तरिक्ष और इन से भिन्न भौम हैं।

बहुत विद्वान कहते हैं कि एक सौ एक केतु हैं कितने कहते हैं कि ह-जार केतु हैं परन्तु नारद मुनि कहते हैं कि यह एक ही केतु है अनेक रूप और स्थान बदल बदल कर दर्शन देता है।

तीन पक्ष के अनन्तर जितने दिनों तक केतुओं का दर्शन होता है उतने मास तक इनका फल होता है और जितने मास तक दर्शन होता है उतने वर्ष तक फल होता है। प्राचीनों ने इन केतुओं के रङ्ग रूप और उदयास्त पर से संज्ञा विशेष और उन पर से शुभाशुभ ज्ञान जैसा किया है उसे हम संक्षेप से लिखते हैं। जिन केतुओं की चोटी सुबर्ण और मणि के सदृश हो और पूरब पश्चिम दोनों दिशाओं में उदय हों वे रवि पुत्र कहलाते हैं और इन के उदय से राजाओं में परस्पर विरोध होता है ऐसे पचीस केतु हैं। जो अग्नि दिशा में उदय होते हैं और जिनका रङ्ग लाल होता है वे अग्नि पुत्र हैं उनके उदय से संसार मैं भय होता है उनकी संख्या भी पचीस ही हैं।

जिनकी चोटी टेढ़ी और काली हो ऐसे केतु भी पचीस हैं ये दक्षिण दिशा में उदय होते हैं इनके उदय से मनुष्य बहुत मरते हैं इनको मृत्यु पुत्र कहते हैं। बाईस केतु ऐसे हैं जिनकी चोटी नहीं होती और उनका आकार

दर्पण सा चिपटा और गोल होता है वह जल में पड़ा हुआ तैल के सदृश जान पड़ता है ये ईशान कोण में उदय होते हैं इनके उदय से भी भय उत्पन्न होता है और इनको सकृत आठ कहते हैं। तीन केतु चंद्रपुत्र हैं इन का रूप चान्दी ऐसा श्वेत होता है ये उत्तर दिशा में देख पड़ते हैं इनका दर्शन सुभिक्ष कारक है। एक केतु ब्रह्मपुत्र है इसकी तीन चोटी होती हैं और तीनों तीन रङ्ग की। इसके उदय की दिशा का नियम नहीं यह युगान्त में उदय होता है।

चौरासी शुक्रपुत्र हैं इनका तारा शुक्ल और बड़ा होता है और इनका उत्तर और ईशान में उदय होता है और तीव्र फल है। साठ शनैश्चर के पुत्र हैं इनकी दो चोटी होती हैं आकाश में सर्वत्र इनका उदय होता है और नाम कनक है ये अति दारुण हैं।

गुरु के पुत्र विकच नाम के पैंसठ हैं इन की चोटी नहीं होती याम्य दिशा में उदय होते हैं बुरे फल देते हैं। तस्कर नाम के एक्यावन बुध के पुत्र हैं ये स्पष्ट दिखाई नहीं देते और लंबे और श्वेत होते हैं सब दिशाओं में इन का उदय होता है ये भी बुरे फल देने वाले हैं। तीन चोटी के कौंकुम नाम के मंगल के पुत्र साठ केतु हैं ये उत्तर दिशा में उदय होते हैं और बुरे हैं तैंतीस राहु पुत्र तामसकीलक नाम के हैं ये रवि चन्द्रमा के साथ देख पड़ते हैं इनका फल रविचार के आधीन हैं। एक सौ बीस अग्नि के पुत्र विश्वरूप नाम के हैं ये अग्नि बाधा करने वाले हैं।

जिनकी चोटी चामर ऐसी और कृष्ण रक्त वर्ण की होती है वे वायु पुत्र हैं और उनका अरुण नाम है ये पाप फल देने वाले हैं और इनकी संख्या सतहत्तर है। बहुत तारा वाले प्रजा पति के आठ पुत्र गणक नाम के हैं और दो से चार ब्रह्म सन्तान चतुर्भुजाकार हैं। बत्तीस वरुण के पुत्र कङ्क नाम के हैं इनमें चन्द्रमा ऐसी कान्ति रहती है ये केतु बहुत तीव्र फल को देने वाले हैं इनका रूप बांस के गुच्छ सदृश होता है। छानवे काल के पुत्र हैं इनका कबंध नाम है रूप भी कबंध ऐसा होता है बड़े घोर दारुण फल के देने वाले हैं। नव केतु केवल विदिशा में उदय होते हैं इनका बड़ा और श्वेत तारा होता है इस प्रकार से हजार केतु का फल गर्ग पराशर और असित देवलादिकों ने कहा है अब इन से विशेष केतुओं का फल नीचे लिखते हैं।

जिस केतु का उदय पश्चिम भाग में हो और उत्तर भाग में फैला हो मूर्त्ति चिकनी हो तो उसे बसा केतु कहते हैं यह तुरन्तही मरगी करता है परन्तु इसके उदय से सुभिक्ष बहुत होता है।

इसी प्रकार का अस्थिकेतु भी और शस्त्र केतु भी होते हैं परन्तु पहिला ... और दूसरा पूर्व में उदय होता है पहिला भयप्रद और दूसरा महामारी कारक है।

जो केतु अमावास्या में उदय होता है और उसकी चोटी में धूम रहता है उसे कपाल केतु कहते हैं यह मरगी अनावर्षण और रोग कारक है और यह आकाश के आधेही में रहता है।

इसी प्रकार का रौद्र नामक केतु है इसकी चोटी नोकीली और ताम्र वर्ण की होती है यह आकाश के त्रिभाग ही में चलता है। चल केतु उसे कहते हैं जिसके चोटी का अग्र दक्षिण ओर और उंचाई एक अंगुल हो और ज्यों ज्यों उत्तर के ओर चले त्यों त्यों बढ़ती जाय सप्तऋषि अभिजित और ध्रुव को स्पर्श कर फिर लौट कर दक्षिण भाग में अस्त हो और आधे ही आकाश में रहै। यह केतु प्रयाग से लेकर अवन्ती पुष्करारण्य और उत्तर में देविका नदी तक मध्य देश और अन्य अन्य देशों में भी रोग दुर्भिक्ष से प्रजा को दुःख देता है इसका फल कोई दश मास तक और कोई अठारह मास तक कहते हैं।

श्वेत और कनाम का केतु ये दोनों साथ ही साथ दिन में देख पड़ते हैं इनका अग्र याम्य भाग में रहता है और अर्द्धरात्रि के पूर्व ही इनका दर्शन होता है ये दोनों सुभिक्ष और कल्याण के देने वाले हैं।

इन में यदि केवल केतु का दर्शन हो तो दस वर्ष तक संसार में महातापि और शस्त्र कोप रहता है। श्वेत केतु जो जटाकार होता है यदि वह ही आकाश के त्रिभाग में रहै और लौट कर बायें ओर से आवे तो केवल तृतीयांश प्रजा बचे और सब का नाश होवे।

कृत्तिका नक्षत्र में स्थित होकर जिस केतु का उदय हो उसे रश्मि केतु कहते हैं इसकी चोटीमें धूंआ रहता है इसका फल श्वेत केतु के समान है।

ध्रुव केतु का प्रमाण वर्ण आकृति इत्यादि नियत नहीं होती और दिव्य आन्तरिक्ष भौम ये तीनों भेद उनमें पाये जाते हैं यह अच्छा फल देने वाला है।

राजाओं की सेना और महलों के ऊपर वृक्ष पहाड़ और गृहों के ऊपर यह ध्रुव केतु उनका नाश करने के लिये अकस्मात् दर्शन देता है।

कुमुद केतु की श्वेत कुमुद ऐसी कान्ति होती है, पश्चिम में उदय और पूर्व ओर चोटी रहती है एकही रात्रि देख पड़ता है यह दशवर्ष तक सुभिक्ष करता है।

मणिकेतु की चोटी दूध ऐसी और सीधी होती है, तारा बहुत सूक्ष्म रहता है, पश्चिम भाग में केवल एकही दिन प्रहर तक देख पड़ता है। यह साढ़े चार मास तक सुभिक्ष और क्षुद्र जन्तुओं की उत्पत्ति करता है। जलकेतु पश्चिम ओर देख पड़ता और चोटी भी पश्चिम भाग में रहती है, रूप स्वच्छ होता है। यह नव मास तक सुभिक्ष और प्राणियों को शान्त रखता है।

भव केतु के एक रात्रि पूर्व भाग में देख पड़ता है उसकी चोटी सिंह के पुंच्छ ऐसी दक्षिण से घूमी हुई होती है।

यह जे मुहूर्त्त रात्रि में देख पड़ता है उतने मास तक सुभिक्ष करता है परन्तु यदि रूक्ष हो तो प्राणियों का नाश करता है।

पद्म केतु कमल के मृणाल ऐसा उज्वल होता है और पश्चिम दिशा में एकही रात्रि देख पड़ता है। यह सात वर्ष तक सुभिक्ष करता है।

आवर्त्त केतु पश्चिम भाग में आधी रात को देख पड़ता है इसकी चोटी लाल ओर बांई ओर को रहती है। यह जे मुहूर्त्त रात्रि में देख पड़ता है उतनेही मास सुभिक्ष करता है।

सम्वर्त्तकेतु पश्चिम भाग में संध्या काल में उदय होता है और आकाश के तृतियांश तक फैला रहता है इसकी चोटी धूम सहित ताम्रवर्ण की होती है और उसका अग्र शूल ऐसा जान पड़ता है। यह जे मुहूर्त्त देख पड़ता है उतने वर्ष शस्त्रों के आघात से अनेक राजओं का नाश करता है और जिस नक्षत्र पर उदय होता है उसे भी दुःख देता है।

बुरे केतुओं का अश्विन्यादि नक्षत्रों में उदय होने के क्रम।

अश्मकपति। किरातराज। कलिङ्गपति। शूरसेन पति। उशीनर पति। जलजजीवपति अश्मक पति। मगध पति। अशिक पति। अङ्ग पति। पाराड्य पति। उज्जयिनी पति। दण्डक पति। कुचेत्र पति। काश्मीर पति। कम्बोज पति। इक्ष्वाकुपति। खलकपति। पुंड्रपति। सार्वभौम। अंध्रपति। भद्रकपति। काशीपति। चेद्यादिपति। केकयपति। पञ्चनदपति। सिंहलपति।

अगपति । नैमिषपति । किरातपति । इन राजाओं का मरण होता है परन्तु यदि केतु को चोटी उल्कादिकों से चोट खाय तो इन राजाओं का कल्याण और चौल अवगाण, सित हूण, चीन इन देशों के राजाओं का नाश हो।

केतु को यूरप के लोग भी कुछ विशिष्ट फल कारक मानते हैं परन्तु कुछ इसका पक्का विश्वास नहीं करते यह एक प्रकार का तारा है जिसके गति का यथार्थ निर्णय नहीं होता और इसको बहुत जाति हैं, कितने एक बार देख पड़ते फिर लौट कर नहीं आते। इससे यह जान पड़ता है कि इनकी कक्षा को यूरप के लोग Parabola कहते हैं और हमने इसका नाम परवलय रक्खा है। बहुत से केतु फिर लौट कर आते हैं, इसलिए उनकी कक्षा सीमित है अर्थात् बंधी है, इस कक्षा को दीर्घवृत्त कहते हैं जिसके नाभी और केन्द्र में बहुत अन्तर होता है।

कितने केतु दो चार बार तो नियत काल पर लौट कर आते हैं फिर नहीं आते इससे यह अनुमान होता है कि या तो वे केतु नष्ट होगये अथवा उनकी कक्षा बदल गयी! नई बातों से यही सिद्ध होता है कि इनके कक्षादिकों का प्रमाण यथार्थ अभी तक किसी के ध्यान में नहीं आया। इसी लिये वराहमिहिर ने लिखा है कि "दर्शनमस्तयो वा गणित विधिनाऽस्य शक्यते ज्ञातुम्" अर्थात् केतुओं का उदय और अस्त गणित से नहीं जाने जाते।

इस केतु को कई एक विद्वानों ने हिन्दी में पुच्छल तारा वा दुमदार सितारा कहा है परन्तु प्राचीन लोगों के मत से वह केतु की शिखा अर्थात् चोटी है, जिसे नये लोग पूंछ कहते हैं इसलिये हमारे समझ में तारा पद के विशेषण में पुच्छ के बदले शिखा अर्थात् चोटी का विशेषण देना चाहिए।
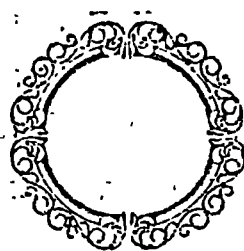
॥ धनंजय विजय ॥

व्यायोग

श्री नारायण उपाध्याय के पुत्र श्री कवि कांचन का बनाया,
हिन्दी भाषा के रसिकों के आनन्दार्थ
मूल गद्य के स्थान में गद्य और छन्द के स्थान में छन्द में
अनुवाद।

प्यारे !

निश्चय इस ग्रन्थ से तुम बड़े प्रसन्न होगे क्योंकि अच्छे लोग अपनी कीर्त्ति से बढ़ कर अपने जन की कीर्त्ति से सन्तुष्ट होते हैं तो इस हेतु इस होली के आरम्भ के त्यौहार माघीपूर्णिमा में हे धनंजय और निधनंजय के मित्र ! यह धनंजय विजय तुम्हें समर्पित है स्वीकार करो ।

तुम्हारा

ह—

धनंजय विजय ।

व्यायोग ।

(नान्दो आशीर्वाद पढ़ता है)

हरिर्लीलावराहस्य, द्रंष्ट्रादण्डः स पातु वः ।

हेमाद्रिकलशा, यत्र धात्री छत्रश्रियं दधौ ॥

सूत्रधार आता है ।

सू० ।—(चारो ओर देखकर) वाह वाह प्रातःकाल की कैसी शोभा है ।

(भैरव)

भोर भयो लखि काम मात, श्रीरुकामिनि महलन जागीं ।
विकसे कमल उदय भयो रवि को, चकइनि अति अनुरागीं ॥
हंस हंसनी पंख हिलावत, सोइ पटह सुखदाई ।
आंगन धाइ धाइ कै भंवरी, गावत केलि बधाई ॥

(आगे देखकर) अहा शरद रितु कैसी सुहानी है ।

(भैरव) (वा ठुमरी)

सब कों सुखदाई अति मन भाई शरद सुहाई आई ।
कूजत हंस कोकिला फूले कमल सरनि सुखदाई ॥
सूखे पंक हरे भए तरुवर दुरे मेघ मग भूले ।
अमल इन्दु तारे भए सरिता कूल कास तरु फूले ॥
निर्मल जल भयो दिसा स्वच्छ भईं सो लखि अति अनुरागे ।
जानि परत हरि शरद विलोकत रतिश्रम आलस जागे ॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह चिट्ठी लिए कौन आता है ।

(एक मनुष्य चिट्ठी लाकर देता है)

(सूत्रधार खोलकर पढ़ता है)

" परम प्रसिद्ध श्रीमहाराज जयदेव जी

दान देन मैं समर मैं, जिन न लही कहुं हारि ।
केवल जग मैं विमुख किय, जाहि पराई नारि ॥

जाके जिय में तूल सो, तुच्छ दोष निरधार।
खीझे अरि को प्रबल दल, रीझे कनक पहार॥

वह प्रसन्न होकर रंगमंडन नामक नट को आज्ञा करते हैं।

अलसाने कछु सुरत श्रम, अरुन अधखुले नैन।
जगजीवन जागे लखहु, दैन रमा चित चैन॥
सरद देखि जब जग भयो, चहुंदिसि महा उछाह।
तौ हमहूं को चाहिए, मंगल करन सचाह॥

इस्से तुम वीर रस का कोई अद्भुत रूपक खेल कर मेरे गदाधर इत्यादि साथियों को प्रसन्न करो" ऐसा कौन सा रूपक है (स्मरण करके) अरे जाना॥

कवि सुनि कै सब शिशुन कौं, धारि धाय सी प्रीति।
सिखवत आप सरस्वती नित, बहु विधि की नीति॥
ताही कुल में प्रगट भे, नारायण गुणधाम।
लह्यौ जीति बहु वादि गन, जिन वादीश्वर नाम॥
अभय दियो जिन जगत कौं, धारि जोग सन्यास।
पै भय इक रवि कौं रह्यौ, मंडल तें न त्रास॥
तिनके सुत सब गुन भरे, कविवर कांचन नाम।
जाकी रसना मनु सकल, विद्या गन को धाम॥

तो उस कवि का बनाया धनंजय विजय खेलें।

(नेपथ्य की ओर देखकर) यहां कोई है॥

(पारिपार्श्वक आता है)

पा०।—कौन नियोग है कहिए॥

सू०।—धनंजय विजय के खेलने में कुशल नटवर्ग को बुलाओगे॥

पा०।—जो आज्ञा (जाता है)

सू०।—(पश्चिम की ओर देखकर)

सत्य प्रतिज्ञा करन कौं, छिप्यो निसा अज्ञात।
तेजपुंज अरजुन सोई, रवि सो कढत लखात॥

(विराट के अमात्य के साथ अर्जुन आता है)

अ०।—(उत्साह से) दैव अनुकूल जान पड़ता है क्योंकि—

जो औषध खोजत रहे, मिलै सु पगतल आइ।
बिना परिश्रम तिमि मिल्यौ, कुरुपति आपुहि धाइ॥

सू० ।—(हर्ष से देखकर) अरे यह श्यामलक तो अरजुन का भेस लेकर आ पहुंचा तो अब मैं और पात्रों को भी चलकर बनाऊं ॥

(जाता है)

इति प्रस्तावना ॥

अ० ।—(हर्ष से)

गोरचन रिपु मान वध , नृप विराट को हेत ।
समर हेत इक बहुत सम , भाग मिल्यौ या खेत ॥

और भी ।

बढ़े मनोरथ फल सुफल , बढ़े महोत्सव हेत ।
जो मानी निज रिपुन सों , अपुनो बदलो लेत ॥

अमा० ।—देव यह आप के योग्य संग्राम भूमि नहीं है ।

जिन निवात कवचन बध्यौ , कालकेय दिय दाहि ।
शिव तोख्यौ रन भूमि जिन , ये कौरव कह ताहि ॥

अ० ।—वाह सुयोधन वाह ! क्यों न हो ।

लह्यौ बाहुबल जीति कै , जो तुव पुरखन राज ।
सो तुम जूआ खेलि कै , जीत्यौ सहित समाज ॥
अब भीलन की भांति इमि , छिपि कै चोरत गाय ।
कुल गुरु ससि तुव नीचपन , लखि कै रह्यौ लजाय ॥

अमा० ।—देव !

जदपि चरित कुरु नाथ , के ससि सिर देत झुकाय ।
तऊ रावरो बिमल जस , राखत ताहि उचाय ॥

अ० ।—(कुछ सोचकर) कुमार नगर के पास धरे हुए अस्त्रों को लेने रथ पर बैठकर गया है सो अब तक क्यों नहीं आया ?

(उत्तराकुमार आता है.)

कु० ।—देव आप की आज्ञानुसार सब कुछ प्रस्तुत है अब आप रथ पर विराजिए ॥

अ० ।—(अस्त्र बांधकर रथ पर चढ़ना नाट्य करता है)

अमा० ।—(विस्मय से अर्जुन को देखकर)

रनभूषन भूषित सुतन , गत दूखन सब गात ।

सरद सूर सम घन रहित , सूर प्रचंड लखात ॥

(नायक से)

दच्छिन खुर सहि मरदि हय , गरजहिं मेघ समान ।
उड़ि रथ धुज आगी बढ़हिं , तुव वस विजय निसान ॥

अ० ।—अमात्य ! अब हम लोग गऊ छुड़ाने जाते हैं आप नगर में जाकर गो हरण से व्याकुल नगर वासियों को धीरज दीजिए ॥

अमा० ।—महाराज जो आज्ञा (जाता है)

अ० ।—(कुमार से) देखो गऊ दूर न निकल जाने पावैं घोड़ों को कस के हांको ॥

कु० ।—(रथ हांकना नाट्य करता है)

अ० ।—(रथ का वेग देखकर)

लीकहु नहि लखिपरत चक्र की ऐसे धावत ।
दूर रहत तरु वृन्द छनक मैं आगे आवत ॥
जदपि वायु बल पाइ धूरि आगे गति पावत ।
पै हय निज खुर वेग पीछहीं मारि गिरावत ॥
खुर मरदित महि चूमहिं सनहु धाइ चलहिं जब वेग गति ।
मनु होड़ जीत हित चरन सों आगेहि मुख बढ़ि जात अति ॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे अरे अहीरो सोच मत करो क्योंकि—

जबलौं बछरा कामना करि सहि थन नहिं खैहैं ।
जबलौं जननी बाट देखि कै नहिं डकरैंहैं ॥
जबलौं पय पीअनहित ते नहिं व्याकुल ह्वैहैं ।
ताके पहिलेहि गाय जीति कै हम ले ऐहैं ॥

(नेपथ्य में) बड़ी कृपा है ॥

कु० ।—महाराज ! अब लेलिया है कौरवों की सेना को क्योंकि—

हय खुर रज सों नभ छयो , वह आगे दरसात ।
मनु प्राचीन कपोत गल , सान्द्र सुरुचि सरसात ॥
करिवर मद धारा तिया , रमत रसिक जो पौन ।
सोई केलिमद गंधले , करत इतैही गौन ॥

अ० ।—वह देखो कौरवों की सेना दिखा रही है ॥

चपल चंवर चहुंओर चलहिं सित छत्र फिराहीं ।

उड़हिं गीधगन गगन जबै भाले चमकाहीं ॥
घोर संख के शब्द भरत बन मृगन डरावति ।
यह देखो कुरुसेन सामने धावति आवति ॥

(बांह की ओर देखकर उत्साह से ।

बनबन धावत सदा धूर धूसर जो सोहीं ।
पंचाली गल मिलन हेतु अबलौं ललचौंहीं ॥
जो जुवती जन बाहु वलय मिलि नाहिं लजाहीं ।
रिपुगन ! ठाढ़े रहो सोई मम भुज फरकांहीं ॥

(नेपथ्य में)

फेरत धनु टंकारि दरप शिव सम दरसावत ।
साहस को मनु रूप काल सम दुसह लखावत ॥
जय लच्मी सम वीर धनुष धरि रोष बढ़ावत ।
को यह जो कुरुपतिहि गिनत नहिं एतहीं आवत ॥

(दोनों कान लगाकर सुनते हैं)

कु० ।—महाराज यह किस के बड़े गम्भीर वचन हैं ॥
अ० ।—हमारे प्रथम गुरु कृपाचार्य्य के ।

(फिर नेपथ्य में)

शिव तोषन खांडव दहन सोई पांडव नाथ ।
धनु खींचत घट्टा पड़े दूजे काके हाथ ॥
छूटि गये सब शस्त्र तबौं धीरज उर धारे ।
बाहु मात्र अवशेष दुगुन हिय क्रोध पसारे ॥
जाहि देखि निज कपट भूलि ह्वै प्रगट पुरारी ।
साहस पै बहु रीझि रहे आपुनरो हारी ॥

अरे यह निश्चय अर्जुन ही है क्योंकि—

सागर परम गंभीर नघ्यो गोपद सम छिन में ।
सीता विरह मिटावन की अद्भुत अति जिन में ॥
जारी जिन तृन फूस हूस सी लंका सारी ।
रावन गरब मिटाइ हने निसिचर बहु भारी ॥
श्रीराम मान सम वीर वर भक्त राज-सुग्रीव प्रिय ।
सोई वायुतनय धुज बैठिके गरजि डरावत शत्रुहिय ॥

[दोनों सुनतहैं ।]

कु० ।—आयुष्मान् ।

भरी वीर रस सों कहत , चतुर गूढ़ अति बात ।
पच्छपात सुत सो करत , को यह तुम पैं तात ॥

अ० ।—कुमार ! यह तो ठीक ही है, पुत्र सा पच्छपात करता है यह क्यों कहते हो ! मैं आचार्य्य का तो पुत्र ही हूं ।

(नेपथ्य में)

करन ! गहो धनु वेग, जाहु छप ! आगें धाई ।
द्रोन ! अस्त्र भृगुनाथ लहे सब रहो चढ़ाई ॥
अश्वत्थामा ! काज सबै कुरुपति को साधहु ।
दुरमुख ! दुस्सासन ! विकर्ण ! निज व्यूहन बांधहु ॥
गंगासुत शान्तनुतनय वर भीष्म क्रोध सों धनु गहत ।
लखि शिव शिच्छित रिपु सामुहें तानि वान छांड़ो चहत ॥

अ० ।—(आनन्द से) अहा ! यह कुरुराज अपनी सैन्य को बढ़ावा दे रहा है ।

कु० ।—देव ! मैं कौरव योधाओं का स्वरूप और बल जानना चाहता हूं ।

अ० ।—देखो इसके ध्वजा के सर्प के चिन्ह ही से इसकी टेढ़ाई प्रगट होती है ।

चन्द वंश को प्रथम कलह अंकुर एहि मानो ।
जाके चित सौजन्य भाव नहिं नेकु लखानो ॥
विष जल अगिन अनेक भांति हमको दुख दीनो ।
सो यह आवत ढीठ लखो कुरुपति मति हीनो ॥

कु० ।—और यह उसके दहिनी ओर कौन है ।

अ० ।—(आश्चर्य्य से)

जिन छिडम्ब अरि रिसि भरे , लखत लाज भय खोय ।
कृष्णा पट खींच्यो निलज , यह दुस्सासन सोय ॥

कु० ।—अब इससे बढ़ कर और क्या साहस होगा ।

अ० ।—इधर देखो (हाथ जोड़ कर प्रणाम करके)

कंचन वेदी बैठि बड़ोपन प्रगट दिखावत ।
सूरज को प्रतिबिंब जाहि मिलि जाल तनावत ॥
अस्त्र उपनिषद भेद जानि भय दूर भजावत ।
कौरव कुल गुरु पूज्य द्रोन आचारज आवत ॥

कु० ।—यह तो बड़े महानुभाव से जान पड़ते हैं ।

अ० ।—इधर देखो ।

सिर पैं वांको जूट जटा मंडित छवि धारी ।
अस्त्र रूप मनु आप दूसरो दुसह पुरारी ॥
अतुन कीं नित अजय मित्र को पूरन कामा ।
गुरु सुत मेरो मित्र लखो यह अश्वत्थामा ॥

कु० ।—हां और बताइये ।

अ० ।—धनुर्वेद को सार जिन , घट भरि पूरि प्रताप ।
कनक कलश करि धुज धयो , सो कृप कुरु गुरु आप ।

कु० ।—और यह कुरुराज के सामने लड़ाई के हेतु फेंट कसे कौन खड़ा है ।

अ० ।—(क्रोध से)

सब कुरुगन को अनय वीज अनुचित अभिमानी ।
भृगुपति छलि लहि अस्त्र वृथा गरजत अघखानी ॥
सूत सुअन विनु बात दरप अपनो प्रगटावत ।
इन्द्रशक्ति लहि गर्व भरो रन कीं इत आवत ॥

कु० ।—(हंस कर) इनका सब प्रभाव घोष यात्रा में प्रगट हो चुका है
(दूसरी ओर दिखा कर) यह किसका ध्वज है ।

अ० ।—(प्रणाम करके)

परतिय जिन कबहूं न लखो निज व्रतहि दृढ़ाई ।
श्वेत बेस मिस सौं कीरति मनु तन लपटाई ॥
परशुराम को तोष भयो जा सर के त्यागे ।
तीन पितामह भीष्म लखो यह आवत आगे ।
सूत घोड़ों को बढ़ाओ ।

(नेपथ्य में)

समर विलोकन कौं जुरे , चढ़ि बिमान सुर धाइ ।
निज बल बाहु विचित्रता , अरजुन देहु दिखाइ ॥

(इन्द्र, विद्याधर और प्रतिहारी आते हैं)

इन्द्र ।—आश्चर्य से ।

बातहु सौं झगरे बली , तौ निबलन भय होय ।
तौ यह दारुनयुद्ध लखि , क्यौं न डरें जिय खोय ॥
एक रथी इक ओर उत , बली रथी समुदाय ।

तोहू सुत तू धन्य अरि, इकलो देत भजाय ।

कृ० ।—(आगे देख कर) देव कौरव राज यह चले आते हैं ।

अ० ।—तो सब मनोरथ पूरे हुए ।

(रथ पर बैठा दुर्योधन आता है)

दु० ।—(अर्जुन को देख कर क्रोध से)

बहु दुख सहि बनबास करि, जीवन सों अकुलाय ।
मरन हेतु आयो इतै, इकलो गरब बढ़ाय ॥

अ० ।—(हंस कर)

कालकेय बधिकै निवातकवचन कहं मार्‍यौ ।
इकले खांडव दाहि उमापति युद्ध प्रचार्‍यौ ॥
इकले ही बल कृष्ण लखत भगिनी हरि छिनी ।
अरजुन की रन नांहि नई इकली गति लीनी ॥

दु० ।—अब हंसने का समय नहीं है क्योंकि अंधाधुंध घोर संग्राम का समय है ।

अ० ।—(हंसकर)

दूर रहौ कुरुनाथ नांहि यह छल जूआ इत ।
पापी गन मिलि द्रौपदि को दासी कीनी जित ॥
यह रण जूआ जहां बान पासे हम डारैं ।
रिपु गन सिर को गोंट जीति आपुने बल सारैं ॥

दु० ।—(क्रोध से)

चूड़ी पहिरन सों गयो, तेरो सर अभ्यास ।
नर्त्तन साला जाव किन, इत पौरुष परकास ॥

कु० ।—(मुंहचिढ़ाकर) आर्य्य यह आप ठीक कहते हैं कि इनका बहुत दिन से धनुष चलाने का अभ्यास छूट गया है ।

जब बन में गन्धर्व गनन तुमकों कसि बांध्यौ ।
तब करि अग्रज नेह गरजि जिन तहं सर साध्यौ ॥
लीन्हें तुम्हें छुड़ाइ जीति सुर गन छिन मांहीं ।
तब तुम शर अभ्यास लख्यौ बिह्वल ह्वै नांहीं ॥

विद्या० ।—देव यह बालक बड़ा ढीठा है ।

दु० ।—क्यों न हो राजा का लड़का है ।

दु० ।—सूत ! ब्राह्मणों की भांति इस कोरी बकवाद में फल क्या है । यह पृथ्वी ऊंची नीची है इस्से तुम अब समान पृथ्वी पर रथ ले चलो।

अ० ।—जो युवराज की इच्छा (दोनों रथ जाते हैं)

विद्या० ।—(अर्जुन का रथ देखकर । देव !

तुव सुत रथ हय खुर कटी , समर धूरि नभ जौन ।
अरि अरनी मन्थन अगिनि , धूम लेख सो तौन ॥

इं० ।—क्यों न हो तुम महा कवि हो ।

विद्या० ।—देव ! देखिए अर्जुन के पास पहुंचते ही कौरवों में कैसा कोलाहल पड़ गया देखिए ।

हय हिनहिनात अनेक गज सर खाइ घोर चिकारहीं ।
बहु बजहिं बाजे मार धरु धुनि दपटि बीर उचारहीं ॥
टंकार धनु की होत घंटा बजहिं सर संचारहीं ।
सुनि सबद रन को बरन पति सुरबधू तन सिंगारहीं ॥

मति० ।—देव ! केवल कोलाहल ही नहीं हुआ वरन आप के पुत्र के उधर जाते ही सब लोग लड़ने को भी एक संग उठ दौड़े, देव ! देखिए अर्जुन ने कान तक खींच खींच कर जो बान चलाए हैं उस्से कौरव सैना में किसी के अंग भंग हो गए हैं किसी के धनुष दो टुकड़े हो गए हैं किसी के सिर कट गए हैं किसी की आंखें फूट गई हैं किसी की भुजा टूट गई हैं किसी की छाती घायल होरही है ।

इन्द्र ।—(हर्ष से) वाह बेटा अब लेलिया है ।

विद्या० ।—देव देखिए देखिए ।

गज जूथ सोई घन घटा मद धार धारा सरतजे ।
तरवार चकमनि बीजु की दमकनि गरज बाजन बजे ॥
गोली चलें जुगनू सोई बक हन्द ध्वज बहु सोहई ।
कातर बियोगिन दुखद रन की भूमि पावस नभ भई ॥
तुव सुत सर तहि मद गलित , दन्त केतकी होय
धावत गज जिनकों लखें , हथिनी को भ्रम होय

इन्द्र ।—(सन्तोष से)

हर सिच्छित सर रीति जिन , कालकेय दिय दाहि ।
जो जदुनाथ संनाथ वाह ; कौरव जीतन ताहि ॥

प्रति० ।—महाराज देखैं ।

काटे मुंड मुंडन के झुंड में लगाय तुंड रुंड मुंड पान करैं लेहू भूत चेटी हैं ।
घोड़न चबाइ दरजीन सों अघाय लेटीं सूख सब मरे सुरदान मैं समेटी हैं ॥
लाल अंग कीनें सीस हाथन में लीने अस्थि भूखन नवीने आंत जिनपै लपेटी हैं ।
हरख बढ़ाय आसुरीन को नचाय पियैं सोनित पियासी सी पिसाचन की बेटी हैं ॥

विद्या० ।—देव देखिये ।

हिलन धुजा'सिर ससि चमक, मिलि कै व्यूह लखात ।
तुव सुत सर लगि घूमि जब, गज गन मंडल खात ॥

इन्द्र ।—(आनन्द से देखता है)

प्रति० ।—देव, देखिये देखिये आप के पुत्र के धनुष से छूटे हुए बानों से मनुष्य और हाथियों के अंग कटने से जो लहू की धारा निकलती है उसे पी पी कर यह जोगिनियें आप के पुत्र ही की जीत मनाती हैं ।

इन्द्र० ।—तो जय ही है क्योंकि इन की असीस सच्ची है ।

विद्या० ।—(देखकर) देव अब तो बड़ा ही घोर युद्ध हो रहा है देखिए ।

विरचि नली गज सुंड की, काटि काटि भट सीस ।
रुधिर पान करि जोगिनी, विजयहि देहिं असीस ॥
टूटि गई दोउ भौंह खेद सों तिलक मिटाए ।
नयन पसारे लाल क्रोध सों ओठ चबाए ॥
कटे कुंडलन मुकुट बिना अोइत दरसाए ।
वायु वेग बस केस मूंछ दाढ़ी फहराए ॥
तुव तनय बान लगि बैरि सिर एहि विधि सों नभ में फिरत ।
तिन संग काक अरु कंक बहु रंक भए धावत गिरत ॥
[बड़े आश्चर्य से इधर उधर देखकर] देव देखिए ।
सीस कटे भट सोहहीं, नैन जुगल बल लाख ।
बरहिं तिनहिं नाचहिं हंसहिं, गावहिं नभ सुर बाल ॥

इन्द्र० ।—[हर्ष से] मैं क्या क्या देखूं मेरा जी तो बावला हो रहा है ।

इत लाखन कुरु संग लरत, इकलो कुंती नंद ।
उत बीरन कों बरन कों, लरहिं अपसरा वृन्द ॥

विद्या० ।—ठीक है [दूसरी ओर देखकर] देव ! इधर देखिए ।

लपटि दपटि चहुं दिसन बाग बन जीव जरावत ।

ज्वाला माला लोल लहर भुज सी फहरावत ॥
परम भयानक प्रगट प्रलय सम समय लखावत ।
गंगा सुत कृत अगिनि अस्त्र उमग्यो ही आवत ॥

प्रति० ।—देव ! मुझे तो इस कड़ी आंच से डर लगती है ।

विद्या० ।—भद्र ! व्यर्थ क्यों डरता है भला अर्जुन के आगे यह क्या है ? देख ।

अर्जुन ने यह वरुन अस्त्र जो वेग चलायो ।
तासों नभ मैं घोर घटा को मंडल छायो ॥
उमड़ि उमड़ि करि गरज बीजुरी चमकि डरायो ।
मुसलधार जल बरसि छिनक मैं ताप बुझायो ॥

इन्द्र ।—बालक बड़ा ही प्रतापी है ।

प्रति० ।—देव ! राधेय ने यह भुजंगास्त्र छोड़ा है देखिए अपने मुहों से आग सा विष उगलते हुए अपने सिर की मणियों से चमकते हुए इन्द्रधनुष से पृथ्वी को व्याकुल करते हुए देखने ही से वृक्षों को जलाते हुए यह कैसे कैसे डरावने सांप निकले चले आते हैं ।

विद्या० ।—दुष्ट मनोरथ सरिस लसैं लांबे दुखदाई ।
टेढे जिमि खल चित्त भयानक रहत सदाई ॥
वमत वदन विष निन्दक सो मुख कारिख लाए ।
पच्छिगन नभ मैं लखहु धाइ कै चहुं दिस छाए ॥

इन्द्र ।—क्या खांडव वन का बैर लेने आते हैं ?

विद्या० ।—आप शोच क्यों करते हैं देखिये अर्जुन ने गारुड़ास्त्र छोड़ा है ।

निज कुल गुरु तुव पुत्र सारथिहि तोष बढ़ावत ।
झपटि दपटि गहि अहिन टूक करि गाम मिलावत ॥
बादर से उड़ि खींचि खींचि दोउ पंख हिलावत ।
गरुड़न को गन गगन छयो अहिं हियो डरावत ॥

इन्द्र ।—(हर्ष से) हां तब ।

प्रति० ।—देखिये यह दुर्योधन के वाक्य से पीड़ित हो कर द्रोणाचार्य ने आप के पुत्र पर वारणास्त्र छोड़ा है ।

विद्या० ।—(देखकर) वैनायक अस्त्र चल चुका, देखिए ।

रंगे गंड सिंदूर सों, घहरत घंटा घोर ।
निज मद सों सींचत धरनि, गरजि चिकारहिं जोर ॥

सूंड फिरावत सीकरन, धावत भरे उमंग।
छावत आवत घन सरिस, मरदत मनुज मतंग॥

इन्द्र।—तब तब।

विद्या०।—तब अर्जुन ने नरसिंहास्त्र छोड़ा है देखिए।

गरजि गरजि जिन छिन में गर्भिनि गर्भ गिरायो।
काल सरिस मुख खोलि दांत बाहर प्रगटायो॥
मारि थपेड़न गंड सुंड को मांस चबायो।
उदर फारि चिक्कारि रुधिर पौसरा चलायो॥
करि नैन अगिनि सम मोछ फहराइ पोंछ टेढ़ी करत।
गल केसर लहरावत चल्यौ क्रोधि सिंह दल दल दलत॥

इन्द्र।—तो अब जय होने में थोड़ी ही देर है।

विद्या०।—देव! कहिए कि कुछ भी देर नहीं है।

गंगा सुत के बधि तुरग, द्रोन सूत हति खेत।
करन रथहि करि खंड बहु, कृप कहं कियो अचेत॥
और भजाई सैन सब, द्रोनसुवन धनु काट।
तुव सुत जोहत अब खड़ो, दुरजोधन की बाट॥

प्रति०।—दुर्योधन का तो बुरा हुआ।

विद्या०।—नहीं।

व्याकुल तुव सुत बान सों, विमुख भयो रनकाज।
मुकुट गिरन सों क्रोध करि, फिरयो फेर कुरुराज॥

[नेपथ्य में]

सुन सुन कर्ण के मित्र।

सभा मांहि लखि द्रौपदिहि, क्रोध अतिहि जिय लेत।
अग्रज परतिज्ञा करी, तुव उरु तोड़न हेत।
ताही सों तोहि नहिं बध्यौ, न तरु अबै कुरु ईस।
जा सर सों तोर्यो मुकुट, तासों हरतो सीस॥

प्रति०।—देव अपने पुत्र का बचन सुना।

इन्द्र।(—विस्मय से)

दैव भए अनुकूल तें, सब ही करत सहाय।
भीम प्रतिज्ञा सों बच्यौ, अनायास कुरुराय॥

विद्या० ।—देव ! दुर्योधन के मुकुट गिरने से सब कौरवों ने क्रोधित हो कर अर्जुन को चारो ओर से घेर लिया है।

इन्द्र ।—तो अब क्या होगा ।

विद्या० ।—देव अब आप के पु स्वप्नास्त्र चलाया है ।

नाक बोलावत धनु किए, तकिया मूंदे नैन ।
सब अचेत सोए भई, मुरदा सी कुरु सैन ॥

इन्द्र ।—युद्ध से थके वीरों को सोना योग्य ही है ।

हां फिर—

विद्या० ।—एक पितामह छोड़ि कै, सब को नांगो कीन ।
बांधि अंधेरी आंख मैं, मूड़ि तिलक सिर दीन ॥
अब जागे भागे लखौ, रह्यौ न कोऊ खेत ।
गोधन लै तुव सुत अवै, ग्वालन देखौ देत ॥
शत्रु जीति निज मित्र को, काज साधि सानन्द ।
पुरजन सौं पूजित लखौ, पुर प्रविसत तुवनन्द ॥

इन्द्र ।—जो देखना था वह देखा ।

(रथ पर बैठे अर्जुन और कुमार आते हैं)

अ० ।—(कुमार से) कुमार ।

जो मो कहं आनन्द भयो, करि कौरव बिनु सैम ।
तुव तनको बिनु घाव लखि, तासों मोद बिसेस ॥

कु० ।—जब आप सा रक्षक हो तो यह कौन बड़ी बात है ।

इन्द्र ।—(आनन्द से) जो देखना था वह देख चुके ।

(विद्याधर और प्रतिहारी समेत जाता है)

अ० ।—(सन्तोष से) कुमार ।

करी सबन बिनु द्रौपदी, इन सब सभा बुलाय ।
सो हम इनको वस्त्र हरि, बदलो लीन्ह चुकाय ॥

कु० ।—आप ने सब बहुत ठीक ही किया क्योंकि—

बरु रन मैं मरनों भलो, पाछे सब सुख सोव ।
निज अरि सों अपमान हिय, खटकत जब लौं जीव ॥

अ० ।—(आगे देख कर) अरे अपने भाइयों और राजा विराट समेत आर्य्य धर्म्मराज इधर ही आते हैं ।

(तीनों भाई समेत धर्म्मराज और विराट आते हैं)

धर्म्म० ।—मत्स्यराज ! देखिये ।

धूर धूसरित अलक सब, मुख श्रमकन झलकात ।
श्रमम समर करि थकित पै, जय सोभा प्रगटात ॥

विरा० ।—सत्य है ।

द्विज सोहत विद्या पढ़ैं, छत्री रन जय पाय ।
लच्छी सोहत दान सों, तिमि कुल बधू लजाय ॥

अ० ।—(घबड़ा कर) अरे क्या भैया आ गए (रथ से उतर कर दंडवत करता है)

सब ।—(आनन्द से एक ही साथ) कल्यान हो—जीते रहो ।

धर्म्म० ।—

इकले सिव खट पुर दह्यौ, निसचर मारे राम ।
तुम इकले जीत्यौ कुरुन, नहिं अब चौथे नाम ॥

अ० ।—(सिर झुका कर हाथ जोड़ कर) यह केवल आप की कृपा है ।

विरा० ।—(नेपथ्य की ओर हाथ से दिखा कर) राजन् देखो ।

मिलि बछरन सों धेनु सब, श्रवहिं दूध की धार ।
तुव उज्जल कीरति मनहुं, फैलत नगर मंझार ॥

और

खींचौ कृष्णा केस जो, समर मांहि कुरुराज ।
सो तुम मुकुट गिराइ कै, बदलो लीन्हों आज ॥

भीम०।—(सुन कर क्रोध से) राजन् अभी बदला नहीं चुका क्योंकि—

तोरि गदा सों हृदय दुष्ट दुस्सासन केरो ।
तासों ताजो सद्य रुधिर करि पान घनेरो ॥
ताही कर सों कृष्णा की बेनी बंधवाई ।
भीमसैन ही सो बदलो लैहै चुकवाई ॥

धर्म० ।—बेटा तुम्हारे आगे यह क्या बड़ी बात है ।

सौगन्धिक तोरयौ छनक, कियो हिड़म्बहि घात ।
हत्यौ बकासुर जिन सहज, तेहि केती यह बात ॥

भीम० ।—(विनय से) महाराज सुनिय अब हम क्षमा नहीं कर सकते ।

धर्म्म० ।—बेटा क्षमा के दिन गए युद्ध के दिन आए अब इतना मत घबड़ाओ ।

विरा० ।—(युधिष्ठिर से)

तुव सरूप जाने विना, कियो अनेकन काज ।
जोग अजोग अनेक विध, सो छमिये महराज ॥

अ० ।—राजन् यह उपकारही हुआ अपकार कभी नहीं हुआ । क्योंकि—

जो अजोग करते न हम, सेवा है तुव दास ।
तौ कोउ विधि छिपतो न यह, मम अज्ञात निवास ॥

विरा० ।—(अर्जुन) से राजपुत्र ।

मात चरनहूं संग चलै, मित्र भए हम दोय ।
तासों मागत—उत्तरा, पुत्रबधु तुव होय ॥

अ० ।—आप की जो इच्छा । क्योंकि—

आपु आवती लच्छमी, को मूरख नहिं लेत ।
सोऊ बिन मागे मिलै, तो केवल हरि हेत ॥

विरा० ।— और भी मैं आप का कुछ प्रिय कर सकता हूं ।

अ० ।—अब इससे बढ़ कर क्या होगा ।

मत्रु सुजोधन सों लही, करन सहित रन जीत ।
गाय फेरि लाए सबै, पायो तुमसो मीत ॥
लही बधू सुत हित भयो, सुख अज्ञात निवास ।
तो अब का नहीं हम लह्यो, जाको राखैं आस ॥

तौ भी यह भरत वाक्य सत्य हो ।

राज वर्ग मद छोड़ि निपुन विद्या में होई ।
आलस मूरखतादि तजैं भारत सब कोई ॥
पंडित गन पर कृति लखि के मति दोष लगावैं ।
छुटै राज कर मेघ समै पै जल बरसावैं ॥
कजरी ठुमरनि सों मोरि मुख सत कविता सब कोउ कहै ।
हिय भोगवती सम गुप्त हरि प्रेम धार नितही बहै ॥

और भी

"सौजन्याम्बुतसिन्धवः परहितप्रारब्धवीरव्रताः ।
वाचालाः परवर्णने निजगुणालापे च मौनव्रताः ॥
आपत्स्वप्यविलुप्तधैर्यनिचयास्सम्पत्स्वनुत्सेकिनो ।
माभूवन् खलवक्त्रनिर्गतविषम्लानाननास्सज्जनाः"

विरा०।—तथास्तु।

(सब जाते हैं)

श्रीधनंजय विजय नाम का व्यायोग श्री हरिश्चन्द्र अनुवादित समाप्त हुआ॥

☞ विदित हो कि यह जिस पुस्तक से अनुवाद किया गया है वह सम्वत् १५२७ की लिखी है और इसी से बहुत प्रमाणिक है इस्से इस के सब पाठ उसी के अनुसार रक्खे हैं।

॥ कर्पूरमंजरी ॥

सट्टक

(यह सट्टक शुद्ध प्राकृत भाषा में राजशेखर कवि का बनाया हुआ है। इस की केवल एक अति प्राचीन प्रति मिली थी। उसी प्रति के कथाभाग से यह निर्मित हुआ।)

कर्पूर-मञ्जरी।

सट्टक।

दोहा।

भरित नेह नव नीर नित , बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ , लखि नाचत मन मोर॥

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार।—(घूम कर) हैं क्या हमारे नट लोग गाने बजाने लगे? यह देखो कोई सखी कपड़े चुनती है कोई माला गूंथती है कोई परदे बांधती है कोई चन्दन घिसती हैं; यह देखो बंसी निकली यह बीन की खोल उतरी यह तीन मृदङ्ग मिलाए गए यह मंजीरा झनका, यह धुरपद गाया गया (कुछ ठहर कर) किसी को बुला कर पूछैं तो (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे कोई है? (पारिपार्श्वक आता है)

पा०।—कहो क्या आज्ञा है।

सूत्र०।—[सोच कर] क्या खेलने की तयारी हुई?

पारि०।—हां, आज सट्टक न खेलना है।

सूत्र०।—किस का बनाया?

पारि०।—राज्य की शोभा के साथ अंगों की शोभा का; और राजाओं में बड़े दानी का अनुवाद किया।

सूत्र०।—[विचार कर] यह तो कोई कूट सा मालूम पड़ता है [प्रगट] हां हां राजशेखर का और हरिश्चन्द्र का।

पारि०।—हां उन्हीं का।

सूत्र०।—ठीक है, सट्टक में यद्यपि विष्कम्भक प्रवेशक नहीं होते तब भी नाटकों में अच्छा होता है [सोच कर] तो भला, कवि ने इसको संस्कृत ही में क्यों न बनाया प्राकृत में क्यों बनाया*।

पारि०।—आप ने क्या यह नहीं सुना है।

---

* कर्पूर मञ्जरी नाटक सम्पूर्ण प्राकृत भाषा ही में हैं।

जामें रस कछु होत है , पढ़त ताहि सब कोय ।
बात अनूठी चाहिए , भाषा कोऊ होय ॥

और फिर ।

कठिन संसकृत अति मधुर , भाषा सरस सुनाय ।
पुरुष नारि अन्तर सरिस , इनमें बीच लखाय ॥

सूत्र० ।—तो क्या उस कवि ने अपना कुछ वर्णन नहीं किया ।

पारि० ।—क्यों नहीं उस समय के कवियों के चन्द्रमा अपराजित ही ने उस का बड़ा बखान किया है ।

निरभर बालक राज कवि , आदि अनेक कवीस ।
जाके सिखए तें भए , अति प्रसिद्ध अवनीस ॥
धवल करत चारहु दिसा , जाको सुजस अमन्द ।
सो शेखर कवि जग विदित , निज कुल कैरव चन्द ॥

सू० ।—पर भला आज तुमको किसने खेलने की आज्ञा दी है ।

पारि० ।—अवन्ती देश के राजा चाहुधान की बेटी उसी कवि की प्यारी स्त्री ने, और यह भी जान रक्खो कि इस सट्टक में कुमार चन्द्रपाल कुन्तल देस की राजकुमारी को व्याहैगा । तो अब चलो अपने २ स्वांग सजैं, देखो तुम्हारा बड़ा भाई देर से राजा की रानी का भेस धर कर परदे के आड़ में खड़ा है ।

[दोनों जाते हैं]

पहिला अङ्क ।

स्थान राजभवन ।

[राजा, रानी, विदूषक और दरबारी लोग दिखाई पड़ते हैं]

राजा ।—प्यारी तुम्हें बसन्त के आने की बधाई है, देखो अब पान बहुत नहीं खाया जाता, न सिर में तेल दे कर चोटी कस के गूंथी जाती है, वैसे ही चोली भी कस के नहीं बांधी जाती न केसर का तिलक दिया जा सकता है, इसी से प्रगट है कि बसन्त ने अपने बल से सरदी को अब जीत लिया ।

रानी ।—महाराज ! आप को भी बधाई है, देखिए कामी जन चन्दन लगाने

और फूलों की माला पहिरने लगे और दोहर पांयते रक्खी रहती है तो भी अब ओढ़ने की नौबत नहीं आती।

[नेपथ्य में दो बैतालिक गाते हैं।

जै पूरब दिसि कामिनी कंत। चंपावति नगरी सुख समंत॥
खेलत जीत्यौ जिन राढ़ देस। मोहत अनङ्ग लखि जासु भेस॥
क्रीड़ा मृग जाको सारदूल। तन बरन कान्ति मनु हेम फूल॥
सब अंग मनोहर महाराज। यह सुखद होइ रितुराज साज॥

मन्द मन्द लै सिरिस सुगन्धहिं सरस पवन यह आवै।
करि संचार मलय पर्वत पैं बिरहिन ताप बढ़ावै॥
कामिनि जन के बसन उड़ावत काम धुजा फहरावै।
जीवन प्रान दान सों बितरत वायु सबन मन भावै॥ १॥
देखहु लहि रितुराजहि उपवन फूली चारु चमेली।
लपटि रहीं सहकारन सों बहु मधुर माधवी बेली॥
फूले बर बसन्त बन बन मैं कहुं मालती नवेली॥
तापैं मदमाते से मधुकर गूंजत मधु रस रेली॥ २॥

राजा।—प्यारी हम लोग तो आपस में बसन्त की बधाई एक दूसरे को देते ही थे अब इन दोनों कांचनचन्द्र और रत्नचन्द्र बन्दियों ने हमें दोनों को बधाई दी। अब तुम इस बसन्तोत्सव की ओर दृष्टि करो। देखो कोइल कैसे पंचम सुर में बोलती है, हवा के झोंके से लता कैसी नाच रही हैं, तरुन स्त्रियों के जी में कैसा इस का उत्साह छा रहा है और सारी पृथ्वी इस बसन्त की वायु से कैसी सुहानी हो रही है।

रानी।—महाराज! बन्दी ने जैसा कहा है हवा वैसी ही बह रही है, देखिए यह पवन लङ्का के कनगूरों की पङ्क्ति में यद्यपि कैसा चञ्चल है पर अगस्त मुनि के आश्रम में उन के भय से धीरा चलता है, इस के झोंके से चन्दन कपूर कङ्कोल और केले के पत्ते कैसे झोंका खा रहे हैं; जङ्गलों में जहां तहां सांप नाचते हैं और ताम्रपर्णी नदी की लहरों को यह स्पर्श करता है तो उन्हें दूना कर देता है।

देखिये कोयल मानो कामदेव की आज्ञा से इस चैत के त्यौहार में पुकार रही है कि तरुणिओ झूठा मान छोड़ो, अपने प्यारे को प्यार की चितवन से देखो, और दौड़ दौड़ के पीतम को गले लगाओ, यह चार

दिन की जवानी तो बहती नदी है, फिर यह दिन कहां और यह समय कहां।

विदूषक।—अरे कोई मुझे भी पूछो, मैं भी बड़ा पंडित हूं, जब मैंने अपना मकान बनाया था तो हजारों गदहों पर लाद लाद कर पोथियां नेव में भरवाई गई थी और हमारे ससुर जनम भर हमारे यहां पोथी ही ढोते २ मरे, काले अच्छर दूसरों को तो कामधेनु हैं पर हमको भैंस हैं।

विचक्षणा।—इसी से तो तुम्हारा नाम लबार पांड़े है।

वि०।—[क्रोध से] हत तेरी को, दाई माई कुटनी लुच्ची मूर्ख! अब हम ऐसे हो गए कि मजदूरिनें भी हमें हसैं।

विच०।—तुम्हारी माई कुटनी है तभी तुम ऐसे सपूत हुए, तुमसे तो वे भाट अच्छे जो अभी गीत गा गए हैं, तुम्हें इतनी भी समझ नहीं है कि कुछ बनाओ और गाओ, यह सेखी यो तीन काने।

विदू०।—अब हम इन के सामने गावेंगे, इन का मुंह है कि हमारी कविता सुने, हां अगर हमारे दोस्त महाराज कुछ कहें तो अलबत्ते गाऊं।

राजा।—हां हां मित्र पढ़ो हम सुनते हैं।

विदू०।—[लाठी पर तमूरा बजा कर गाता है]।

आयो आयो बसंत आयो आयो बसंत। बन में महुआ टेसू फुलंत। नाचत है मोर अनेक भांति, मनु भैंसा का पड़वा फूलफालि॥ बेला फूले बन बीच बीच, मानो दही जमायो सींच सींच। बहि चलत भयो है मन्द पौन, मनु गदहा को छान्यो पैर॥

तारीफ और वाह वाह करते जाइए नहीं न गाया जायगा, देखिए संगीत साहित्य दोनों एक ही साथ करना मेरा ही काम है।

(गाता है)

गेंदा फूले जैसे पकौरि। लड्डू से फले फल बौरि बौरि॥
खेतन में फूले भात दाल। घर में फूले हम कुल के पाल॥
आयो आयो बसन्त आयो आयो बसन्त॥
हम बसन्त राजा बसन्त रानी बसन्त यह दाई भी बसन्त॥

(सब लोग हंसते हैं)

राजा।—भला इनकी कविता तो हो चुकी अब विचक्षणे तुम भी कुछ पढ़ो।

विदू०।—हां हां हमारी बोली पर हंसती है तो यह पढ़ै बड़ी बोलने वाली, इस को सिवाय टें टें करने के और आता क्या है, क्या ऐसी बदमाश

स्त्री राजा के महल में रहने के योग्य है ? यह रात दिन महारानी का गहना चुरा कर अपने मित्रों को दिया करती है और उस पर हमारे काव्य पर हंसती है, सच है बन्दर आदी का स्वाद क्या जाने, हमारे काव्य पर रीझने वाले महाराज हैं, तू क्या रीझेगी, अब देखते न हैं त कैसा काव्य पढ़ती है।

रानी।—हांहां सखी विचक्षणे हम लोगों के आगे तो तूने अपना बनाया काव्य कई बेर पढ़ा है आज महाराज के सामने भी तो पढ़, क्योंकि विद्या वही जिस की सभा में परीक्षा ली जाय और सोना वही जो कसौटी पर चढ़े और शस्त्र वही जो मैदान में निकले।

विचक्षणा।—महारानी की जो आज्ञा [पढ़ती है]

फूलैंगे पलास बन आगि सी लगाई कूर कोकिल कुहूकि कल सबद सुनावैगो। त्यौंही सखी लोक सबै गावैगो धमार धीर हरन अबीर बीर सब ही उड़ावैगो॥ सावधान होहुरे वियोगिनी सम्हारि तन अतन तनकही में तापन तें तावैगो। धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम कहर मचावत बसन्त अब आवैगो॥

राजा।—वाह वाह! सचमुच विचक्षणा बड़ी ही चतुर है और कविता समुद्र के पार हो गई है, यह तो सब कवियों की राजा होने योग्य हैं।

रानी।—[हंस कर] इस में कुछ सन्देह है हमारी सखी सब कवियों की सिरताज तो हुई।

विदू०।—[क्रोध से] तो महारानी स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं कि यह दासी विचक्षणा बहुत अच्छी हैं और कपिञ्जल ब्राह्मण बहुत निकम्मा है।

विचक्षणा।—हैं हैं! एक बारगी इतने लाल पीले हो गये, जो जैसा है उस का गुण तो उस के काव्य ही से प्रगट हो गया, तुम्हारे काव्य की उपमा तो ठीक ऐसी है जैसे लम्बस्तनी के गले में मोती की माला, बड़े पेटवाली को कामदार कुरती, सिर मुण्डी को फूलों की चोटी, और कानी को काजल।

विदू०।—सच है, और तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे सफेद फर्श पर गोबर का चोंथ, सोने की सिकड़ी में लोहे की घण्टी और दरियाई की अंगिया में मूंज की बखिया।

विचक्षणा।—खफा मत हो अपनी ओर देखो आप आप ही हो, एक अक्षर नहीं जानते तिस पर भी हीरा तौलते हो और हम सब पढ़ लिख कर भी अब तक कपास ही तौलती हैं।

विदू०।—बकबक किये ही जायगी तो तेरा दहिना और बायां युधिष्ठिर का बड़ा भाई उखाड़ लेंगे।

विचक्षणा।—और तुम भी जो टें टें किये ही जाओगे तो तुम्हारी भी स्वर्ग काट की एक ओर की पोंछ की अनुप्रास मुड़ देंगे और लिखने की सामग्री मुंह पोत कर पान के मसाले का टीका लगा देंगे।

राजा।—मित्र! इस के मुंह मत लगो यह कविताई में बड़ी पक्की है।

विदू०।—[क्रोध से] तो साफ साफ क्यों नहीं कहते कि हरिश्चन्द्र और पद्माकर इस के आगे कुछ नहीं हैं।

[क्रोध कर के इधर उधर घूमता है]

विचक्षणा।—चल् उसी खूंटी पर लटक् जिस पर मेरा लहंगा रक्खा है।

विदूषक।—[क्रोध कर के और सिर हिला के] और तू भी वहां जा जहां मेरी बुड्ढी मां के दांत गए। छिः! हम भी बड़े २ दरबार से निकाले गए पर ऐसी अंधेरी नगरी और चौपट राजा कहीं नहीं। यहां चरणामृत और शराब एक ही बरतन में भरे जाते हैं।

विचक्षणा।—भगवान करें इस दरबार से तुझे वह मिले जो महादेवजीके सिर पर है और तुझे वह शास्त्र पढ़ाया जाय जो कांटों को मर्दन करता है।

विदूषक।—लौंडिया फिर टेंटें किये ही जाती है, खजाना लूट लूट के खाली कर दिया इस पर भी मोढ़े पर बैठने वाली और गलियों में मारी २ फिरने वाली हम कुलीन ब्राह्मणों के मुंह लगती है। जा तुझको सर्वदा वही फांकना पड़े जो महादेव जी अङ्ग में पोतते हैं और तेरे हाथ सदा वही लगे जिस में धरम बंधता है।

विचक्षणा।—तेरे इस बोलने पर तो ऐसा जी चाहता है कि पान के बदले चरनदास जी से तेरा मुंह लाल कर दूं। फिट।

विदू०।—[बड़े क्रोध से ऊंचे स्वर से] ऐसे दरबार को दूर ही से नमस्कार करना चाहिए जहां लौंडियां पण्डितों के मुंह आवैं यदि हमें इसी उचक्की की बात सहनी हो तो हम बसुन्धरा नाम की अपनी ब्राह्मणी ही की न चरन सेवा करें जो अच्छा २ और गर्म गर्म खाने को खिलावे [ऐसा कहता हुआ क्रोध से चला जाता है] [सब लोग हंसते हैं]

रानी।—महाराज कपिंजल बिना ऐसी सभा हो गई, जैसे बिना काजल का शृङ्गार।

नेपथ्य में।

नहीं २ हम नहीं आवेंगी विचक्षणा को खसम और राजा को सुसाहब कोई दूसरा खोज लो या आज से हमरा काम वही गलितयौवना और चिपटे नाक कान वाली करेगी।

विचक्षणा।—महरानी! आप के आग्रह से यह कपिंजल और भी अंकड़ा जाता है जैसें मन की गांठ भिगानेसे उलटी कड़ी होती है उस को जाने दीजिए इधर देखिए यह गंवारिनों के गीतों और चांचर से मोहित सूर्य यद्यपि धीरे चलता है तौ भी अब कितना पास आ गया है।

(विदूषक घबड़ाया हुआ आता है)

विदूषक।—आसन आसन।

राजा।—क्यों।

विदूषक।—भैरवानन्द जी आते हैं।

राजा।—क्या वही भैरवानन्द जो आज कल के बड़े प्रसिद्ध सिद्ध हैं।

विदूषक।—हां हां।

(भैरवानन्द आते हैं)

भै० न०।—जंत्र न मंत्र न ज्ञान न ध्यान न जोग न भोग केवल गुरू का प्रसाद, पीने को मदिरा औ खाने को मांस सोने को स्त्री मसान का बास, लाख लाख दासी सब कड़े २ अङ्ग सेवा में हाजिर रहें पीए मद्य भङ्ग, भिच्छा का भोजन औ चमड़े का बिछौना लङ्का पलङ्का सातो दीप नवो खण्ड गौना, ब्रह्मा विष्णु महेश पीर पैगम्बर जोगी जती सती वीर महावीर हनूमान रावन महिरावन अकाश पताल जहां बांधू तहां रहे जो जो कहूं सो सो करे, मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच, दोहाई पशुपति नाथ की, दोहाई कामाक्षा की, दोहाई गोरख नाथ की।

राजा।—महाराज! प्रणाम।

भै० न०।—राजा! विष्णु और ब्रह्मा तप करते थक गए पर सिद्धि मद्य और स्त्री ही में है यह महादेव जी ही ने जाना है सो वह कापालिकों के परम कुलगुरु शिव तेरा कल्याण करैं।

राजा।—महाराज आसन पर विराजिए।

भै० न०।—हम रमते लोगों को बैठने से क्या काम तब भी तेरी खातिर से बैठते हैं। (बैठता है)—बोल क्या दिखावैं।

राजा।—महाराज कुछ आश्चर्य दिखाइए।

भैरवानन्द।—क्या आश्चर्य दिखलावें।

सूरज बांधू चन्दर बांधू बांधू अगिन पताल।
सेस समुन्दर इन्दर बांधू औ बांधू जम काल॥
जच्छ रच्छ देवन की कन्या बल से लाऊं बांध।
राजा इन्दर का राज डोलाऊं तो मैं सच्चा साध॥
नहीं तो जोगड़ा। और क्या।

राजा।—(विदूषक के कान में) मित्र, तुम ने कहीं कोई बड़ी सुन्दर स्त्री देखी हो तो बुलवावें।

विदूषक।—(स्मरण करके) हां! दच्छिण देश में विदर्भ नामक नगर है वहां मैंने एक लड़की बड़ी सुन्दर देखी थी वही बुलाई जाय।

भैरवानन्द।—बोल! बुलाई जाय।

राजा।—हां! महाराज॥ पूर्णमासी का चन्द्रमा पृथ्वी पर उतारा जाय।

भैरवानन्द।—(ध्यान करता है)

(परदे के भीतर से खिंची हुई की भांति एक सुन्दर स्त्री आती है और सब लोग बड़ा ही आश्चर्य करते हैं)

राजा।—(आश्चर्य से) अहाहा जैसे रूप का खजाना खुल गया, नेत्र कृतार्थ हो गए, यह रूप, यह जोबन, यह चितवन, यह भोलापन,—कुछ कहा नहीं जाता, मालूम होता है कि यह नहा कर बाल सुखा रही थी उसी समय पकड़ आई है, अहा! धन्य है इस का रूप!!! इस की चितवन कलेजे में से चित्त को जोराजोरी निकाले लेती है, इस की सहज शोभा इस समय कैसी भली मालूम पड़ती है, अहा इस के कपड़े से जो पानी की बूंदे टपकती हैं वह ऐसे मालूम होती हैं मानो भावी बियोग के भय से वस्त्र रोते हैं, काजल आंखों से धो जाने से नेत्र कैसे सुहाने हो रहे हैं, और बहुत देर तक पानी में रहने से कुछ लाल भी हो गए हैं, बाल हाथों में लिए है उस से पानी की बूंदे ऐसी टपकती है मानो चन्द्रमा का अमृत पीजाने से दो कमलों ने नागिनी को ऐसा दबाया है कि उन के पोंछ से अमृत बहा जाता है, भीगे वस्त्र से छोटे छोटे इस के कठोर कुच अपनी उंचाई और श्यामताई से यद्यपि प्रत्यक्ष हो रहे हैं तो भी यह उन्हें बांह से छिपाना चाहती है, और वैसेही गोरी गोरी जांघें इस की

चिपके हुए भींगे वस्त्र से यद्यपि चमकती हैं तौभी यह उन को दबाए देती है, वरञ्च इसी अंग उघरने से यह लजा कर चकपकानी सी भी हो रही है, और योग बल से खिंच आने से जो कुछ डर गई है, इस से और भी चौकन्नी हो होकर भूले हुए मृग छौने की भांति अपने चञ्चल नेत्र नचाती है।

स्त्री।—[चकपकानी सी हो कर एक एक को देखती है] (आपही आप) यह कौन पुरुष है जिस्का देह गम्भीर और मधुर छवि का मानों पुंज है, निश्चय यह कोई महाराज है, और यह भी महादेव के अङ्ग में पार्वती की भांति निश्चय इस की प्यारी महारानी हैं, और यह कोई बड़ा जोगी हैं, हो न हो सब इस की खेल है (विचार करके) यद्यपि यह एक स्त्री के बगल में बैठा है तौ भी मुझे ऐसी गहरी और तीखी दृष्टि से क्यों देखता है (राज की ओर देखती हैं।)

राजा।—(विदूषक से कान में) मित्र। अभी जो इसने अपने कानों को छूने वाली चञ्चल चितवन से मुझे देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि मानों मुझ पर किसी ने अमृत की पिचकारी चलाई वा कपूर बरसाया वा चांदनी से एक साथ नहला दिया या मोती का बुका छिड़का दिया।

बिदूषक।—सच है, अहाहा! वाहरे इस्के रूप की छवि, इस्की कमर एक लड़का भी अपनी मुट्ठी में पकड़ सक्ता है, और नेत्र की चञ्चलता देख कर पुरुष क्या स्त्री भी मोह जाती हैं, देखो यद्यपि इसने स्नान के हेतु गहना उतार दिया है तौ भी कैसी सुहानी दिखाई पड़ती है। सच है सुन्दर रूप को तो गहना ऐसा है जैसा निर्मल जल को काई।

राजा।—ठीक है इस्की छबि तो आपही कुन्दन की निन्दा करती है तो गहने से इसे क्या, इसका दुबला शरीर काम की परतंचा उतारी हुई कमान है, और इसके गोरे गोरे गोल गालों में कनफूल की परछाहीं ऐसी दिखाती है जैसे चांदी की थाली में भरे हुए मजीठ के रङ्ग में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब, इस्के कर्णावलम्बी नेत्र मेरे मन को अपनी ओर खींचे ही लेते हैं।

विदूषक।—[हंस कर] जाना जाना! बहुत बड़ाई मत करो।

राजा।—[हंस कर] मित्र! हम कुछ झूठ नहीं कहते, तुम्हीं देखो, यह विना आभूषण भी अपने गुणों से भूषित है। जो स्त्रियां ऐसी सुन्दर हैं उन पर पुरुष को आसक्त कराने में कामदेव को अपना धनुष नहीं चढ़ाना पड़ता, देखो इसकी चितवन में मिठास के साथ स्नेह भी झलकता है,

इसके कान में नीले कमल के फूल झूलते हुए ऐसे सुहाते हैं मानो चन्द्रमा में से दोनों ओर से कलंक निकाला जाता है।

रानी।—अजी कपिंजल! इनसे पूछो तो यह कौन हैं या मैंहीं पूछती हूं। (स्त्री से) सुन्दरी यहां आओ मेरे पास बैठो और कहो तुम कौन हो।

राजा।—आसन दो।

विदूषक।—यह मैं ने अपना दुपट्टा बिछादिया है बिराजो [स्त्री बैठती है]।

विदूषक।—हां अब कहो।

स्त्री।—कुन्तल देश में जो विदर्भनगर है वहां की प्रजा का वल्लभ, वल्लभ राज नामक राजा है।

रानी।—[आपही आप] वह तो मेरा मौसा है।

स्त्री।—उसकी रानी का नाम शशिप्रभा है।

रानी।—[आपही आप] और यही तो मेरी मौसी का भी नाम है।

स्त्री।—(आंख नीची कर के) मैं उन्ही की बेटी हूं।

रानी।—(आपही आप) सच है बिना शशिप्रभा के और ऐसी सुन्दर लड़की किस की होगी। सीप बिना मोती और कहां हो (प्रगट) तो क्या

कर्पूरमंजरी तुही है?

स्त्री।—(लाज से सिर झुका कर चुप रह जाती है)

रानी।—तो आओ २ बहिन मिल तो लें।

(कर्पूरमंजरी को गले लगाकर मिलती है)

कर्पूमंजरी।—बहिन यह आज हमारी पहली भेंट है।

रानी।—भैरवानन्द जी की कृपा से कर्पूरमंजरी का देखना हमें बड़ाही अलभ्य लाभ हुआ। अब यह पंद्रह दिन तक यहीं रहे फिर आप जोग बल से पहुंचा दीजिएगा।

भैरवानंद।—महारानी की जो इच्छा।

विदूषक।—मित्र! अब हम तुम दोही मनुष्य यहां बेगाने निकले, क्योंकि ये दोनों तो बहिनहीं हैं और भैरवानंदजी इन दिनों के मिलाने वाले ठहरे यह सरस्वती की दूसरी कुटनी भी एक प्रकार की रानी ही ठहरी, गए हम।

रानी।—विचक्षणा! अपनी बड़ी बहन सुलक्षणा से कह कि भैरवानन्द जी की पूजा कर के उन को यथा योग्य स्थान दें।

विचक्षणा।—जो आज्ञा।

रानी।—महाराज अब हम महल में जाती हैं क्योंकि बहिन को अभी कपड़ा पहराना और सिङ्गार करना है।

राजा।—इस को सिङ्गारना तो मानो चंपे की थाल में कस्तूरी भरना है, पर सांझ हो चुकी है अब हम भी तो चलते हैं।

[नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं]

प० वै०।—[राग गौरी] भई यह सांझ सबन सुखदाई।
मानिक गोलक सम दिन मनि मनु संपुट दियो छिपाई॥
अलसानी दृग मूंदि २ कै कमल लता मन भाई।
पंच्छी निज निज चले बसेरन गावत काम बधाई॥

दू० वै०।—[रागपूरवी] देखो बीत चल्यौ दिन प्यारे, आइ गई रतियां हो रामा। दीपक बरे निकसि चले तारे हो, हिलत नहीं पतियां हो रामा॥ दासिन महलन सेज बिछाई हो, मान भई मतियां हो रामा। काम छोड़ि घर फिरे सबै नर हो, लगीं तिय छतियां हो रामा।

जवनिका गिरती है।

पहिला अङ्क समाप्त हुआ॥

दूसरा अङ्क।

स्थान राज भवन।

(राजा और प्रतिहारी आते हैं)

प्र०।—इधर महाराज इधर।

राजा।—(कुछ चल कर सोच से) हा! उस समय वह यद्यपि कच नितम्ब भार से तनिक भी न हिली परन्तु त्रिवली के तरङ्ग भय श्वास से चंचल थे, और गला तिरछा था, मुखचन्द्र हिलने से वेणी ने कांचुकी का आलिङ्गन किया था सो छवि तो भुलाए भी नहीं भूलती।

प्रतिहारी।—(आप ही आप) क्या अब तक वही गेंद वही चौगान! अच्छा देखो हम इन का चित्त बसन्त के बर्णन से लुभाते हैं, (प्रत्यक्ष) महाराज! इधर देखिए, कोकिल के कण्ठ खोलने वाले भ्रमरों की झंकार में माधुर्य उत्पन्न करने वाले और बिरहियों के चित्त पञ्चम स्वर से घर्षित करने वाले चैत के दिन अब कुछ बड़े होने लगे।

राजा।—(सुनकर अनुराग से) सच्च हैं, तभी न लावन्य जल से पूरित अनेक विलास हास से छके सब की सुन्दरता जीतने वाले उस के नील कमल से नेत्रों को स्मरण कर के शृङ्गार को जगाते हुए कामदेव ने वियोगियों पर यह कठिन धनु कान तक तान कर तीर चढ़ाया है, (पागल की भांति) हा ! वह हरिननयनी मानो चित्त में घूमती है, उस के गुण नहीं भूलते, सेज पर मानो सोई हुई है, और मेरे साथ ही साथ चलती है, प्रतिशब्द में मानो बोलती है, और काव्यों से मानो मूर्तिमान प्रगट होती है, हा ! जिस को उसने नेत्र भर के नहीं देखा है जब वे वसन्त ऋतु के पञ्चम गान से मरे जाते हैं तो जिन्हें उसने पूर्णदृष्टि से देखा है उन्हें तो तिलांजुलि ही देना योग्य है, हाय उस के दूध के धोए सफेद कोए में काली भंवरे सी पुतली कैसी शोभित हैं जिनकी दृष्टि के साथ ही कामदेव भी हृदय में प्रविष्ट हो जाता है।

(विचार कर के) प्यारे मित्र ने क्यों देरी लगाई।

(विचच्चणा और विदूषक आते हैं)

विदू०।—तो विचच्चणा तुम सच कहती हो न ?

विच०।—हां हां सच है, वाह सच नहीं तो क्या झूठ कहैंगे ?

विदू०।—हम को तुम्हारी बात का विश्वास इस से नहीं आता कि तुम बड़ी हंसोड़ हो।

विच०।—वाह हंसी को जगह हंसी होती है काम की बात में हंसी कैसी ?

विदू०।—(राजा को देख कर) अहा ! प्यारे मित्र यह बैठे हैं, हा ! बिना हंस के मानस, बिना मद के हाथी, तुषार के कमल, दिन के दीपक, और प्रातःकाल के पूर्ण चन्द्र की भांति, महाराज कैसे तन छीन मन मलीन हो रहे हैं।

दोनों।—(सामने जा कर) महाराज की जय हो।

राजा।—कहो मित्र तुम्हें विचच्चणा कहां मिली।

विदू०।—महाराज आज विचच्चणा मुझसे मित्रता करने आई थी इन्हीं बातों में तो इतनी देर लगी।

राजा।—क्यों विचच्चणा तुम से क्यों मित्रता करेगी ?

विदू०।—क्योंकि आज यह किसी बड़े प्यारे मनुष्य की पत्री हाथ में लिए हैं।

राजा।—और भला यह केवड़ा कहां से आया।

विच० ।—केवड़े ही के पत्र पर पती लिखी है ।

राजा ।—वसन्त ऋतु में केवड़ा कहां से आया ?

विच० ।—भैरवानन्दजी ने अपने मंत्र के प्रभाव से महारानी के महल के सामने एक लाठी को केवड़े का पेड़ बना दिया, महारानी ने भी आज हिंडोल नर्तनी चतुर्थी के पर्व्व में उन्ही पत्तों से महादेव जी की पूजा की, और दो पत्ता अपनी छोटी बहिन कर्पूर मंजरी को दिया, उसने भी एक पत्ता मंगला गौरी को चढ़ाया, और दूसरे पत्ते की पुड़िया यह आप के भेंट है जिसमें कस्तूरी के अचरों से छन्द लिखे हैं ।

(पत्र राजा को देती है)

राजा ।—(खोल कर पढ़ता है)

जिमि कपूर के हंस सों, हंसी धोखा खाय ।
तिमि हम तुम सों नेह करि, रहे हाय पछिताय ॥

(इसको बरंबार पढ़ कर) अहा यह बड़ी मदन के रसायन अचर हैं ।

विच० ।—महाराज ! दूसरा छंद मैंने अपनी प्यारी सखी की दशा में बना के लिखा है उसे भी पढ़िए ।

राजा ।—(पढ़ता है)

बिरह अनल दहकत नित छाती । दुखद उसास बढ़त दिन राती ॥
गिरत आंसु संग सखि कर चूरी । तन सम जियन आस भई झूरी ॥

विच० ।—और अब मेरी बहिन ने जो उसका हाल लिखा है वह पढ़िए ।

राजा ।—पढ़ता है ।

तुम बिन तासु उसास गुरु, भए हार के तार ।
तन चंदन तपि जात हैं, बिरह अनल संचार ॥
तन पीरी दिन चंद सम, निस दिन रोअत जात ।
कबहुं न ताको मुख कमल, मृदु मुसकनि बिकसात ॥

राजा ।—(लम्बी सास लेकर) भला कविता में तो वह तुम्हारी बहिन ही है, इसका क्या कहना है ।

विदू० ।—महाराज ! विचचणा पृथ्वी की सरस्वती और इसकी बहिन त्रैलोक्य की सरस्वती, भला इसका क्या पूछना है, पर हम भी अपने मित्र के सामने कुछ पढ़ना चाहते हैं ।

जबसों देखी मृग नयनि, भूल्यो भोजन पान।
निसदिन जिय चिन्तत वहै, रुचत और नहि आन॥
मलय पवन तापत तनहि, फूल माल न सुहात।
चंदन लेप उसीर रस, उलटो जारत गात॥
हार धार तरवार से, सूरज सों बढ़ि चंद।
सबहीं सुख दुख मय भयो, परे प्रान हू मंद॥

राजा।— प्रान न मंद होंगे अभी थोड़ी ही देर में लड्डू से जिला दिए जांयगे अब यह कहो कि रनिवांस में फिर क्या क्या हुआ।

विदू०।—विचक्षणा कहो न क्या क्या हुआ?

विच०।—महाराज स्नान कराया वस्त्र पहिनाया तिलक लगाया आभूषण साजे और मनाकर प्रसन्न किया।

राजा।— कैसे?

विच०।—गोरे तन कुमकुम सुरंग, प्रथम न्हवाई बाल।
राजा।—सोतो जनु कंचन तप्यो, होन पीत सों लाल॥
विच०—इंद्रनीलमणि पैंजनी, ताहि दई पहिराय।
राजा।—कमल कली जुग घेरि कै, अलि मनु बैठे आय॥
विच०।—सजी हरित सारी सरस, जुगल जङ्घ कहं घेरि।
राजा।—सो मनु कदली पात निज, खंभन लपट्यो फेरि॥
विच०।—पहिराई मनि किङ्किनी, छीन सुकटि तट लाय।
राजा।—मो सिंगार मंडप बंधी, वंदनमाल सुहाय॥
विच०।—गोरे कर कारी चुरी, चुनि पहिराई हाथ।
राजा।—सो सांपिन लपटी मनहुं, चंदन साखा साथ॥
विच०।—निज करसों बांधन लगी, चोली तब वह बाल।
राजा—सो मनु खींचत तीर भट, तरसक ते तेहि काल॥
विच०।—लाल कंचुकी में उगे, जोबन जुगल लखात।
राजा।—सो मानिक संपुट बने, मन चोरी हित गात॥
विच०।—बड़े बड़े मुक्तान सों, गल अतिसोभा देत।
राजा।—तारागन आए मनो, निजपति ससि के हेत॥
विच०—करन फूल जुग कानन में, अतिही करत प्रकास।
राजा।—मनु ससि लै द्वै कुमुदनी, बैठ्यो उतरि अकास॥

विच० ।—बाला के जुग कान मैं , बाला सोभा देत ।
राजा ।—स्रवत अमृत ससि दुहुं तरफ , पियत मकर करि हेत ॥
विच० ।—जिअ रंजन खंजन दृगनि , अंजन दियो बनाय ।
राजा ।—मनहु सान फेर्यो मदन , जुगलबान निज लाय ॥
विच० ।—चोटी गुथि पाटी सरस , करिकै बांधे केस ।
राजा ।—मनहु सिंगार इकत्र ह्वै , बंध्यो वार के बेस ॥
विच० ।—बहुरि उढ़ाई ओढ़नी , अतर सुवास बसाय ।
राजा ।—फूल लता लपटी किरिन , रवि ससिकी मनुआय ॥
विच० ।—एहि बिधि सो भूषितकरी , भूषन बसन बनाय ।
राजा ।—कामबाग झालरि लई , मनु बसन्त ऋतुपाय ॥
विदू० ।—महाराज ! मैं सच कहता हूं ।

दृग काजर लहि हृदय वह , मनिमय हारन पाय ।
कंचन किङ्किनि सौं सुभग , ताजुग जंघ सुहाय ॥

राजा ।—(उसकी बात का अनादर कर के)

छि: । दृग पग पोंछन को किए , भूषन पायंदाज ।

विदू० ।—(क्रोध से) वाह ! हम तो गहिने का वर्णन करते हैं और आप उस की निन्दा करते हैं ।

अति सुन्दर हू कामिनी , बिनु भूषन न सुहाय ।
फूल बिना चम्पक लता , केहि भावत मनभाय ॥

राजा ।—(हंसकर) मूढ़ !

बिनु भूषन ही सोहही , चतुर नारि करि भाव ।
चहियत नहिं अंगूर को , मिश्री मधुर मिलाव ॥

विच० ।—महाराज ठीक है, जो नेत्र कान को छूए लेते हैं उन में अंजन क्या, और जो मुख चन्द्रमा की भी निन्दा करता है उस को तिलक क्या, वैसे ही यद्यपि रूप के समुद्र से शरीर में काई से गहिनों की कौन आवश्यकता है पर यह केवल लोक की चाल है, फूली हुई पीत चमेली को किस ने गहिने से सजा है ।

राजा ।—कपिञ्जल सुनो, गहिना और कपड़ा तो नाचने वालियों का भूषण है, रूप वही है जो सहज ही चित्त चुरावै, सुभाव ही स्त्री की शोभा है और गुण ही उस का भूषण है, रसिक लोग कभी ऊपर की बनावट नहीं देखते ।

विच० ।—महाराज ! मैं रानी की आज्ञा से केवल उस की सेवा ही नहीं करती, कर्पूर मंजरी को मेरे प्रेम से मुझ पर विश्वास भी है इसी से मैं भी उसे बहुत चाहती हूं और आप से सच निवेदन करती हूं कि वह निस्सन्देह विरह से बहुत ही दुखी है। क्योंकि।

मदन दहन दहकत हिए , हाथ धर्यो नहि जात ।
करसौं ससि की ओट कैं , बितवत सो नितरात ॥

मैं तो इतना ही कहे जाती हूं बाकी सब कपिंजल कहेगा।

(जाती है)

राजा।—कहो मित्र और कौन काम है।

विदू०।—आज हिंडोल चतुर्थी के दिन रानी और कर्पूर मंजरी झूला झूलने आवैंगी और महाज इसी केले के कुंज में छिपकर देखैंगें यही काम है (कुछ सोच कर) अहा महारानी बड़ी चतुर हैं तो भी हम ने कैसा छकाया, पुरानी बिल्ली को भी दूध के बदले मट्ठा पिलाया।

राजा।—मित्र तुम्हारे बिना और कौन हमारा काम ऐसा जी लगा के करै, समुद्र को चन्द्रमा के सिवाय और कौन बढ़ा सकता है।

(दोनों केले के कुंज में जाते हैं)

विदू०।—मित्र इस ऊंचे चबूतरे पर बैठो।

राजा।—अच्छा।

(दोनों बैठते हैं)

विदू०।—कहो पूर्णिमा का चन्द्र दिखाई पड़ा (एक ओर हाथ से दिखाताहै)

राजा।—(देखकर के) आहा ! यह तो सच सुच प्यारी का मुख चन्द्र दि-दिखाई पड़ा।

गयो जगत रमनी गरब , पर्यो मन्द नभ चन्द ।
सकुचि कमल जल मैं दुरे , भई कुमुद छविनन्द ॥
झूलनि मैं किङ्किनि वजन , अंचल पट फहरान ।
को जोहत मोहत नहीं , प्यारी छवि इहि आन ॥

विदू०।—आप सूत्रकार थे इस से आप ने बहुत थोड़े में कहा हम भाष्यकार हैं इस्से हम बिस्तार पूर्वक कहते हैं।

फूली फूलबेली सी नवेली अलबेली बधू, झूलत अकेली काम केली सी बढ़ति है। कहै पदमाकर झमक्क की झकोरन सो, चारो ओर सोर

किङ्किनीन को बाढ़ति है॥ उर उचकाइ मचकीन को मचामच सो, लङ्कहि लचाय चाय चौगुनी चढ़ति है। रति बिपरीत को पुनीत परिपाटी सुतो, हौंसनि हिंडोरे को सुपाटी मैं पढ़ति है ॥ १ ॥

गाइहौं मलारें औ जनाइहौं हिये मैं छवि, छाइहौं छिगुनि कुञ्ज कुञ्ज ही के कोरे मैं। कहै पदमाकर पियाइहौं पियाला सुख, मुख सौं मिलाइहौं सुगन्ध के झकोरे मैं॥ नेह सरसाइहौं सिखाइहौं जो सासन मैं, पाइहौं परी सो सुख मैन के मरोरे में। उर उरझाइहौं हिए सौं हिए लाइहौं, झुलाइहौं कबैंधौं प्रानप्यारी को हिंडोरे मैं ॥ २ ॥

रहसि रहसि हंसि हंसि के हिंडोरे चढ़ीं, लेत खरी पेंगैं छवि छाजै उसकन मैं। उड़त दुकूल उघरत भुज मूल बढ़ी, सुखमा अतूल कीस फूलन खसन मैं॥ सोभाल ह्वै देखि देखि भये अनमिख लाल, रीझत बिसूर श्रम सीकर ससन मैं। ज्यों ज्यों, लचि लचि लङ्क लचकात भावती की, त्यों त्यों पिय प्यारो गहै आंगुरी दसन मैं ॥ ३ ॥

झूलत पाट की डोरी गहे, पटुली पर बैठन ज्यौं उकुरू की। देवजू है मचको कटि बाजत, किंकिनि केहर गोल उरू की॥ सीखन को बिपरीत मनो रितु, पावसही चटसार सुरू की। खोंटी पटैं उचटैं तिय चोटी, चमोटी लगै मानो काम गुरू की ॥ ४ ॥

भूलति ना वह झूलनि बाल की, फूलनि माल की लाल पटी की। देव कहैं लचकै कटि चञ्चल चोलि दृगञ्चल चाल नटी की॥ अञ्चल की फहरान हिये, रहि जान पयोधर पीन तटी की। किङ्किनि की झमकानि झुलावनि, झूकनि सो झुकि जानि कटी की ॥ ५ ॥

राजा।—हाय हाय! कर्पूरमंजरी झूले से क्यों उतरी? झूला क्या खाली भया हमारे मन के साथ देखने वालों के नेत्र भी खाली भये।

विदू०।—क्या बिजली की भांति चमक कर छिप गई?

राजा।—नहीं, बरन छलावे की भांति दिखाई पड़ी और फिर अन्तर्धान होगई। [स्मरण करके]

गोरी सो रङ्ग उमङ्ग भयो चित, अङ्ग अनङ्ग को मंत्र जगाए। काजर रेख खुभी दृग मैं दोउ, भौंहन काम कमान चढ़ाए। आवनि बोलनि डोलनि ताकी, चढ़ी चित मैं अति चोप बढ़ाए। सुंन्दर रूप सो नैनन मैं बस्यो भूलत नाहिनै क्यौं हूं भुलाए ॥

विदू० ।—मित्र, यही पन्ने का कुञ्ज है, यहां बैठ के आप आसरा देखिए अब सांझ भी हुआ चाहती है ।

दोनों बैठते हैं ।

राजा ।—मित्र, अब तो उसका बिरह बहुतही तपाता है ।

विदू० ।—तो हमारी लाठी पकड़े दम भर बैठे रहो तब तक ठण्ढाई की तयारी लावें ।

(कुछ आगे बढ़ कर) वाह ! क्या विचक्षणा यहीं आती है ?

राजा ।—ज्यौं ज्यौं संकेत का समय पास आता है, त्यौं त्यौं उत्कण्ठा कैसी बढ़ती जाती है !

(लम्बी सांस लेकर)

ससि सम मुख दृग कुमुद से, कर पद कमल समान ।
चम्पा सो तन तदपि वह, दाहत मोहि सुजान ॥

विदू० ।—आहा ! विचक्षणा तो ठण्ढाई लिए ही आती है ।

(विचक्षणा आती है ।)

विच० ।—आहा ! प्यारी सखी को बिरह का ताप कैसा सतारहा है ।

विदू० ।—(पास जाकर) यह क्या है ?

विच० ।—ठण्ढाई ।

विदू० ।—किसके लिये ?

विच० ।— प्यारी सखी के वास्ते ।

विदू० ।—तो आधी हमको दो ।

विच० ।—क्यौं ?

विदू० ।—महाराज के वास्ते ।

विच० ।—कारण ?

विदू० ।—" कर्पूर मञ्जरी के वास्ते " कारण ।

विच० ।—तुम क्या नहीं जानते महाराज का वियोग ?

विदू० ।—तो तुम क्या नहीं जानतीं कर्पूर मञ्जरी का वियोग ?

(दोनों हंसते हैं)

विच० ।—तो महाराज कहां हैं ?

विदू० ।—तुम्हारी आज्ञानुसार पन्ने के कुञ्ज में ।

विच० ।—तो तुम भी वहां जाके बैठो ! दम भर में ठण्ढाई के बदले दोनों को दर्शनही से तरावट पहुंच जायगी ।

विदू० ।—सो वहां जाओ जहां से फिर न बहुरो ।

(विचक्षणा को ढकेलता है ।

(दोनों आपस में धक्का मुक्की करते हैं)

विच० ।—छोड़ो छोड़ो ! रानी की आज्ञानुसार कर्पूर मञ्जरी आती होगी।

विदू० ।—रानीजी की क्या आज्ञा है ?

विच० ।—महारानी ने तीन पेड़ लगाये हैं ।

विदू० ।—किसके ?

विच० ।—कुरबक तिलक और अशोक के ।

विदू० ।—फिर ?

विच० ।—महारानी ने कहा है कि सुन्दर स्त्रियों के आलिङ्गन से कुरवक, देखने से तिलक और पैर के छूने से अशोक फूलता है इस से तुम जाकर मेरे कहे अनुसार सब काम अभी करो, सो वह आती होगी ।

विदू० ।—तो पत्ते के कुञ्ज से प्यारे मित्र को लाकर इन तमालों की आड़ में बैठावें ।

(राजा को लाकर तमाल के पास बैठाता है)

विदू० ।—मित्र, सावधान होकर अपने मन रूपी समुद्र के चंद्रमा को देखो ।

राजा ।—(देखता है)

(सजी सजाई कर्प्पूरमञ्जरी आती है)

कर्पूर० ।—कहां है विचक्षणा ?

विच० ।—(पास जाकर) सखो रानी की आज्ञा पूरी करो ।

राजा ।—मित्र, कौन सी आज्ञा ?

विदू० ।—घबराओ मत, चुप चाप बैठे बैठे देखा करो ।

विच० ।—यह कुरबक का पेड़ है ।

कर्प्पू० ।—(आलिङ्गन करती है)

राजा ।—करत अलिङ्गनही अहों कुरवक तरु इकसाथ ।
फूल्यो उमगि अनन्द सों परसि पियारी हाथ ॥

विदू० ।—मित्र यह अदभुत इंद्रजाल देखो जिससे छोटा सा कुरवक का पेड़ कैसा एक साथ फूल उठा ! सच है दोहद* के ऐसेही विचित्र गुण होते हैं

विच० ।—और सखी यह तिलक का पेड़ है ।

---

* वृक्ष में विचित्र फूल फलादिक उत्पन्न करने का तन्त्र ।

कर्पू० ।—(देर तक उसी की ओर देखती है)

राजा ।—अहा काजर भीनी काम निधि दीठि तिरीछी धाय ।
भयो मञ्जरिन तिलक तरु मनहुं रोम उलहाय ॥

विच० ।—सखी अब इस अशोक की पारी है ।

कर्पूर० ।—(वृक्ष को लात मारती है)

विच० ।—नूपुर बाजत पद कमल परसत तुरत अशोक ।
फूल्यौ तजि सब सोक निज प्रगटि कुसुम कल थोक ॥

विदू० ।—मित्र महारानी ने यह दोहद आपही क्यों न किया आप इसका कारण कुछ कह सकते हैं ?

राजा ।—तुम्हीं जानो ।

विदू० ।—मैं कहूं पर जो आप रूठ न जांय ?

राजा ।—भला इसमें रूठनेकी कौन बात है निस्सदेह जोजीमें आवे कह डालो

विदू० ।—जदपि उतै रूपादि गुन सुन्दर सुख तन वेस ।
पै इत जोबन नृपति को महिमा मिली विसेस ।

राजा ।—जदपि इतै जोबन नवल मधुर लरकई चारु ।
पै उत चतुराई अधिक प्रगटन रस व्यौहारु ॥

विदू० ।—सच है जवानी और चतुराई में बड़ा बीच हैं ।

(नेपथ्य में वैतालिक गाते हैं)

(राग चैती गौरी)

मन भावनि भई सांझ सुहाई । दीपक प्रकट कमल सकुचाने प्रफुलित कुसुदिनि निसि ढिग आई ॥ ससि प्रकास पसरित तारागन उगन लगी नभ में अकुलाई । साजत सेज सबै जुवती जन पीतम हित हिय हेत बढ़ाई । फूले रैन फूल बागन में सीतल पौन चली सुखदाई । गौरी राग सरस सुर सब मिलि गावत कामिनि काम बधाई ॥

राजा ।—मित्र देखो सन्ध्या भई ।

विदू० ।—तभो न बन्दियों ने सांझ के गीत गाए ।

कर्पूर० ।—सखी अंधेरा होने लगा अब चलो ।

विच० ।— हां चलना चाहिए ।

(जवनिका गिरती है)

इति द्वितीयअङ्क ।

अङ्क तीसरा ।

स्थान राजभवन ।

(राजा और विदूषक आते हैं)

राजा ।—(स्मरण करके) । उस की मधुर छवि के आगे नया चन्द्रमा चम्पे की कली, हलदी की गांठ, तपाया सोना और केसर के फूल कुछ नहीं हैं, पन्ने के हार और मालती की माला से शोभित उसका कण्ठ जी से नहीं भूलता और उस्के कर्णावलम्बी नेत्र मेरे जी में अब तक खटकते हैं ।

विदू० ।—मित्र ज्योतिषियों की भांति तुम क्यों व्यर्थ बकते हो ?

राजा ।—मित्र स्वप्न में हम ने ऐसा ही मनुष्य रत्न देखा है ।

विदू० ।—कैसा ?

राजा ।—मैं ने देखा है कि वह कमलवदनी हंसती हुई मेरी सेज के पास आकर नीलकमल घुमा कर मुझे मारने चाहती है और जब मैंने उसका अंचल पकड़ा है तो वह चञ्चल नेत्रों को नचा कर अञ्चल छुड़ाकर भाग गई और मेरी नींद भी खुल गई ।

विदू० ।—(आप ही आप) तो कुछ हम भी कहैं (प्रगट) मित्र मैं ने भी एक सपना देखा है !

राजा ।—(आशा से) हां मित्र कहो कहो ।

विदू० ।—हम ने देखा है कि देवगङ्गा के सोते में सोते सोते हम महादेव जी के सिर पर खेलने वाली नदी में जा पहुंचे हैं और फिर शरद ऋतु के मेघों ने हम को पेट भर के पीया है और तब हम हवा के घोड़े पर आकाश की सैर करते फिरते हैं ।

राजा ।—(आश्चर्य से) हां फिर ?

विदू० ।—फिर उसी मेघ में गुब्बारे की भांति बैठे बैठे ताम्रपर्णी नदी में पहुंचे हैं और जब सूर्य्य चित्रा नक्षत्र में गये तब समुद्र के ऊपर जाके वह मेघ बड़ी बड़ी बूंद से बरसने लगा और एक सीप ने मुंह खोल कर हमें भलीभांति पिया है और उस्के पेट में जाते ही हम छमाशे के मोती हो गये ।

राजा ।—(आश्चर्य से) फिर ?

विदू० ।—फिर हम समुद्र की लहरों से टक्कर लड़े और सैकड़ों सीपों में घु-

मते फिरे अन्त में घिस घिसा कर सुंदर गोल सटोल चमकीले मोती बने गए और हम को पूर्व जन्म का स्मरण ज्यों का त्यों बना रहा ।

राजा ।—(आश्चर्य से) फिर क्या हुआ ।

विदू० ।—फिर समुद्र से वह सीप निकालकर फाड़ी गई तब हम एक दाने से चौसठ होकर बाहर निकले और लाख अशरफी पर एक सेठ के हाथ बिके और जब उस ने इन मोतियों को बिधवाया तो हम को बड़ी पीड़ा हुई ।

राजा ।—(आश्चर्य से) हां तब ?

विदू० ।—फिर उस सेठ ने दस दस छोटे मोतियों के बीच में हमें पिरोकर एक माला बनाई तब हमारा दाम करोड़ों अशरफी से भी बढ़ गया और सोने के डिब्बे में रख के सागरदत्त सेठ ने पंजाब देश में कर्णउभ नगर के राजा श्री वज्रायुध के हाथ हमें बेच डाला ।

राजा।—(घबड़ाकर) फिर क्या हुआ ।

विदू० ।—फिर उस्की रानी के सुन्दर गले में थोड़ी देर तक हम झूलों झूलते रहे पर जब राजा ने उस्का अलिङ्गन किया तो कठोरस्तन के धक्कों से पिस कर हम ऐसे चिल्लाये कि नींद खुल गई ।

राजा ।—(हंसता है) समझा यह तुम हमारा परिहास करते हो ।

विदू० ।—परिहास नहीं ठीक कहते हैं, राज्य से छुटा हुआ राजा, कुटुम्ब में फसी बालरण्डा, भूखा गरीब ब्राह्मण. और बिरह से पागल प्रेमी लोग मन के ही लड्डू से भूख बुझा लेते हैं, भला मित्र हम यह पूछते हैं कि यह सब किस का प्रभाव है ।

राजा ।—प्रेम का ।

विदू० ।—भला रानी से इतना स्नेह होते भी कर्पूरमञ्जरी पर इतना प्रेम क्यों करते हो और फिर रानी रूप आदिक में किस से कमती है ?

राजा ।—यह मत कहो किसी २ मनुष्य से ऐसी प्रेम की गांठ बंध जाती है कि उस में रूप कारण नहीं होता ऐसे प्रेम में रूप औ गुण तो केवल चवाइयों के मुंह बंद करने के काम आता है ।

विदू० ।— तो प्रेम नाम आप के मत से किस्का ?

रानी ।—नव जीवन वाले स्त्री पुरुषों के परस्पर अनेक मनोरथों से उत्पन्न सहज चित्त के विकार को प्रेम कहते हैं ।

विदू० ।—और उस में गुण क्या क्या हैं ?

राजा ।—परस्पर सहज स्नेह अनुराग की उमङ्गों का बढ़ना, अनेक रसों का अनुभव, संयोग का विशेष सुख, सङ्गीत साहित्य और सुख की सामग्री मात्र को सुहाना कर देना और स्वर्ग का पृथ्वी पर अनुभव करना ।

विदू० ।—और वह जाना कैसे जाता हैं ?

राजा ।—लगावट की दृष्टि, नेत्रों का चञ्चल और चोर होना, अंग अंग के अनेक भाव और मुख की आकृति से ।

विदू० ।—हमारी जान में चित्त में जो विहार के उत्साह होते हैं उसी का नाम प्रेम है । और उस्को रूप नहीं है तो भी मनुष्य में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है जहां कामदेव का इन्द्रजाल यह प्रेम स्थिर है वहां आभूषण और द्रव्य से क्या ?

राजा ।—(हंसकर) इस को द्रव्य और आभूषण ही की पड़ी रहती है । अरे ! [कह अभूषन कह बसन का अनेक सिंगार । तिय तन सो कछु औरही, जो मोहत संसार । खञ्जन मद गञ्जन करन जग रञ्जन जो माहिं ॥ मदन लुकञ्जन सरिस दृग, कह अञ्जन तिन माहिं ॥ धन कुल की मरजाद कछु, प्रेम पन्थ नहिं होत । राव रङ्क सब एक से लगत प्रनय रस सोत ॥ धनिक बधू जो छबि लहत, बेंदी रतन जराय । ग्राम बधूटीहूं सुई, कुंकुम तिलक लगाय ॥ " अनि यारे तीखे दृगनि, किती न तरुनि जहान । वह चितवनि कछु औरही, जिहिं बस होत सुजान "

विदू० ।—यह ठीक है पर लड़कई में जो रूप रहता है जवानी के सौन्दर्य से उससे कोई—सम्बन्ध नहीं । यह क्यों ?

राजा ।—हमारे जान में जन्म देनेवाला विधि दूसरा है । और उन्नत कुच उत्पन्न करने वाला दूसरा है । सुन्दरता से भरा अङ्ग, कर्णावलम्बी नेत्र, हार शोभी स्तन, क्षीण मध्य देश और गोल नितम्ब यही पांच अङ्ग कामदेव के मुख्य सहायक होते हैं ॥

(नेपथ्य में)

हाय ! इस ठण्ढे घर में भी कर्पूरमंजरी पसीने से तर हुई जाती है इससे इसे पङ्खा झलें ॥

सखी कुरङ्गिके ! यह हिम उपचार तो मुझ कमल की लता को और भी

सुरझ देगा ॥ कमलनाल विष जाल सम हार भार घहि भोग। मलय प्रलय जल अनल मोहि वायु आयु हर रोग ॥

विदू० ।—प्यारे मित्र ने सुना ! तो अब इस अमृत के प्याले की उपेक्षा कब तक करोगे, चलो धूप से सूखती कमलिनी, विना पानी को केसर की क्यारी, बालक के हाथ में रोली की पुतली, हरने के सींग में फंसी हुई चन्दन की डाल, और अनाड़ो के हाथ पड़ी मोती की सी कर्पूरमंजरी की दशा है. इससे चल कर शीघ्रही उसको प्राण दान दो, लोन तुम्हारा सपना तो सच हुआ, चलो काम की पताका उड़ाओ मदन मंत्र के हुङ्कार के साथही स्वेद का अभिषेक भी होय, चलो इसी खिड़की से चलें। [खिड़की ओर चलना नाट्य करते हैं] [भीतरी परदा उठता है और एक में कुरङ्गिका और कर्पूरमंजरी बैठी दिखाई देती हैं] ॥

कर्पूर० ।—[राजा को देखकर घबड़ा के] अहा ! क्या पूर्णिमा का चन्द अकाश से उत्तर आया या भगवान शिव जी ने रति की अधीनता पर प्रसन्न होकर फिर से कामदेव को जिला दिया या वही छलिया आता है जिसने चित्त चुरा कर ऐसा धोखा दिया ॥ सखी ! यह कुछ इन्द्रजाल तो नहीं है ?

विदू० ।—(राजा को दिखाकर) हां सचमुच यह इन्द्रजाल का तमाशा है।

कर्पूर० ।—(लाज से सिर नीचे कर लेती है)

कुरङ्गि० ।—सखी ! महाराज खड़े हैं और तू आदर करने को नहीं उठती ?

कर्पूर० ।—(उठा चाहती है)

राजा ।—बस बस प्यारी तुम अपने कोमल अङ्गो को क्यों दुख देती हो ! जहां की तहां बैठी रहो।

कुच नितम्ब के भार सों , लचि न जाय कटि छीन ॥
रहो रहो बैठी रहो , करो न आज नवीन ॥

विदू० ।—हाय हाय कर्पूरमंजरी को बड़ा पसीना हो रहा है ॥ अच्छा पङ्खा झलें (अपने दुपट्टे से पङ्खा झलता हुआ जान बूझ कर दिया बुझा देता है) हहहह ! बड़ा आनन्द हुआ। दियागुलपगड़ीगायब । अब बड़ा आनन्द होगा। महाराज ! देखिए कुछ अन्धेर न हो ॥

राजा ।—तो सब लोग छत्त पर चलें, आओ प्यारी तुम हमारा हाथ पकड़ लो और अपनी मन्द चाल से हंसों को लजाओ (स्पर्श सुख नाट्य करके)

अहा ! तुम्हारे अङ्ग से छू जाते ही कदम्ब की भांति हमारा अङ्ग पुष्पित हो गया।

(सब लोग चलना दिखाते हैं)

(नेपथ्य में प्रथम वैतालिक)

नव ससि उदय होइ सुखदायक। कुमकुम सुख मण्डित तिय मुख सम, देखहु उग्यो जामिनी नायक ॥ अरुन दिसा प्राची रंग राची, तरुन करुन विरही जन घायक। रजनी लखि सजनी अनङ्ग अब, तजत किरिन सिस तकि तकि सायक ॥ पत रन्ध्र तें छनि छनि आवत, चांदनि रस सिङ्गार को वायक। तारागन प्रगटित नभ मण्डल, ससि राजा के संग जनु पायक ॥ विरहत तरुनि संजोगिन सों मिलि, लहि सब सुख रसिकन के लायक। प्रफुलित कुमुद देखि सरवर महं गावत काम बधाई गायक ॥

(नेपथ्य में चन्द्रमा का प्रकाश होता है)

विदू०।—कनकचन्द्र गा चुका अब मानिक्य चन्द्र गावै।

(नेपथ्य में दूसरा वैतालिक गाता है)

रैन संजोगिन कों सुखदाई। तजत मानिनी मान चन्द लखि, दूती तिन कहं चलत लिवाई ॥ कोमल सेज तमोल फूल मधु, सुखद साज सब धरे सजाई। विहरहि कामिनि कामी जन संग लूटहिं सुख पीतम ढिग पाई ॥

विदू०।—दिसाबधू चन्दन तिलक , नभ सरवर को हंस ।
काम कंद सम नभ उदित , यह ससि जगत प्रसंस ॥

कुरं०।—चंद उदय लखि कें मदन , कानन लौं धनु तानि ।
जीत्यौ जग जुव जन सबैं , निसि निज अति बल जानि ॥

(कर्पूर मंजरी से) सखी ! अब तेरा बनाया चन्द्रमा का वर्णन महाराज को सुनाती हूं।

कर्पू०।—(लज्जा नाट्य करती है)।

कुरं०।—ससि अति सुन्दर ताहि कहुं , दृष्टि नाहिं लगि जाय ।
तातें दैव कलंक मिस , दियो दिठौना लाय ॥

राजा।—वाह वाह ! जैसा छन्द वैसे ही बनाने वाली फिर क्या पूछना है, कोमल मुख से जो अच्छर निकलैंगे वह क्यों न कोमल होंगे, पर—
सिर दै कस्तूरी तिलक , सब विधि ससि छबि धारि ।

तुमहू तो सम मन कुमुद , विकसावनि सुकुमारि ॥

(चन्द्रमा की ओर)

तजी गरब अब चन्द तुम , भूलो मत मन मांहि ।
क्रोध हसनि भ्रूभंग छवि , तुम में सपनेहु नांहि ॥

(नेपथ्य में कोलाहल)

राजा ।—यह क्या कोलाहल है ।

का० म० ।—(भय से) कुरङ्गिके देखो तो यह क्या है ?

(कुरङ्गिका बाहर हो कर आती है ।)

विदू० ।—जान पड़ता है कि यह सब बात रानी ने जान ली ।

कुरं० ।—हां ठीक है महारानी हम लोगों को पकड़ने यहां आती हैं वही कोलाहल है ।

क० ।—(डर कर) तो हम लोग अब इस सुरङ्ग की राह से महल में जाते हैं जिस में रानी महाराज के साथ हमें न देखें ।

(सब जाना चाहते हैं । जवनिका गिरती है)

इति तृतीय अङ्क ।

चौथा अङ्क ।

[राजा और विदूषक आते हैं]

राजा० ।—आहा ! ग्रीष्म ऋतु भी कैसा भयानक होता है इस ऋतु में दो बातें अत्यन्त असह्य हैं एक तो दिन की प्रचण्ड धूप दूसरे प्यारे मनुष्य का वियोग ।

विदू० ।—संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं एक सुखी एक दुखी, हम अच्छे न सुखी न दुखी, न संयोगी न वियोगी ।

(नेपथ्य में मैना बोलती है)

तो तेरा सिर टूटे बेल सा क्यों नहीं गिर पड़ता ।

राजा ।—मित्र खिलवाड़िम मैना क्या कहती है सुनो ।

विदू० ।—[क्रोध से] अच्छा दुष्ट दासी देख अभी तुझको पकड़ कर मरोड़ डालते हैं ।

[नेपथ्य में मैना बोलती है]

हां हां निपूते जो हमें पर न होते तू सब करता ।

राजा।—(देख कर) क्या मैंना उड़ गई? [विदूषक से] कामी जनों की प्यारी इस गरमी की ऋतु में जब निगाहरूपी मैंना जल्दी से उड़ जाती है तो यह मैंना क्यों न उड़े। क्यों न हो, वा संयोगियों को तो ग्रीष्म भी सुखद ही है। दो पहर तक ठण्ढे चन्दन का लेप, तीसरे पहर महीन गीले कपड़े, फुहारे, खसखाने और सांझ को जल विहार और हिम से ठण्ढी की हुई मदिरा और पिछली रात की ठण्ढी हवा में विहार इत्यादि इस ऋतु में भी सुख के सभी साज हैं पर जो करने वाला हो?

विदू०।—ऐसा नहीं मुंह भर के पान पानी से फूली हुई सुपारी और कपूर की धूर और मीठा २ भोजन ही गर्मी में सुखद होता है।

राजा।—छि: इस गर्मी में भी तुम्हें पान और मीठे भोजन की पड़ी है। गर्मी में तो वायु के संयोग से जल, हिम में रखने से मदिरा, चन्दन लेप करने से स्त्री, सुन्दर कण्ठ पाकर फूल और पञ्चम स्वर से दूरित होकर वंशी यही पांच वस्तु ठण्ढी हैं। तथा सिरीस के फूल के गहने, बेले की चोटी, मोतिया के हार, चम्पे की चम्पाकली, नेवारी के गजरे, जल भरी कुमुद की बिना डोरे की माला और हाथ में कमल नाल के कङ्कण यही सुन्दरियों को रत्नाभरण के बदले योग्य शृङ्गार हैं।

विदू०।—हम तो यही कहैंगे कि दो पहर को चन्दन लगाए सांझ को नहाए मन्दवायु से कान का फूल हिलाने वाली स्त्री ही गरमी में सुखद होती है।

राजा।—(याद करके) देखो, जिनके प्यारे पास हैं उनको गरमी के बड़े, बड़े दिन एक छन से बीतते हैं, पर जो अपने प्यारे से दूर पड़े हैं उनको तो ये दिन पहाड़ से भी बड़े हो जाते हैं, (विदूषक से) मित्र कुछ उसी की बात कहो।

विदू०।—हां मित्र सुनो बहुत अच्छी२ बात कहेंगे, जब से कर्पूरमंजरी को गुप्त घर की सुरङ्ग के दरवाजे पर महारानी ने देख लिया है तब से सुरङ्ग का मुंह बन्द करके अनङ्गसेना, कलिङ्गसेना, बसन्तसेना, और विभ्रमसेना, नामक चार सखियों को नंगी तलवार लेकर पूरब में; अनङ्गलेखा, चन्दन लेखा, चित्रलेखा, मृगाङ्कलेखा, और विभ्रमलेखा इन पांच सखियों को धनुष देकर दक्षिण में, और कुन्दमाला, चंदन माला, कुवलयमाला, कांचनमाला, बकुलमाला, मङ्गलमाला और माणिक्यमाला इन सात

सखियों को चोखे भाले देकर पश्चिम दरवाजे पर, और अनंगकेलि, कर्पूरकेलि, कंदर्पकेलि और सुंदरकेलि, इनचार सखियों को खड्ग देकर उत्तर की ओर पहरे के वास्ते रक्खा है। और भी हजारों हथियारबंद सखी चारो ओर फिरा करती हैं, और मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरंगवती और तांबूलवती ये पांच सोने की छड़ी हाथ में लेकर उस सेना की रक्षा करती हैं।

राजा।—वाहरे ठाट बाट! महारानी सच मुच अपने महारानी पन पर आ गईं।

विदू०।—मित्र, महारानी के यहां से सारंगिका नाम की सखी कुछ कहने को आती है।

[सारंगिका आती है]

सारंगिका।—महाराज की जय हो; महाराज, महारानी ने निवेदन किया है कि आज वटसावित्री का उत्सव होगा सो महाराज छत पर से देखें।

राजा।—महारानी की जो आज्ञा।

(सारंगिका जाती है)

(राजा और विदूषक छत पर चढ़ना नाट्य करते हैं)

विदूषक।—देखिये मोतियों के गहने से लदी हुई नृत्य में वस्त्र फहरानेवाली स्त्रियां हीरे के नगीने से जलकणों से कैसा परस्पर खेल रही हैं, इधर विचित्र प्रबंध से घूमने वाली, फिरकी की भांति नाचने वाली और सम पर पांव रखने वाली स्त्रियां कैसा परस्पर नांच रही हैं, कोई मंडल बांध कर पंक्ति से, कोई दूसरी का हाथ पकड़ कर और कोई अकेलीही नाचती है, नृत्य के श्रम श्वास से कुचों पर हार कम्पित होकर देखने वालों के नेत्र और मन को अपनी ओर बुलाते हैं, सब देश की स्त्रियों के स्वांग बन कर कुछ स्त्रियां अलगही कौतुक कर रही हैं, यह देखिये जिसने भीलनी का स्वांग लिया है वह कैसी निर्लज्ज और मत्तचेष्टा करती है! वैसेही जो गंवारिन बनी है वह अपनी सहज सीधी और भोली चितवन से अलग चित्त चुराती है; कोई गाती है, कोई हंसती है, कोई नकल करती है, सब अपने २ रंग में मस्त हैं।

(सारंगिका आती है)

सारं०।—[आपहीआप] अहा! महाराज तो छत पर पन्ने के बंगले में

बैठे हैं (प्रगट) महाराज की जय हो, महाराज महारानी कहती हैं कि हम सांझ को महाराज का व्याह करैंगी।

विदूषक।—ह हा ह हा ! वाह ! क्या अच्छी वे समय की रागिनी छेड़ी गई है।

राजा।—सारंगिके ! सविस्तर कहो, तुम्हारी बात हमारी समझ में नहीं आती।

सारं०।—विगत चतुर्दशी को महारानी ने मानिक्य की गौरी बनाकर भैरवानन्द जी के हाथ से प्रतिष्ठा कराई थी सो जब महारानी ने भैरवानंद जी से कहा कि आप कुछ गुरुदक्षिणा मांगिये तब उन्हों ने कहा "ऐसी गुरुदक्षिणा दो जिसमें महाराज का कल्याण भी हो और वे प्रसन्न भी हों, अर्थात् लाट देश के राजा चंद्रसेन की कन्या घनसारमंजरी को ज्योतिषियों ने बताया है कि जिस से इसका विवाह होगा वह चक्रवर्ती होगा उसका महाराज से विवाह करदो यही हमें गुरुदक्षिणा दो" महारानी ने भी स्वीकार किया और इसी हेतु मुझे आप के पास भेजा है।

विदू०।—वाह वाह ! सिर पर सांप और काबुल में वैद्य आज व्याह और लाट देश में घनसारमञ्जरी।

राजा।—इससे क्या ? भैरवानन्द के प्रभाव से सब निकट है।

सारं०।—महाराज, आम की बारी वाले चामुंडा के मंदिर में महारानी और भैरवानंद जी आप का व्याह करेंगे सो आप यहां से कहीं मत टलियेगा।

[जाती है]

राजा।—यह सब भैरवानन्द जी का प्रभाव है।

विदू०।—सच है, चंद्र बिना चंद्रकान्तमणि को और कौन द्रवावे ?

[एक ओर बगीचे और मन्दिर का दृश्य]

[भैरवानंद आता है]

भैरवानंद।—इस वट के मूल में सुरंग के दरवाजे पर चामुंडा की मूर्ति है तो यहीं ठहरें। [हाथ जोड़ कर] कल्पान्त महाश्मशान रूपी क्रीड़ा मंदिर में ब्रह्मा की खोपड़ी के कटोरे में राक्षसों का उष्ण रुधिर रूपी मद्यपान करने वाली कराली काली को नमस्कार है [आगे बढ़ कर] अभी तक कर्पूरमञ्जरी नहीं आई ?

(सुरंग का मुंह खुलता है और उसमें से कपूरमञ्जरी निकलती है)

क० मं० ।—महाराज प्रणाम करती हूं ।

भै० न० ।—योग्य वर पाओ ! आओ यहां बैठो ।

क० म० ।—[बैठती है]

भै० न० ।—अब तक रानी नहीं आई ?

[रानी आती है]

रानी ।—(आगे देख कर) अरे यही चामुण्डा है ? और कपूरमंजरी भी बैठी है ? (भैरवानंद से) महाराज व्याह की सामग्री ले आवें ?

भै० न० ।—हां रानी,

रानी ।—(आगे बढ़ती है) ।

भै० न० ।—(हंसकर) यह खोजने गई है कि हमारे पहरे में से कपूरमंजरी कैसे चली आई ? तो अच्छा बेटा कपूरमंजरी तुम सुरंग की राह से जा कर अपनी जगह पर बैठो, जब रानी देखले तब चली आना ।

क० म० ।—जो आज्ञा (उसी भांति जाती है)

रानी ।—(आगे एक घर में झांक कर) अरे कपूरमंजरी तो यहीं है, वह कोई दूसरी होगी, बेटा कर्पूरमंजरी जी कैसा है ?

(नेपथ्य में) सिर में कुछ दर्द है ।

रानी ।—तो चलें (आगे बढ़ कर) लाओ जल्दी तयारी ।

(कपूरमंजरी सुरङ्ग की राह से आकर अपनी जगह पर बैठती है)

रानी ।—[देखकर] अरे यहां भी कपूरमंजरी !

भै० न० ।—बेटा बिभ्रमलेखे ! व्याह की सामग्री ले आई ?

रानी ।—हां लाई सही पर कपूरमंजरी के लायक आभूषण लाना भूल गई ।

भै० न० ।—तो जाओ जल्दी ले आओ ।

रानी ।—जो आज्ञा [आगे बढ़ कर उसी घर की ओर जाती है]

भै० न० ।—बेटा कपूरमंजरी फिर वैसाही करो ।

क० म० ।—जो आज्ञा [वैसेही जाती है०)

रानी ।—[उसी घर के दरवाजे से झांककर] आहा ! मैं निस्संदेह ठगी गई, [प्रगट] अरे व्याह की तयारी लाओ ! [कपूरमंजरी वैसेही आती है] (फिर भैरवानंद के पास आकर और कपूरमंजरी को देख कर) यह क्या चरित है । हा ! हमारी दुष्टा इस योगीश्वरने ध्यान से सब जानी होगी ।

भै० न० ।—रानी ! बैठो महाराज भी आते होंगे ।

[राजा और विदूषक ऊपर से उतरते हैं और कुरंगिका आती है]

भै० न० ।—महाराज विराजिए । (सब बैठते हैं)

राजा ।—(कर्पूरमंजरी को देख कर) यह कामदेव की मूर्त्तिमान शक्ति है, वा शृङ्गार की साचात लता है, वा सिमटी हुई चन्द्रमा की चांदनी है, वा हीरे की पुतली है, वा वसन्तऋतु की मूल कला है, जिस को इसने एक वेर देखा उस के चित्तरूपी देश में कामदेव का निष्कंटक राज हुआ ।

विदू० ।—(धीरे से) वाहरे जल्दी, अरे अब तो चण भर में गोद ही में आई जाती है अब क्या वक वक लगाए हो, कोई सुनैगा तो क्या कहैगा ।

रानी ।—(कुरङ्गिका से) तुम महाराज को गहिना पहिनाओ और सुरङ्गिका घनसार मंजरी को (दोनों सखियां वैसा ही करती हैं ।)

भै० न० ।—उपाध्याय को बुलाओ ।

रानी ।—महाराज का पुरोहित आर्य्य कपिंजल बैठा ही है फिर किस को देर है ।

विदू० ।—हांहां हम तो तय्यार ही हैं । मित्र हम गंठ बन्धन करते हैं तुम कर्पूरमंजरी का हाथ पकड़ो और कर्पूरमंजरी, तुम महाराज का पकड़ो (झूठ मूठ के अशुद्ध मन्त्र पढ़ता है और वैदिकों सी चेष्टा करता है)

भै० न० ।—तुम निरे वही हो कर्पूरमंजरी का घनसार मंजरी नाम हुआ

राजा ।—[कर्पूरमंजरी का हाथ पकड़ कर आपही आप] आहा इस के कोमल कर स्पर्श से कदम्ब और केवड़े की भांति मेरा शरीर एक साथ रोमांचित हो गया ।

विदू० ।—अग्नि प्रगटाओ और लावा का होम करो [राजा और कर्पूरमंजरी अग्नि को फेरी करते हैं, कर्पूरमंजरी भंए से मुंह फेरना नाट्य करती है] ।

रानी ।—अब विवाह होगया हम जाते हैं । [जाती है]

भै० नं० ।—विवाह की आचार्य्य-दच्चिणा दीजिए ।

राजा ।—[विदूषक से] हां मित्र सौ गांव तुमको दिया ।

विदू० ।—स्वस्ति स्वस्ति [उठ कर वगल बजा कर नाचता है]

भै० न० ।—महाराज कहिए और क्या होय ।

राजा ।—[हाथ जोड़ कर] महाराज अब क्या बाकी है ॥

कुन्तल नृप कन्या मिली , चक्रवर्त्ति पद साथ ।
सब पूरे मन काज मम , तुव पद बल ऋषिनाथ ॥

तब भी यह भरत वाक्य सत्य हो ।

उन्नत चित ह्वै आर्य परस्पर प्रीति बढ़ावैं ।
कपट नेह तजि सहज सत्य व्यौहार चलावैं ॥
जवन संसरग जात दोस गन इन सो छूटैं ।
सबै सुपथ पथ चलैं नितहि सुख सम्पति लूटैं ॥
तजि विविध देव रति कर्म मति एक भक्ति पथ सब गहै ।
हिय भोगवती सम गुप्त हरिप्रेम धार नित ही बहै ॥

इति ।

श्रीचन्द्रावली नाटिका ।

अर्थात् ।

प्रेम रस का चार अंकों में एक अपूर्व नाटक

वैष्णव, वल्लभी, प्रेमी और सिद्धान्तज्ञ लोगों के पढ़ने के योग्य

क्योंकि

लौकिक रस और अदिव्य नायिका का वर्णन छोड़ कर दिव्य से दिव्य और महा अलौकिक प्रेम कथा से संघटित किया गया।

काव्य, सुरस, सिंगार के, दोउ दल, कविता नेम ।
जग जन सों कै ईस सों, कहियत जेहि पर प्रेम ॥
हरि उपासना, भक्ति, वैराग, रसिकता, ज्ञान ।
सोधैं जग जन मानिया, चन्द्रावलिहि प्रमान ॥

समर्पण ।

प्यारे !

जो तुम्हारी चन्द्रावली तुम्हें समर्पित है। अङ्गीकार तो किया ही है इस पुस्तक को भी उन्हीं की कानि से अङ्गीकार करो। इस में तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है। हां एक अपराध तो हुआ जो अवश्य क्षमा करना ही होगा। वह यह कि यह प्रेम की दशा छाप कर प्रसिद्ध की गई। वा प्रसिद्ध करने ही से क्या जो अधिकारी नहीं है उन के समझ ही में न आवैगा।

तुम्हारी कुछ विचित्र गति है। हमी को देखो। जब अपराधों को स्मरण करो तब ऐसे कि कुछ कहना ही नहीं। क्षण भर जीने के योग्य नहीं। पृथ्वी पर पैर धरने को जगह नहीं। मुंह दिखाने के लायक नहीं। और जो यों देखो तो यह लम्बे लम्बे मनोरथ। यह बोलचाल। यह ढिठाई कि तुम्हारा सिद्धान्त कह डालना। जो हो इस दूध खटाई की एकत्र स्थिति का कारण तुम्हीं जानो। इस में कोई सन्देह नहीं कि जैसे हीं तुम्हारे बनते हैं। अतएव क्षमा समुद्र ! क्षमा करो। इसी में निर्वाह है। बस—

भाद्रपद कृष्ण १४ }
सं० १९३३ }

हरिश्चन्द्र

श्री चन्द्रावली नाटिका।

स्थान रङ्गशाला।

(ब्राह्मण आशीर्वाद पाठ करता हुआ आया।)

भरित नेह नव नीर नित , बरसत सुरस अथोर ।
जयति अलौकिक घन कोऊ , लखि नाचत मन मोर ॥ १ ॥

[और भी]

नेतिनेति तत् शब्द प्रतिपाद्य सर्व्व भगवान ।
चन्द्रावली चकोर श्रीकृष्ण करौ कल्यान ॥ २ ॥

(सूत्रधार आता है)

सू० ।—बस बस, बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं ? मारिष मारिष, दौड़ो दौड़ो आज ऐसा अच्छा अवसर फिर न मिलैगा हम लोग अपना गुण दिखा कर आज निश्चय कृतकृत्य होंगे।

(पारिपार्श्विक आकर)

पा० ।—कहो कहो, आज क्यों ऐसे प्रसन्न हो रहे हो ? कौन सा नाटक करने का विचार है और उसमें ऐसा कौन सा रस है कि फूले नहीं समाते ?

सू० ।—आः तुमने अब तक न जाना ? आज मेरा विचार है कि इस समय के बने एक नये नाटक की लीला करूं क्योंकि संस्कृत नाटकों को अपनी भाषा में अनुवाद कर के तो हम लोग अनेक बार खेल चुके हैं फिर बारम्बार उन्हीं के खेलने को जी नहीं चाहता।

पा० ।—तुमने बात तो बहुत अच्छी सोची, वाह क्यों नहो, पर यह तो कहो कि वह नाटक बनाया किसने है ?

सू० ।—हम लोगों के परम मित्र हरिश्चन्द्र ने।

पा० ।—(मुंह फेरकर) किसी समय तुम्हारी बुद्धि में भी भ्रम हो जाता है। भला वह नाटक बनाना क्या जानै ? वह तो केवल आरम्भशूर है और अनेक बड़े बड़े कवि हैं, कोई उनका प्रबन्ध खेलते ?

सू० ।—(हंसकर) इसमें तुम्हारा दोष नहीं, तुम तो उस से नित्य नहीं मिलते, जो लोग उसके संग में रहते हैं वे तो उसको जानते ही नहीं तुम बिचारे क्या हौ !

पा० ।—(आश्चर्य से) हां मैं तो जानताही न था, भला कहो उनके दो चार गुण मैं भी सुन सकता हूं।

सू० ।—क्यों नहीं, पर जो श्रद्धा से सुनो तो।

पा० ।—मैं प्रति रोम को कर्ण बना कर महाराज पृथु हो रहा हूं, आप कहिए।

सू०—(आनंद से) सुनो—

परम प्रेम निधि रसिक वर , अति उदार गुन खान ।
जग जन रंजन आशु कबि , को हरिचंद समान ॥ ३ ॥
जिन श्री गिरिधरदास कवि , रचे ग्रन्थ चालीस ।
ता सुत श्री हरिचन्द कों , को न नवावै सीस ॥ ४ ॥
जग जिन तृन सम करि तज्यो , अपने प्रेम प्रभाव ।
करि गुलाब सों आचमन , लीजत वाको नांव ॥ ५ ॥
चन्द टलै सूरज टलैं , टलैं जगत के नेम ।
यह दृढ़ श्री हरिचन्द को , टलै न अविचल प्रेम ॥ ६ ॥

पा० ।—वाह वाह ! मैं ऐसा नहीं जानता था, तब तो अब इस प्रयोग में देर करनी ही भूल है।

(नेपथ्य में)

श्रवन सुखद भव भय हरन , त्यागिन कों अत्याग ।
नष्ट जीव बिनु कौन हरि , गुन सों करै विराग ॥
कृम सोंहू तजि जात नहिं , परम पुन्य फल जौन ।
कृष्ण कथा सों मधुर तर , जग में भाखौ कौन ॥ ८ ॥

सू० ।—(सुन कर आनन्द से) आहा ! वह देखो मेरा प्यारा छोटा भाई शुकदेव जी बन कर रंगशाला में आता है और हम लोग बातों ही से नहीं सुलझे। तो अब मारिष ! चलो, हम लोग भी अपना अपना वेष धारण करें ॥

पा० ।—क्षण भर और ठहरो मुझे शुकदेव जी के इस वेष की शोभा देख लेने दो तब चलूंगा ॥

सू० ।—सच कहा, अहा कैसा सुन्दर बना है, वाह मेरे भाई वाह। क्यों न हो आख़िर तो मुझ रंगरंज का भाई है ॥

अति कोमल सब अंग रंग सांवरो सलोना ।

घूंघर वाले बालन पैं बलि वारौं टोना ॥
भुज विसाल मुख चन्द झलमले नैन लजौंहैं ।
जुग कमान सो खिंचीं गड़त हिय मैं दोउ भौंहैं ॥
छवि लखत नैंन छिन नहिं टरत शोभा नहिं कहि जात है ।
मनु प्रेम पुंजही रूप धरि आवत आजु लखात है ॥ ८ ॥

तो चलो हम भी अपने अपने स्वांग सज कर आवैं ।

॥ दोनों जाते हैं ॥

॥ इति प्रस्तावना ॥

॥ अथ विष्कम्भक ॥

॥ आनन्द में झूलते हुए डगमगी चाल से शुकदेव जी आते हैं ॥

शु०।—(व्रजन सुखद इत्यादि फिर से पढ़ कर) अहा संसार के जीवों की कैसी विलक्षण रुचि है, कोई नेम धर्म में चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान में मस्त, कोई मत मतान्तर के झगड़े में मतवाला हो रहा है, एक दूसरे को दोष देता है, अपने को अच्छा समझता है, कोई संसार ही को सर्वस्व मान कर परमार्थ से चिढ़ता है, कोई परमार्थ ही को परम पुरुषार्थ मान कर घर बार तृण सा छोड़ देता है, अपने अपने रंग में सब रंगे हैं, जिसने जो सिद्धान्त कर लिया है वही उस के जी में गड़ रहा है और उसी के खंडन मंडन में जन्म बिताता है, पर वह जो परम प्रेम अमृत मय एकान्त भक्ति है, जिस्के उदय होते ही अनेक प्रकारके आग्रह स्वरूप ज्ञान विज्ञानादिक अंधकार नाश हो जाते हैं और जिस के चित्त में आते ही संसार का निगड़ आप से आप खुल जाता है—किसी को नहीं मिली ; मिले कहां से, सब उस के अधिकारी भी तो नही हैं, और भी, जो लोग धार्म्मिक कहाते हैं उन का चित्त, स्वमत स्थापन और पर मत निराकरण रूप वादविवाद से, और जो विचारे विषयी हैं उनका अनेक प्रकार की इच्छा रूपी तृष्णा से, अवसर तो पाताही नहीं कि इधर झुके (सोच कर) अहा इस मदिरा को शिव जी ने पान किया है और कोई क्या पियेगा ? जिस के प्रभाव से अर्द्धाङ्ग में बैठी पार्वती भी उन को विकार नहीं कर सकती, धन्य हैं धन्य हैं और दूसरा ऐसा कौन है (विचार कर) नहीं नहीं व्रज की गोपियों ने उन्हें भी जीत लिया है, आहा इन

का कैसा विलक्षण प्रेम है कि अकथनीय और अकरणीय है क्योंकि जहां माहात्म्य ज्ञान होता है वहां प्रेम नहीं होता और जहां पूर्ण प्रीति होती है वहां माहात्म्य ज्ञान नहीं होता। ये धन्य हैं कि इन में दोनों बातें एक संग मिलती हैं, नहीं तो मेरा सा निवृत्त मनुष्य भी रात दिन इन्हीं लोगों का यश क्यों गाता?

(नेपथ्य में बीणा बजती है)

(आकाश की ओर देख कर और बीणा का शब्द सुन कर) आहा! यह आकाश कैसा प्रकाशित हो रहा है और बीणा के कैसे मधुर स्वर कान में पड़ते हैं, ऐसा संभव होता है कि देवर्षि भगवान नारद यहां आते हैं? आहा! बीणा कैसे मीठे सुर से बोलती है (नेपथ्य पथ की ओर देख कर) अहा वही तो हैं, धन्य हैं कैसी सुन्दर शोभा है।—

पिंग जटा को भार सीस पैं सुन्दर सोहत।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत॥
कटि मृगपति को चरम चरन मैं घुंघरू धारत।
नारायण गोविन्द कृष्ण यह नाम उचारत॥
लै बीना कर बादन करत तान सात सुर सों भरत।
जग अघ छिनमैं हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भवजलतरत॥ १०॥
जुग तूंबन की बीन परम सोभित मन भाई।
लय अरु सुर की मनहुं युगल गठरी लटकाई॥
आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोहैं।
कै कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग मन मोहैं॥
कै श्री राधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट।
यह अगम खजाने द्वै भरे नित खरचत तो हू अघट॥ ११॥
मनु तीरथ मय कृष्ण चरित की कांवरि लीने।
कै भूगोल खगोल दोउ कर अमलक कीने॥
जग बुधि तौलन हेत मनहुं यह तुला बनाई।
भक्ति मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई॥
मनु गांवन सों श्री राग के बीना हू फलती भई।
कै राग सिन्धु के तरन हित यह दोऊ तूंबी लई॥ १२॥
ब्रह्म जीव, निरगुन सगुन, द्वैताद्वैत विचार।

नित्य अनित्य विवाद के , है तूंबा निरधार ॥ १३ ॥
जो इक तूंबा लै कढ़े , सो वैरागी होय ।
क्यौं नहिं ये भव सों वढ़ैं , लै तूंबा कर दोय ॥ १४ ॥

तो अब इन से मिल के आज मैं परमानन्द लाभ करूंगा।

(नारद जी आते हैं)

शु० ।—(आगे बढ़ कर और गले से मिल कर) आइए आइए, कहिए कुशल तो है ? किस देश को पवित्र करते हुए आते हैं।

ना० ।—आपसे महापुरुष के दर्शन हों और फिर भी कुशल न हो यह बात तो सर्व्वथा असम्भव है ; और आप से तो कुशल पूछना ही व्यर्थ है।

शु० ।—यह तो हुआ अब कहिए आप आते कहां से हैं ?

ना० ।—इस समय तो मैं श्री वृन्दावन से आता हूं।

शु० ।—अहा ! आप धन्य हैं जो उस पवित्र भूमि से आते हैं (पैर छू कर) धन्य है उस भूमि की रज, कहिए वहां क्या क्या देखा ?

ना० ।—वहां परमप्रेमानन्दमयी श्री व्रजवल्लवी लोगोंका दर्शन करके अपने को पवित्र किया और उनको विरहावस्था देखता बरसों वहीं भूला पड़ा रहा, अहा ये श्री गोपीजन धन्य हैं, इनके गुणगण कौन कह सकता है।

गोपिन की सरि कोऊ नाहीं।
जिन तृन सम कुल लाज निगड़ सब तोर्‌यो हरि रस माहीं ॥
जिन निज बस कीने नंदनन्दन विहरीं दै गलबांहीं।
सब सन्तन के सीस रहौ इन चरन छत्र की छांहीं ॥ १५ ॥
व्रज के लता पता मोहि कीजै।
गोपी पद पंकज पावन की रज जामैं सिर भींजै ॥
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै ।
श्री राधे राधे मुख यह बर मुंह मांग्यौ हरि दीजै ॥ १६ ॥

(प्रेम अवस्था में आते हैं और नैनों से आंसू बहते हैं)

शु० ।—(अपने आंसू पोंछ कर) अहा धन्य हैं आप धन्य हैं, अभी जो मैं न सम्हालता तो वीना आप के हाथ से छूट के गिर पड़ती, क्यों न हो श्री महादेव जी के प्रीतिपात्र हो कर आप ऐसे प्रेमी हों इस में आश्चर्य नहीं।

ना० ।—(अपने को सम्हाल कर) अहा ये क्षण कैसे आनन्द से बीते हैं, यह आप से महात्मा की संगत का फल है।

शु० ।—कहिए उन सब गोपियों में प्रेम विशेष किस का है ।

ना० ।—विशेष किस का कहूं और न्यून किस का कहूं, एक से एक बढ़ कर हैं, श्री मती की कोई बात ही नहीं वह तो श्री कृष्ण ही हैं लीलार्थ दो हो रही हैं तथापि सब गोपियों में श्री चन्द्रावली जी के प्रेम की चरचा आज काल व्रज के डगर डगर में फैली हुई है। अहा! कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता पिता भाई बन्धु सब निषेध करते हैं और उधर श्री मती जी का भी भय है तथापि श्री कृष्ण से जल में दूध की भांति मिल रही हैं, लोक लाज गुरुजन कोई बाधा नहीं कर सकते किसी न किसी उपाय से श्री कृष्ण से मिल ही रहती हैं ।

शु० ।—धन्य हैं धन्य हैं, कुल को वरन जगत को अपने निर्म्मल प्रेम से पवित्र करने वाली हैं ।

(नेपथ्य में वेणु का शब्द होता है)

अहा! यह वंशी का शब्द तो और भी व्रज लीला की सुधि दिलाता है, चलिए चलिए अब तो प्रभु का वियोग सहा नहीं जाता; शीघ्र ही चल के उन का प्रेम देखें; उस लीला के बिना देखे आंखें व्याकुल होरही हैं।

॥ दोनों जाते हैं ॥

॥ इति प्रेमसुख नामक विष्कम्भक ॥

॥ अंक प्रथम ॥

। जवनिका उठी ॥

स्थान श्री वृन्दाबन, गिरिराज दूर से दिखाता है।

(श्री चन्द्रावली और ललिता आती हैं)

ल० ।—प्यारी व्यर्थ इतना शोच क्यों करती है ?

चं० ।—नहीं सखी मुझे शोच किस बात का है ।

ल० ।—ठीक है, ऐसी ही तो हम मूर्ख हैं कि इतना भी नहीं समझतीं ।

चं० ।—नहीं सखी मैं सच कहती हूं मुझे कोई शोच नहीं।

ल० ।—बलिहारी सखी एक तूही तो चतुर है हम सब तो निरी मूर्ख हैं ।

चं० ।—नहीं सखी जो कुछ शोच होता तो मैं तुझ से कहती न? तुझ से ऐसी कौन बात है जो छिपाती।

ल० ।—इतनीही तो कसर है जो तू मुझे अपनी प्यारी सखी समझती तो क्यों छिपाती ?

चं० ।—चल मुझे दुख न दे भला मेरी प्यारी सखी तू न होगी तो और कौन होगी ।

ल० ।—पर यह बात मुख से कहती है, चित्त से नहीं ।

चं० ।—क्यों ?

ल० ।—जो चित्त से कहती तो फिर मुझ से क्यों छिपाती ?

चं० ।—नहीं सखी यह केवल तेरा झूठा सन्देह है ।

ल० ।—सखी मैं भी इसी प्रेम में रहती हूं और सब के रंग ढंग देखती ही हूं तू मुझ से इतना क्यों डरती है क्या तू यह समझती है कि मैं यह भेद किसी से कह दूंगी, ऐसा कभी न समझना सखी तू तो मेरी प्राण है मैं तेरा भेद किस से कहने जाऊंगी ?

चं० ।—सखी भगवान न करे कि किसी को किसी बात का सन्देह पड़ जाय जिस को जो संदेह पड़ जाता है वह फिर कठिनता से मिटता है ।

ल० ।—अच्छा तू सौगंद खा ।

चं० ।—हां सखी तेरी सौगंद ।

ल० ।—क्या मेरी सौगंद ?

चं० ।—तेरी सौगंद कुछ नहीं है ।

ल० ।—क्या कुछ नहीं है फिर तू चूकी न अपनी चाल से ? तेरी छिपा छिपाई नहीं जाती, तू व्यर्थ इतना क्यों छिपाती है सखी तेरा मुखड़ा कहे देता है कि तू कुछ न कुछ सोचा करती है ।

चं० ।—क्यों सखी मेरा मुखड़ा क्या कहे देता है ?

ल० ।—यही कहे देता है कि तू किसी की प्रीति में फंसी है ।

चं० ।—बलिहारी सखी मुझे अच्छा कलंक दिया ।

ल० ।—यह बलिहारी कुछ काम न आवेगी अन्त में फिर मैं ही काम आऊंगी और मुझी से सब कुछ कहना पड़ेगा क्योंकि इस रोग का वैद्य मेरे सिवा दूसरा कोई न मिलेगा ।

चं० ।—पर सखी जब कोई रोग हो तब न ?

ल० ।—फिर वही बात कहे जाती है अब क्या मैं इतना भी नहीं समझती सखी भगवान ने मुझे भी आंखें दी हैं और मेरे भी मन है और मैं कुछ ईंट पत्थर की नहीं बनी हूं ।

चं० ।—यह कौन कहता है कि तू ईंट पत्थर की बनी है इससे क्या ।

ल० ।—इससे यह कि इस व्रज में रह कर उससे वही बची होगी जो ईंट पत्थर की होगी ।

चं० ।—किससे ?

ल० ।—जिसके पीछे तेरी यह दशा है ।

चं० ।—किसके पीछे मेरी यह दशा है ?

ल० ।—सखी तू फिर वही बात कहे जाती है । मेरी रानी, ये आंखें ऐसी बुरी हैं कि जब किसीसे लगती हैं तो कितना भी छिपाओ नहीं छिपतीं।

छिपाये छिपत न नैन लगे।
उघरि परत सब जानि जात हैं घूंघट मैं न खगे॥
कितनो करो दुराव दुरत नहिं जब ये प्रेम पगे।
निडर भये उघरे से डोलत मोहन रंग रंगे॥

चं० ।—वाह सखी क्यों न हो तेरी क्या बात है अब तूही तो एक पहेली बूझने वालों में बची है चल बहुत झूठ न बोल कुछ भगवान से भी डर।

ल० ।—जो तू भगवान से डरती तो झूठ क्यों बोलती वाह सखी अब तो तू बड़ी चतुर हो गई है कैसा अपना दोष छिपाने को मुझे पहिले ही से झूठो बना दिया (हाथ जोड़ कर)। धन्य है, तू दंडवत करने के योग्य है कृपा करके अपना बांयां चरण निकाल तो मैं भी पूजा करूं, चल मैं आज पीछे तुझ से कुछ न पूछूं गी ।

चं० ।—(कुछ सकपकानी सी हो कर) नहीं सखी तू क्यों झूठी है झूठी तो मैं हूं और जो तूही बात न पूंछे गी तो कौन बात पूछे गा, सखी तेरेही भरोसे तो मैं ऐसी निडर रहती हूं और तू ऐसी रूसी जाती है !

ल० ।—नहीं बस अब मैं कभी कुछ नहीं पूंछने की एक बेर पूछकर फल पा चुकी।

चं० ।—(हाथ जोड़कर) नहीं सखी ऐसी बात मुंह से मत निकाल, एक तो मैं आपही मर रही हूं तेरी बात सुनने से और भी अधमरी हो जाऊं गी (आंखों मे आंसू भर लेती है)।

ल० ।—प्यारी तुझे मेरी सौगन्द। उदास न हो मैं तो सब भांति तेरी हूं और तेरे भले के हेतु प्राण देने को तयार हूं यह तो मैंने हंसी की थी क्या मैं नहीं जानती कि तू मुझ से कोई बात न छिपावेगी और छिपावेगी तो काम कैसे चलेगा देख !

हम भेद न जानि हैं जोपै कछू औ दुराव सखी हम सें परि है।
कहि कौन मिलै है पियारे पियै पुनि कारज कासों सखै सरि है॥
बिन मोसों कहे न उपाव कछू यह बेदन दूसरी को हरि है।
नहिं रोगी बताइहै रोगहि जौ सखी बापुरी बैद कहा करि है॥

चं०।—तो सखी ऐसी कौन बात है जो तुझसे छिपी है तू जान बूझ के बार बार क्यों पूछती है ऐसे पूछने को तो मुंह चिढ़ाना कहते हैं और इसके सिवा मुझे व्यर्थ याद दिला कर क्यों दुःख देती है हा!

ल०।—सखी मैं तो पहिले ही समुझी थी, यह तो केवल तेरे हठ करने से मैंने इतना पूछा नहीं तो मैं क्या नहीं जानती?

चं०।—सखी मैं क्या करूं मैं कितना चाहती हूं कि यह ध्यान भुला दूं पर उस निठुर की छबि भूलती नहीं इसी से सब जान जाते हैं।

ल०।—सखी ठीक है।

लगौं हीं चितवनि औरहि होति।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति॥
घूंघट मैं नहिं थिरत तनिकहूं अति ललचौंहीं बानि।
छिपत न कैसहुं प्रीति निगोड़ी ये अन्त जात सब जानि॥

चं०।—सखी ठीक है जो दोष है वह इन्हीं नेत्रों का है यही रीझते, यही अपने को छिपा नहीं सकते और यही दुष्ट अंत में अपने किये पर रोते हैं।

सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सों भये पराये हरि सों जब सों जाइ जुरे॥
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छांड़ी ऐसे ये निगुरे॥
जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं हठ सों तनिक मुरे।
अमृत भरे देखत कमलन से बिष के बुते छुरे॥

ल०।—इस में क्या सन्देह है, मेरे पर तो सब कुछ बीत चुकी है मैं इन के व्यवहारों को अच्छी रीति से जानती हूं ये निगोड़े नैन ऐसेही होते हैं।

होत सखी ये उलझौंहैं नैन।
उरझि परत सुरझ्यौ नहिं जानत सोचत समुझत हैं न॥
कोऊ नाहिं बरजै जो इन को बनत मत्त जिमि गैन।
कहा कहौं इन बैरिन पाछे होत लैन के दैन॥

च० ।—और फिर इन का हठ ऐसा है कि जिस की छवि पर रीझते हैं उसे भूलते नहीं, और कैसे भूलैं क्या वह भूलने के योग्य है हा !

नैना वह छवि नाहिं न भूले ।
दया भरी चहुं दिसि की चितवनि नैन कमल दल फूले ॥
वह आवनि वह हंसनि छबीली वह मुसकनि चितचोरैं ।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहुं कोरैं ॥
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे ।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे ॥
पर बस भये फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे ।
हरि ससि मुख ऐसी छवि निरखत तन मन धन सबहारे ॥

ल० ।—सखी मेरी तो यह बिपति भोगी हुई है इस से मैं तुझे कुछ नहीं कहती ; दूसरी होती तो तेरी निन्दा करती और तुझे इस से रोकती ।

च० ।—सखी दूसरी होती तो मैं भी तो उस से यों एक संग न कह देती । तू तो मेरी आत्मा है । तू मेरा दुख मिटावैगी कि उलटा समझावैगी ?

ल० ।—पर सखी एक बड़े आश्चर्य्य की बात है कि जैसी तू इस समय दुखी है वैसी तू सर्व्वदा नहीं रहती ।

च० ।—नहीं सखी ऊपर से दुखी नहीं रहती पर मेरा जी जानता है जैसे रातें बीतती हैं ।

मन मोहन तें बिछुरी जब सों तन आंसुन सों सदा धोवती हैं ।
हरिचंद जू प्रेम के फंद परी कुल की कुल लाज हि खोवती हैं ॥
दुख के दिन कों कोऊ भांति बितै बिरहागम रैन संजोवती हैं ।
हमहीं अपुनी दसा जानैं सखी निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं ॥

ल० ।—यह हो पर मैंने तुझे जब देखा तब एक ही दशा में देखा और सर्व्वदा तुझे अपनी आरसी वा किसी दर्पण में मुंह देखते पाया पर वह भेद आज खुला ।

हौं तो याही सोच मैं बिचारत रही री काहें,
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है ।
त्यौंही हरिचन्द जू बियोग औ संयोग दोऊ,
एक से तिहारे कछु लखि न परत है ॥
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात,

तू तौ परम पुनीत प्रेम पथ बिचरत है ।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसत ताहि,
आरसी मैं रैन दिन देखियो करत है ॥

सखी ! तू धन्य है बड़ी भारी प्रेमिन है और प्रेम शब्द को सार्थ करने वाली और प्रेमियों की मंडली की शोभा है।

च० ।—नहीं सखी ! ऐसा नहीं है मैं जो आरसी देखती थी उस का कारण कुछ दूसरा ही है। हा ! (लम्बी सांस ले कर) सखी ! मैं जब आरसी में अपना मुंह देखती और अपना रंग पीला पाती थी तब भगवान से हाथ जोड़ कर मनाती थी कि भगवान मैं उस निर्दयी को चाहूं पर वह मुझे न चाहे, हा ! (आंसू टपकाते हैं)

ल० ।—सखी तुझे मैं क्या समझाऊंगी पर मेरी इतनी विनती है कि तू उदास मत हो जो तेरी इच्छा हो मैं पूरी करने को उद्यत हूं।

च० ।—हा ! सखी यही तो आश्चर्य है कि मुझे इच्छा कुछ नहीं है और न कुछ चाहती हूं तौ भी मुझको उसके वियोग का बड़ा दुःख होता है।

ल० ।—सखी मैं तो पहिले ही कह चुकी कि तू धन्य है संसार में जितना प्रेम होता है कुछ इच्छा लेकर होता है और सब लोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख में सुख मानती है यह तेरी चाल संसार से निराली है, इसीसे मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मंडल को पवित्र करने वाली है।

च० ।—(नैनों में जल भर कर मुख नीचा कर लेती है)

(दासी आकर)

दा० ।—अरी, मैया खीझ रही है के काहि ! घर के कछू और हू कामकाज हैं के एक हाहा ठीठी ही है, चल उठि, भोर सों यहीं पड़ी रही।

च० ।—चल आऊं बिना बात की बकवाद लगाई (ललिता से) सुन सखी इसकी बातें सुन, चल चलैं (लम्बी सांस लेकर उठती है) ॥

(तीनों जाती हैं)

॥ स्नेहालाप नामक पहिला अंक समाप्त हुआ ॥

दूसरा अंक।

स्थान केले का वन।

समय संध्या का, कुछ बादल छाये हुए।

(वियोगिन बनी हुई श्री चन्द्रावली जी आती हैं)

चं: ।—(एक वृक्ष के नीचे बैठ कर) वाह प्यारे! वाह! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हो; और निश्चय बिना तुम्हारी कृपा के इसका भेद कोई नहीं जानता; जानैं कैसे? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं, जिसने जो समझा है उसने वैसा ही मान रक्खा है ; हा! यह तुम्हारा जो अखंड परमानन्द मय प्रेम है और जो ज्ञान वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शान्ति देनेवाला है उसका कोई स्वरूप ही नहीं जानता, सब अपने ही सुख में और अभिमान में भूले हुए हैं; कोई किसी स्त्री से वा पुरुष से उसको सुन्दर देख कर चित्त लगाना और उस से मिलने का अनेक यत्न करना इसी को प्रेम कहते हैं, और कोई ईश्वर को बड़ी लम्बी चौड़ी पूजा करने को प्रेम कहते हैं—पर प्यारे तुम्हारा प्रेम इन दोनों से विलक्षण है, क्योंकि यह अमृत तो उसी को मिलता है जिसे तुम आप देते हो। (कुछ ठहर कर) हाय! किससे कहूं और क्या कहूं और क्यों कहूं और कौन सुनै और सुनै भी तो कौन समुझै— हा!

जग जानत कौन है प्रेम बिथा केहिसों चरचा या वियोग की कीजिए।
पुनि को कही मानै कहा समुझै कोऊ क्यों बिन बातकी रारहि लीजिए॥
नित जो हरिचन्द जू बीतै सहै बकि कै जग क्यों परतीतहि छीजिए।
सब पूछत मौन क्यों बैठि रही पिय प्यारे कहा इन्हें उत्तर दीजिए।

क्योंकि—

मरम की पीर न जानत कोय।
कासो कहौं कौन पुनि मानैं बैठि रहीं घर रोय॥
कोऊ जरनि न जाननहारी बे महरम सब लोय।
अपुनी कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुझाऊं सोय॥
लोक लाज कुल की मरजादा दीनी है सब खोय।
हरीचन्द ऐसेहि निबहैगी होनी होय सो होय॥

परन्तु प्यारे तुम तो सुनने वाले हो ? यह आश्चर्य है कि तुम्हारे होते हमारी यह गति हो प्यारे! जिनको नाथ नहीं होते वे अनाथ कहाते हैं (नेत्रों से आंसू गिरते हैं) प्यारे! जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यों ?

पहिले मुसुकाइ लजाइ कछू क्यों चिते मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइ कै प्रीति निबाहन को क्यों कलाम कियो॥
हरिचन्द भये निरमोही इतै निज नेह को यों परिनाम कियो।
मनमांहि जो तोरनही को हुती अपनाइ कै क्यों बदनाम कियो॥

प्यारे तुम बड़े निरमोही हो, हा! तुम्हें मोह भी नहीं आता ? (आंख में आंसू भर कर) प्यारे इतना तो वे नहीं सताते जो पहिले सुख देते हैं तो तुम किस नाते इतना सताते हो ? क्योंकि—

जिय सूधी चितौन की साधै रही सदा बातन मैं अनखाय रहे।
हंसि कै हरिचन्द न बोले कभूं जिय दूरहि सों ललचाय रहे॥
नहिं नेकु दया उर आवत है करि कै कहा ऐसे सुभाय रहे।
सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले जिहि के बदले यों सतायरहे॥

हा!

क्या तुम्हें लाज भी नहीं आती ? लोग तो सात पैर* संग चलते हैं उस का जन्म भर निबाह करते हैं और तुमको नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है! नहीं नहीं तुम्हारा तो ऐसा स्वभाव नहीं था यह नई बात है, यह बात नई है या तुम आप नये होगये हो ? भला कुछ तो लाज करो।

किलकों ढरिगो वह प्यार सबै क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।
हरिचन्द भये हौ कहा के कहा अन बोलिबे मैं नहिं छाजत हौ॥
नित को मिलनो तो किनारे रह्यो मुख देखत ही दुरि भाजत हौ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइ कै नेह न रूसिबे मैं अब लाजत हौ॥

प्यारे जो यही गति करनी थी तो पहिले सोच लेते। क्योंकि,

तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहैं, तुम्हैं सो कहा प्यारे सुनात नहीं।
बिरदावली आपुनी राखौ मिलौ मोहि सोचिबे की कोउ बात नहीं॥
हरिचन्द जू होनो हुतो सो भई इन बातन सों कछू हात नहीं।
अपनावते सोच बिचारि अबै जल पान कै पूछनो जात नहीं॥

---

* सप्तपदी-विवाह समय की भांवरी।

प्राणनाथ !—(आंखों में आंसू उमड़ उठे) अरे नेत्रो अपने किये का फल भोगो।

धाइ कै आगे मिलीं पहिले तुम कौन सों पूछि कै सो मोहिं भाखौ।
त्यों सब लाज तजी छिन में केहि के कहे एतो कियो अभिलाखौ॥
काज बिगारि सबै अपुनो हरिचन्द जू धीरज क्यौं नहिं राखौ।
क्यौं अब रोइ कै प्रान तजौ अपुने किये को फल क्यौं नहिं चाखौ॥

हा! इन दुखियान कों न सुख सपने हू मिल्यौ यौंहीं सदा व्याकुल विकल अकुलायंगी। प्यारे हरिचन्द जू की बीती जानि औध जौपैं जैहैं प्रान तऊ येतो साथ न समायंगी॥ देख्यौ एक बारहू न नैन भरि तोहिं यातें जौन जौन लोक जैहैं तहीं पछितायंगी। बिना प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय देखि लीजो आंखें ये खुली ही रहि जायंगी॥

परन्तु प्यारे अब इनको दूसरा कौन अच्छा लगैगा जिसे देख कर यह धीरज धरैंगी, क्योंकि अमृत पीकार फिर छाछ कैसे पियैंगी।

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो अब का करिए कहि पेखिए का।
सुख छांड़ि कै संगम को तुम्हरे इन तुच्छन कों अब लेखिए का॥
हरिचंद जू हीरन को बेवहारन कै कांचन कों लै परेखिए का।
जिन आंखिन में तुव रूप बस्यौ उन आंखिन सों अब देखिए का॥

इससे नेत्र तुम तो अब बंद ही रहो (आंचल से नेत्र छिपाती है)।

(बनदेवी * संध्या † और वर्षा ‡ आती हैं)

सं०।—अरी बन देवी! यह कौन आंखिनें मूंदि कै अकेली या निरजन बन में बैठि रही है।

ब० दे०।—अरी का तू याहि नायं जानै?. यह राजा चन्द्र भानु की बेटी चन्द्रावली है।

वर्षा०।—तो यहां क्यौं बैठी है।

ब० दे०।—राम जानै (कुछ सोचकर) अहा जानी! अरी, यह तो सदा ह्यांई बैठी बक्यौ करै है और यह तो या बन के स्वामी के पीछें बावरी होय गई है।

---

* हरा कपड़ा, पत्ते का किरीट, फूलों की माला।

† गहिरा नारंजी कपड़ा।

‡ रंग सांवला लाल कपड़ा।

वर्षा।—तौ चलौ यासूं कछू पूछ।
व० दे०।—चल।

(तीनों पास जाती हैं)

व० दे०।—(चन्द्रावली के कान के पास) अरी मेरी वन की रानी चन्द्रावली! (कुछ ठहर कर) राम! सुनै हू नहीं है (और ऊंचे सुर से) अरी मेरी प्यारी सखी चन्द्रावली! [कुछ ठहर कर] हाय! यह तौ अपुने भौं बाहर होय रही है अब काहे कों सुनैगी (और ऊंचे सुर से) अरी! सुनै नांय नै री मेरी अलख लड़ैती चन्द्रावली!

चं०।—(आंख बंद किये ही) हां हां अरी क्यों चिल्लाय है चोर भाग जायगो—

व०दे०।—कौन सो चोर?

चं०।—माखन को चोर, चीरन को चोर, और मेरे चित्त को चोर।

व० दे०।—सो काहां सों भाग जायगो?

चं०।—फेर बकै जाय है अरी मैंने अपनी आंखिन में मूंदि राख्यौ है सो तू चिल्लायगी तौ निकसि भागैगो।

व०दे०।—(चन्द्रावली के पीठ पर हाथ फेरती है)।

चं०।—(जल्दी से उठ, वन देवी का हाथ पकड़ कर) कहो! प्राणनाथ अब कहां भागोगे।

(वन देवी हाथ छुड़ाकर एक ओर और वर्षा सन्ध्या दूसरी ओर वृक्षों के पास हट जाती हैं)

चं०।—अच्छा क्या हुआ योंहीं हृदय से भी निकल जाओ तो जानूं तुमने हाथ छुड़ा लिया तो क्या हुआ मैं तो हाथ नहीं छोड़ने की, हा! अच्छी प्रीति निबाही!

(वन देवी सीठी बजाती है)

चं०।—देखो दुष्ट का, मेरा तो हाथ छुड़ा कर भाग गया अब न जानैं कहां खड़ा बंशी बजा रहा है। अरे छलिया कहां छिपा है? बोल बोल कि जीते जी न बोलैगा (कुछ ठहर कर) मत बोल मैं आप पता लगा लूंगी (वन के वृक्षों से पूछती है)। अरे वृक्षो बताओ तो मेरा लुटेरा कहां छिपा है? क्योंरे मोरो इस समय नहीं बोलते नहीं तो रात को बोल बोल के प्राण खाये जाते थे कहो न वह कहां छिपा है (गाती है)

अहो अहो बन के रूख कहूं देख्यौ पिय प्यारो।

मेरो हाथ छुड़ाइ कहौ वह कितै सिधारो ॥
अहो कदम्ब अहो अम्ब निम्ब अहो वकुल तमाला ।
तुम देख्यौ कहुं मन मोहन सुन्दर नंदलाला ॥
अहो कुंज बन लता विरुध टन पूछत तोसों ।
तुम देखे कहूं श्याम मनोहर कहहु न मोसों ॥
अहो जमुना अहो खग मृग हो अहो गोवरधन गिरि ।
तुम देखे कहुं प्रान पियारे मन मोहन हरि ॥ ८ ॥

(एक एक पेड़ से जा कर गले लगती है)

(वन देवी फिर सीठी बजाती है)

च० ।—अहा देखो उधर खड़े प्रान प्यारे मुझे बुलाते हैं तो चलो उधर ही चलैं (अपने आभरण संवारती है)।

(वर्षा और संध्या पास आती हैं)

व० ।—[हाथ पकड़ कर] कहां चली सजि कै ?

चं० ।—पियारे सों मिलन काज।

व० ।—कहां तू खड़ी है ?

चं० ।—प्यारे ही को यह धाम है।

व० ।—कहा कहै सुख सों ?

चं० ।—पियारे प्रान प्यारे।

व० ।—कहा काज है ?

चं० ।—पियारे सों मिलन मोहि काम है।

व० ।—मैं हूं कौन बोल तौ ?

चं० ।—हमारे प्रान प्यारे हौ न ?

व० ।—तू है कौन ?

चं० ।—पीतम पियारे मेरो नाम है।

सं० ।—(आश्चर्य से) पूछत सखी के एकै उत्तर बतावति जको सो एक रूप आज श्यामा भई श्याम है।

(वन देवी आ कर चन्द्रावली के पीछे से आंख बन्द करती है)

चं० ।—कौन है कौन है ?

व०दे० ।—मैं हूं।

चं० ।—कौन तू है ?

ब०दे० ।—(सामने आ कर) मैं हूं तेरी सखी हन्दा ।

चं० ।—तो मैं कौन हूं ?

ब०दे० ।—तू तो मेरी प्यारी सखी चन्द्रावली है न ? तू अपने हूं कों भूलगई ।

चं० ।—तो हम लोग अकेले बन में क्या कार रही हैं ?

ब०दे० ।—तू अपने प्राण नाथै खोजि रही है न ?

चं० ।—हा ! प्राननाथ ! हा ! प्यारे ! प्यारे अकेले छोड़ के कहां चले गये ? नाथ । ऐसी ही बदी थी ! प्यारे यह बन इसो बिरह का दुःख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे साथ विहार करने को ? हा !

जो पैं ऐसिहि करन रही ।
तो फिर क्यौं अपने सुख सौं तुम रस की बात कही ॥
हम जानी ऐसिहि बीतैगी जैसी बीति रही ।
सो उलटी कीनी बिधिना ने कछू नाहिं निबही ॥
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरे चाल गही ।
हरीचंद कहा को कहा ह्वै गयो कछु नहिं जात कही ॥

(रोती है)

ब०दे० ।—(आंखों में आंसू भर के) प्यारी ! अरी इतनी क्यों घबराई जाय है देख तो यह सखी खड़ी हैं सो कहा कहैंगी ।

चं० ।—ये कौन हैं ?

ब०दे० ।—(वर्षा को दिखा कर) यह मेरी सखी वर्षा है ।

चं० ।—यह वर्षा है तो हा ! मेरा वह आनन्द का घन कहां है ? हा ? मेरे प्यारे ! प्यारे कहां बरस रहे हो ? प्यारे गरजना इधर और बरसना और कहीं ?

" बलि सांवरी सूरत मोहनी मूरत आंखिन को कबौं आइ दिखाइये ।
चातिक सी मरैं प्यासी परीं इन्हैं पानिप रूप सुधा कबौं प्याइये ॥
पीत पटै बिजुरी से कबौं हरिचंद जू धाइ इते चमकाइये ।
इतहू कबौं आइ कै आनन्द के घन नेह को मेह पिया बरसाइये " ॥

प्यारे ! चाहे गरजो चाहे लरजो इन चातकों को तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं है, क्योंकि फिर यह कौन सुनैगा कि चातक ने दूसरा जल पी लिया ; प्यारे तुम तो ऐसे करुणा के समुद्र हो कि केवल हमारे एक जाचक के मांगने पर नदी नद भर देते हो तो चातक के इस

छोटे चंचु पुट भरने में कौन श्रम है क्योंकि प्यारे हम दूसरे पच्छी नहीं हैं कि किसी भांति प्यास बुझा लेंगे हमारे तो हे श्याम घन तुम्ही अवलम्ब हो ; हा !

(नेत्रों में जल भर लेती है और तीनों परस्पर चकित हो कर देखती हैं)

व० दे० ।—सखी देखि तो काछू इन को हू सुन काछू इन की हू लाज कर अरी यह तो नई आई हैं ये कहा कहैंगी ?

सं० ।—सखी यह काहा कहै है हम तो याको प्रेम देखि बिना मोल की दासी होय रही हैं और तू पंडिताइन बनि कै ज्ञान छांटि रही है।

चं० ।—प्यारे ! देखो ये सब हंसती हैं—तो हंसैं, तुम आओ, कहां बन में छिपे हो ? तुम मुंह दिखलाओ इन को हंसने दो।

धारन दीजिए धीर हिए कुलकानि को आजु बिगारन दीजिए ।
मारन दीजिए लाज सबै हरिचंद कलंक पसारन दीजिए ॥
चार चवाइन कों चहुं ओर सों सोर मचाइ पुकारन दीजिए ।
छांड़ि संकोचन चंद मुखै भरि लोचन आजु निहारन दीजिए ॥

क्योंकि

ये दुखियां सदा रोयो करैं बिधना इन कों कबहूं न दियो सुख ।
झूठहीं चार चवाइन के डर देख्यौ कियो उनहीं को लिये रुख ॥
छांडो सबै हरिचंद तऊ न गयो जिय सों यह हाय महा दुख ।
प्रान बचैं केहि भांति न सों तरसैं जब दूर सों देखिवें को सुख ॥

(रोती है)

व० दे० ।—(आंसू अपने आंचल से पोंछ कर) तो ये यहां नांय रहिवे की, सखी एक घड़ी धीरज धर जब हम चली जांय तब जो चाहियो सो करियो।

चं० ।—अरी सखियो मोहि छमा करियो. अरी देखो तो तुम मेरे पास आई और हम ने तुमारो कछू सिष्टाचार न कियो [नेत्रों में आंसू भर कर हाथ जोड़ कर] सखी मोहि छमा करियो और जानियो कि जहां मेरी बहुत सखी हैं उन में एक ऐसी कुलच्छिनी हू है।

सं० औ० व० ।—नहीं नहीं सखी तू तो मेरी प्रानन सों हूं प्यारी है, सखी हम सच कहैं तेरी सी सांची प्रेमिन एक हू न देखी ऐसे तो सबी प्रेम करैं पर तू सखी धन्य है।

चं० ।—हां सखी और [संध्या को दिखा कर] या सखी को नाम का है ?

व० दे० ।—याको नाम संध्या हैं।

चं० ।—[घबड़ा कर] संध्यावली आई ? क्या कुछ संदेसा लाई ? कहो कहो प्रान प्यारे ने क्या कहा ? सखी बड़ी देर लगाई [कुछ ठहर कर] संध्या हुई ? संध्या हुई ? तो वह बन से आते होंगे सखियो चलो झरोखों में बैठें यहां क्यों बैठी हो।

[नेपथ्य में चन्द्रोदय होता है, चन्द्रमा को देख कर]

अरे २ वह देखो आया [उंगली से दिखा कर]

देख सखी देख घनमेरुऐसो भेख यह जाहि पेखतेजरविहू को मंदह्वै गयो।
हरीचंद ताप सब जियको नसाइ चित आनंद बढ़ाइ भाइ अति छकिसों छयो॥
ग्वाल उडुगन बीच बेनु को बजाइ सुधा रसबरखाइ मानकमल लजा दयो।
गोरज समूह घन पटल उघारि वह गोप कुल कुमुद निसाकर उदै भयो॥

चलो चलो उधर चलो [उधर दौड़ती है]

व० दे० ।—[हाथ पकड़ कर] अरी बावरी भई है चन्द्रमा निकस्यो है कै वह बन सों आवै है ?

चं० ।—[घबड़ा कर] का सूरज निकस्यो ? भोर भयो हाय ! हाय ! हाय ! या गरमी में या दुष्ट सूरज की तपन कैसे सही जायगी, अरे भोर भयो हाय भोर भयो ! सब रात ऐसें ही बीत गई, हाय फेर वही घर के व्यौहार चलैंगे, फिर वही नहानो वही खानो वेई बातें, हाय !

केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं अटके कित कौन विचार लयो।
नहिं जानि परै हरिचंद कछू बिधि ने हम सों हठ कौन ठयो॥
निसि आजहू की गई हाय बिहाय पिया बिनु कैसे न जीव गयो।
हत भागिनी आंखिनकों नित के दुख देखिवे कों फिर भोर भयो॥

तो चलो घर चलैं, हाय हाय ! मां सों कौन बहाना करूंगी, क्योंकि वह जात ही पूछैगी कि सब रात अकेली बन में कहा करती रही। [कुछ ठहर कर] पर प्यारे ! भला यह तो बताओ कि तुम आज की रात कहां रहे ? क्यों देखो तुम हम से झूठ बोले न ! बड़े झूठे हो, हा ! अपनों से तो झूठ मत बोला करो, आओ आओ अब तो आओ॥

आउ मेरे झूठन के सिरताज।
छल के रूप कपट की मूरत मिथ्यावाद जहाज॥
क्यों परतिज्ञा करी रह्यो जो ऐसो उलटो काज।
पहिले तो अपनाइ न आवत तजिवे में अब लाज॥

चलो दूर हटो बड़े झूठे हो।

आउ; मेरे मोहन प्यारे झूठे।

अपनी टारि प्रतिज्ञा कपटी उलटे हमसों रूठे॥

मति परसौ तन रंगे और के रंग अधर तुव जूठे।

ताहू पै तनिको नहिं लाजत निरलज अहो अनूठे॥

पर प्यारे बताओ तो तुमारे बिना रात क्यौं इतनी बढ़ जाती है।

काम कछू नहिं यासों हमैं सुख सों जहां चाहिए रैन बिताइए।

पै जो करैं बिनती हरिचंद जू उत्तर ताको कृपा कै सुनाइए॥

एक मतो उनसों क्यौं कियो तुम सोउ न आवै जो आपन आइए।

रूसिबे सों पिय प्यारे तिहारे दिवाकर रूसत है क्यौं बताइए॥

जाओ जाओ मैं नहीं बोलती (एक वृक्ष की आड़ में दौड़ जाता है)

तीनों।—भई! यह तो बावरी सी डोले, चलो हम सब वृक्ष की छाया में बैठें [किनारे एक पासही तीनों बैठ जाती हैं]।

चं०।—(घबड़ाई हुई आती है अंचल केश इत्यादि खुल जाते हैं। कहां गया कहां गया? बोल! उलटा रूसना, भला अपराध मैंने किया कि तुमने? अच्छा मैंने किया सही, क्षमा करो, आओ, प्रगट हो, मुंह दिखाओ, भई बहुत भई, गुद गुदाना वहां तक जहां तक रुलाई न आवै। (कुछ सोच कर) हा! भगवान किसी को किसी की कनौड़ी न करै, देखो मुझ को इसकी कैसी बातैं सहनी पड़ती हैं, आपही नहीं भी आता उलटा आपही रूसता है, पर क्या करूं अब तो फंस गई; अच्छा योंहीं सही (अहो अहो वन के रूख इत्यादि गाती हुई वृक्षों से पूछती है) हाय! कोई नहीं बतलाता अरे मेरे नित के साथियो कुछ तो सहाय करो।

अरे पौन सुख भौन सबै थल गौन तुम्हारो।

क्यौं न कहौ राधिका रौन सों मौन निवारो।

अहे भंवर तुम श्याम रंग मोहन व्रत धारी।

क्यौं न कहौ वा निठुर श्याम सों दसा हमारी॥

अहे हंस तुम राज बंस सरवर की सोभा।

क्यौं न कहो मेरे मानस सों या दुख के गोभा॥

हे सारस तुम नीकें बिछुरन बेदन जानो।

तौ क्यौं पीतम सों नहिं मेरी दसा बखानी ॥
हे कोकिल कुल स्याम रंग के तुम अनुरागी ।
क्यौं नहिं बोलहु तहीं जाय जहं हरि बड़ भागी ॥
हे पपिहा तुम पिउ पिउ पिय पिय रटत सदाई ।
आजहु क्या नहिं रटि रटि कै पिय लेहु बुलाई ॥
अहे भानु तुम तौ घर घर में किरिन प्रकासो ।
क्यौं नहिं पियहिं मिलाइ हमारो दुख तम नासो ॥

हाय !

कोउ नहिं उत्तर देत भये सबही निरमोही ।
प्रान पियारे अब बोलो कहां खोजों तोही ॥

(चन्द्रमा बदली की ओट हो जाता है और बादल छा जाते हैं)

(स्मरण करके) हाय ! मैं ऐसी भूली हुई थी कि रात को दिन बतलाती थी, अरे मैं किस को ढूंढ़ती थी, हा ! मेरी इस मूर्खता पर उन दोनों सखियों ने क्या कहा होगा, अरे यह तो चन्द्रमा था जो बदली के ओट में छिप गया। हा ! यह हतयारिन वर्षा ऋतु है, मैं तो भूल ही गई थी, इस अंधेरे में मार्ग तो दिखाता ही नहीं चलूंगी कहां और घर कैसे पहुंचूंगी ? प्यारे देखो जो जो तुम्हारे मिलने में सुहाने जान पड़ते थे वही अब भयावने हो गये, हा ! जो बन आंखों से देखने में कैसा भला दिखाता था वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है, देखो सब कुछ है एक तुम्हीं नहीं हो (नैनों से आंसू गिरते हैं) प्यारे ! छोड़ के कहां चले गये ? नाथ ! आखैं बहुत प्यासी हो रही हैं इनको रूप सुधा कब पिलाओगे ? प्यारे बेनी की लट बंध गई है इन्हें कब सुलझाओगे (रोती है) नाथ इन आंसुओं को तुम्हारे बिना और कोई पोंछने वाला भी नहीं है, हा ! यह गत तो अनाथ की भी नहीं होती, अरे बिधिना ! मुझे कौन सा सुख दिया था जिसके बदले इतना दुःख देता है, सुख का तो मैं नाम सुन के चौंक उठती थी और धीरज धर के कहती थी कि कभी तो दिन फिरैंगे सो अच्छे दिन फिरे। प्यारे बस बहुत भई अब नहीं सही जाती, मिलना हो तो जीते जी मिलजाओ। हाय ! जो भर आंखों देख भी लिया होता तो जी का उमाह निकल गया होता, मिलना दूर रहै मैं तो मुंह देखने को तरसती थी, कभी सपने में भी गले न लगाया, जब सपने में देखा तभी घबड़ा कर चौंक उठी,

हाय ! इन घरवालो और बाहर वालों के पीछे कभी उनसे रोरो कर अपनी विपत भी न सुनाई कि जी भर जाता, लो घर वालो और बाहरवालो ब्रज को सम्हालो मैं तो अब यहीं (कंठ गद्गद हो कर रोने लगती है) हाय रे निठुर! मैं ऐसा निरमोही नहीं समझी थी, अरे इन बादलों की ओर देख के तो मिलता, इस ऋतु में तो परदेसी भी अपने घर आजाते हैं पर तू न मिला, हा! मैं इसी दुख देखने को जीती हूं कि वर्षा आवै और तुम न आओ, हाय! फिर वर्षा आई, फिर पत्ते हरे हुए, फिर कोइल बोली पर प्यारे तुम न मिले, हाय! सब सखियां हिंडोले झूलती होंगी पर मैं किस के संग झूलूं, क्योंकि हिंडोला झुलाने वाले मिलैंगे पर आप भींज कर मुझे बचाने वाला और प्यारी कहने वाला कौन मिलैगा (रोती है) हा! मैं बड़ी निर्लज्ज हूं, अरे प्रेम मैंने प्रेमिन बन कर तुझे भी लज्जित किया कि अब तक जीती हूं, इन प्रानों को अब न जानैं कौन लाहे लूटने हैं कि नहीं निकलते। अरे कोई देखो मेरो छाती वज्र की तो नहीं है कि अब तक (इतना कहते ही मूर्छा खाकर ज्योंही गिरा चाहती है उसी समय तीनों सखियां आकर सम्हालती हैं)

[जवनिका गिरती है]

॥ प्रियान्वेषण नामक दूसरा अंक समाप्त हुआ ॥

॥ दूसरे अंक के अन्तर्गत ॥

॥ अंकावतार ॥

॥ बोथी. हृच्च. ॥

॥ सम्ध्यावली दौड़ी हुई आती है ॥

सं० ।—राम राम! मैं तो दौरत दौरत हार गई, या ब्रज की गऊ का हैं सांड हैं; कैसी एक साथ पूंछ उठाय कै मेरे संग दौरी हैं, तापैं वा निपूते, सुबल को बुरो होय और हू तूमड़ी बजाय कै मेरी ओर उन सबनै लहकाय दीनी, अरे जो मैं एक संग प्रानन्नै छोड़ि कै न भाजती तो उनके रपट्टा सैं कबकी आय जाती। देखि आज वा सुबल की कौन गति कराऊं, बड़ो ढीठ भयो है प्रानन की हांसी कौन काम की। देखो तौ आज सोमवार है नन्द गांव में हाट लगी होयगी वहीं जाती इन सबन

ने बीच हीं आय धरी, मैं चन्द्रावली को पाती वाके यारैं सौंप देती तो इतनो खुटकौज न रहतो (घबड़ा कर) अरे आईं ये गौवें तो फेर इतैही कूं अररराई । (दौड़ कर जाती है और चोली में से पत्र गिर पड़ता है)

(चंपकलता आती है)

चं० ल० ।—(पत्र गिरा हुआ देख कर) अरे ! यह चिट्ठी किसकी पड़ी है किसी की हो देखूं तो इस में क्या लिखा है (उठा कर देखती है) राम राम ! न जानै किस दुखिया की लिखी है कि आंसुओं से भींज कर ऐसी चपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलने में फटी जाती है (बड़ी कठिनाई से खोल कर पढ़ती है)

" प्यारे !

क्या लिखूं ! तुम बड़े दुष्ट हो-चलो-भला सब अपनी वीरता हमी पर दिखानी थी, हां ! भला मैंने तो लोक वेद अपना बिराना सब छोड़ कर तुम्हें पाया तुमने हमें छोड़ के क्या पाया ? और जो धर्म्म उपदेश करो तो धर्म्म से फल होता है, फल से धर्म्म नहीं होता, निर्लज्ज लाज भी नहीं आती मुंह ढको फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो, चलो वाह ! अच्छी प्रीति निबाही, जो हो तुम जानते ही हो, हाय कभी न करूंगी योंहीं सही अन्त मरना है मैंने अपनी ओर से खबर दे दी अब मेरा दोष नहीं बस ।

केवल तुम्हारी "

(लंबी सांस लेकर) हा ! बुरा रोग है न करै कि किसी के सिर बैठे बिठाए यह चक्र घहराय, इस चिट्ठी के देखने से कलेजा कांपा जाता है, बुरा ! तिस में स्त्रियों की बड़ी बुरी दशा है क्योंकि कपोतव्रत बुरा होता है कि गला घोंट डालो मुंह से बात न निकले । प्रेम भी इसी का नाम है, राम राम उस मुंह से जीभ खींच लीजाय जिससे हाय निकले । इस व्यथा को मैं जानती हूं और कोई क्या जानैगा क्योंकि जाके पांव न

भई बिवाई सो क्या जाने पीर पराई। यह तो हुआ पर यह चिट्ठी है किस की यह न जान पड़ी (कुछ सोच कर) अहा जानी! निश्चय यह चन्द्रावली ही को चिट्ठी है क्योंकि अक्षर भी उसी के से हैं और इसपर चन्द्रावली का चिन्ह भी बनाया है। हा! मेरी सखी बुरी फंसी, मैं तो पहिले ही उसके लच्छनों से जान गई थी पर इतना नहीं जानती थी; अहा गुप्त प्रीति भी विलक्षण होती है, देखो इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं, मनुष्य न इधर का होता न उधर का, संसार के सुख छोड़ कर अपने हाथ आप मूर्ख बन जाता है। जो हो यह पत्र तो मैं आप उन्हें जा कर दे आऊंगी और मिलने की भी बिनती करूंगी॥

(नेपथ्य में बूढ़ों के से सुर से)

हां तू सब करैगी।

चं०।—(सुन कर और सोच कर) अरे यह कौन है (देख कर) न जाने कोऊ बूढ़ी फूस सी डोकरी है, ऐसो न होय के यह बात फोड़ि के उलटी आग लगावे, अब तो पहिलें याहि समझ्यावनो पय्यौ, चलूं (जाती है)

॥ इति द्वितीयांके भेदप्रकाशनामकोऽङ्कावतारः॥

॥ तीसरा अंक ॥

॥ समय तीसरा पहर, गहिरे बादल छाये हुए॥

॥ स्थान तालाब के पास एक बगीचा॥

॥ झूला पड़ा है, कुछ सखी झूलती कुछ इधर उधर फिरती हैं॥

[चन्द्रावली, माधवी काममञ्जरी, विलासिनी, इत्यादि एक स्थान पर बैठी हैं, चन्द्रकान्ता, वल्लभा, श्यामला, भामा, झूले पर हैं, कामिनी और माधुरी हाथ में हाथ दिये घूमती हैं.]

का०।—सखी देख बरसात भी अब की किस धूम धाम से आई है मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इन के जीतने को अपनी सेना भिजवाई है। धूम से चारो ओर से घूम घूम कर बादल परे के परे जमाये बगपंगति का निशान उड़ाये लपलपाती नंगी तलवार सी बिजली चमकाते गरज गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखा सा कुछ अलग पुकार पुकार गा रहे हैं। कुल की मर्य्याद ही पर इन निगोड़ों की चढ़ाई है। मनोरथों से कलेजा

उमगा आता है और काम की उमंग जो अंग अंग में भरी हैं उनके नि-
काले बिना जी तिलमिलाता है। ऐसे बादलों को देख कर कौन लाज
को चद्दर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है।

माधु०।—विशेष कर वह जो आप कामिनी हो (हंसती है)।

का०।—चल तुझे हंसने ही की पड़ी है। देख भूमि चारो ओर हरी हरी
हो रही है। नदी नाले बावली तालाब सब भर गये। पच्छी लोग पर
समेटे पत्तों की आड़ में चुप चाप सकपके से होकर बैठे हैं। बीरबहू-
टी और जुगनूं पारी पारी रात और दिन को इधर उधर बहुत दिखाई
पड़ती हैं। नदियों के करारे धमाधम टूट कर गिरते हैं। सर्प्प निकल
निकल अशरण से इधर उधर भागे फिरते हैं। मार्ग बन्द हो रहे हैं।
परदेसी जो जिस नगर में हैं वहीं पड़े पड़े पछता रहे हैं आगे बढ़ नहीं
सकते। वियोगियों को तो मानो छोटा प्रलय काल ही आया है।

माधु०।—छोटा क्यों बड़ा प्रलय काल आया है। पानी चारो ओर से उमड़
ही रहा है। लाज के बड़े बड़े जहाज गारद हो चुके, भया फिर वियो-
गियों के हिसाब तो संसार डूबाही है तो प्रलय ही ठहरा।

का०।—पर तुझ को तो बटे छाया का अवलम्ब है न, फिर तुझे क्या, भां-
डीर बट के पास उस दिन खड़ी बात करही रही थी, गए हम—

माधु०।—और चन्द्रावली ?

का०।—हां चन्द्रावली बिचारी तो आप ही गई बीती है, उस में भी अब
तो पहरे में है, नज़र बन्द रहती है, झलक भी नहीं देखने पाती.
अब क्या—

माधु०।—जाने दे नित्य का झंखना। देख फिर पुरवैया झकोरने लगी और
वृक्षों से लपटी लताएं फिर से लरजने लगीं। साड़ियों के आंचल और
दामन फिर उड़ने लगे और मोर लोगों ने एक साथ फिर शोर किया।
देख यह घटा अभी गरज गई थी पर फिर गरजने लगी।

का०।—सखी बसन्त का ठंढा पवन और सरद की चांदनी से राम राम
कर के वियोगियों के प्राण बच भी सकते हैं पर इन काली काली घटा
और पुरवैया के झोंके तथा पानी के एकतार झमाके से तो कोई भी न
बचैगा।

साधु०।—तिस में तू तो कामिनी ठहरी तू बचना क्या जाने।

का०।—चल ठठोलिन। तेरी आंखों में अभी तक उस दिन की खुमारी भरी है इसी से किसी को कुछ नहीं समझती। तेरे सिर बीते तो मालूम पड़े।

साधु०।—बीती है मेरे सिर। मैं ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़ूं।

का०।—चल तू रुई है क्या कि न उबल पड़ेगी। स्त्री की बिसात ही कितनी। बड़े बड़े योगियों के ध्यान इस बरसात में छूट जाते हैं, कोई योगी होने ही पर मन ही मन पछताते हैं, कोई जटा पटक कर हाय हाय चिल्लाते हैं और बहुतेरे तो तूमड़ी तोड़ तोड़ कर योगी से भोगी हो ही जाते हैं।

साधु०।—तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुंकवाकर तुमड़ी तोड़वा ले।

का०।—चल! तू क्या जाने इस पीर को। सखी यही भूमि और यही कदम्ब कुछ दूसरे ही हो रहे हैं और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किये देते हैं। तुझे प्रेम हो तब सूझे। इस आनन्द की धुनि में संसार ही दूसरा एक विचित्र शोभा वाला और सहज काम जगाने वाला मालूम पड़ता है।

साधु०।—कामिनी पर काम का दावा है इसी से हेरफेर उसी को बहुत छेड़ा करता है।

(नेपथ्य में बारम्बार मोर कूकते हैं)

का०।—हाय हाय इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विष पान ही है। इन दईमारों का कूकना और पुरवैया का झकोर कर चलना यह दो बात बड़ी कठिन है। धन्य हैं वे जो ऐसे समय में रंग रंग के कपड़े पहिने ऊंची ऊंची अटारियों पर चढ़ी पीतम के संग घटा और हरियाली देखती हैं वा बगीचों, पहाड़ों और मैदानों में गलबाहीं डाले फिरती हैं। दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रंगीन कपड़े निचोड़ कर चौगुना रंग बढ़ाते हैं। झूलते हैं झुलाते हैं, हंसते हैं, हंसाते हैं, भींगते हैं भिंगाते हैं, गाते हैं गवाते हैं, और गले लगते हैं लगाते हैं।

साधु०।—और तेरो न कोई पानी बचानेवाला न तुझे कोई निचोड़नेवाला, फिर चौगुने की कौन कहै ड्योढ़ा सवाया तो तेरा रंग बढ़े ही गा नहीं।

का० ।—चल सुखिन ! जाके पायं न भई बिवाई सो क्या जाने पीर पराई।

(बात करती करती पेड़ की आड़ में चली जाती है)

माधवी।— (चन्द्रावली से) सखी श्यामला का दर्शन कर, देख कैसी सुहा-वनी मालूम पड़ती है। मुखचन्द्र पर चूनरी चुई पड़ती है। लटें सगबगी हो कर गले में लपट रही हैं। कपड़े अंग में लपट गये हैं। भीगने से मुख का पान और काजल सब की एक बिचित्र शोभा हो गई है।

चं०।—क्यों न हो। हमारे प्यारे की प्यारी है। मैं पास होती तो दोनों हाथों से इस की बलैया लेती और छाती से लगाती।

का०सं०।—सखी सचमुच आज तो इस कदंब के नीचे रंग बरस रहा है। जैसी समा बंधी है वैसीही झूलने वाली हैं। झूलने में रंग रंग के साड़ी की अर्द्ध चन्द्राकार रेखा इन्द्र धनुष की छबि दिखाती है। कोई सुख से बैठी झूले की ठंढी ठंढी हवा खा रही है, कोई गाती गांधे लांग कसे पेंग मारती है, कोई गाती है, कोई डरकर दूसरी के गले में लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगंद देती है पर दूसरी उस को चिढ़ाने को झूला और भी झोंके से झुला देती है।

माध०।—हिंडोरा ही नहीं झूलता। हृदय में पीतम को झुलाने के मनो-रथ और नैनों में पिया की मूर्ति भी झूल रही है। सखी आज सांवला ही की मेंहदी और चूनरी पर तो रंग है। देख बिजुली की चमक में उस की मुखछबि कैसी सुन्दर चमक उठती है और वैसे पवन भी बार बार घूंघट उलट देता है। देख—

झूलति हिये में प्रान प्यारे के बिरह सूल फूलित उमंग भरी झूलति हिंडोरे पै।
गावति रिझावति हंसावति सबन हरिचंद चाव चौगुनो बढ़ाइ घन घोरे पै॥
वारि वारि डारौं प्रान हंसनि मुरनि बतरान मुंह पान कजरारे दृग डोरे पै।
ऊनरीघटामें देखिदूनरी लगीहै आहा कैसी आजु चूनरीफबीहै मुखगोरे पै॥

चं०।—सखियो देखो कैसो अंधेर और गजब है कि या रुत में सब अपनों मनोरथ पूरो करैं और मेरी यह दुरगति होय। भलो काहुवे तो दया आवती। (आंखों में आंसू भर लेती है)

माध०।—सखी तू क्यों उदास होय है। हम सब कहा करैं हम तो आज्ञा कारिणी दासी ठहरीं, हमारो का अखत्यार है तऊ हममैं सों तो कोऊ कछु तोहि नायं कहै।

का०सं०।—भलो सखी हम याहि कहा कहैंगी याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी।

विला०।—हां सखी हमारी तो दोऊ स्वामिनी हैं। सखी बात यह है कै ख़राबी तो हम लोगन की है, ये दोऊ फेर एक की एक होंयगी। लाठी मारवे सों पानी थोरों हूं जुदा हो जायगो, पर अभी जो सुन पावैं कि इनकी सखी ने चन्द्रावलियै अकेलि छोड़ि दीनो तो फेर देखौ तमासा।

माध०।—हस्वै,बीर। और फिर कामहू तौ हमीं सब बिगारैं। अब देखि कौन नै स्वामिनी सों चुगली खाई। हमारेई तुमारे में सों वहू है। सखी चन्द्रावलियै जो दुःख देयगी वह आप दुःख पावैगी।

चं०।—(आप ही आप) हाय। प्यारे हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते, प्यारे फिर फिर यह शरीर कहां और हम तुम कहां? प्यारे यह संयोग हम को तो अब की ही बना है फिर यह बातैं दुर्लभ हो जायंगी। हाय नाथ! मैं अपने इन मनोरथों को किस को सुनाऊं और अपनी उमंगें कैसे निकालूं। प्यारे रात छोटी है और स्वांग बहुत हैं। जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा। हाय! मुझ सी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं। रात दिन रोते ही बीतते हैं। कोई बात पूछने वाला नहीं क्योंकि संसार में जी कोई नहीं देखता सब ऊपर ही की बात देखते हैं। हाय! मैं तो अपने पराये सब से बुरी बन कर बेकाम हो गई। सब को छोड़ कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुमने यह गति की। हाय। मै किस की होके रहूं, मैं किस का मुंह देख कर जिऊं। प्यारे मेरे पीछे कोई ऐसा चाहने वाला न मिलैगा। प्यारे फिर दीया लेकर मुझ को खोजोगे। हा तुमने विश्वासघात किया। प्यारे तुम्हारे निर्दयीपन की भी कहानी चलैगी। हमारा तो कपोतव्रत है। हाय स्नेह लगा कर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो। बकरा जान से गया पर खाने वाले को स्वाद न मिला। हाय यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे। वाह खूब निबाह किया। बधिक भी बध कर सुधि लेता है पर तुमने न सुधिली। हाय एक वेर तो आकर अंक में लगा जाओ। प्यारे जीतेजी आदमी का गुन नहीं मालूम होता। हाय फिर तुम्हारे मिलने को कौन तरसैगा और कौन रोवेगा। हाय संसार छोड़ा भी नहीं जाता सब दुःख सहती

हूं पर इसी में फंसी पड़ी हूं। हाय नाथ! चारो ओर से जकड़ कर ऐसी बे काम क्यों करडाली है। प्यारे योंही रोने दिन बीतेंगे। नाथ यह हवस मन की मन ही में रह जायगी। प्यारे प्रगट होकर संसार का मुंह क्या नहीं बंद करते और क्यों शंका द्वार खुला रखते हो। प्यारे सब दीनदयालुता कहां गई! प्यारे जल्दी इस संसार से छुड़ाओ। अब नहीं सही जाती। प्यारे जैसी हैं तुम्हारी हैं। प्यारे अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ। नाथ जहां इतने गुन सीखे वहां प्रीति निबाहना क्यों न सीखा। हाय! मंझधार में डुबा कर ऊपर से उतराई मांगते हो प्यारे सो भी दे चुकी अब तो पार लगाओ। प्यारे सब की हद होती है। हाय हम तड़पें और तुम तमाशा देखो। जनकुटुम्ब से छुड़ा कर यों छितर बितर करके बेकाम कर देना यह कौन बात है। हाय सब की आंखों में हलकी हो गई। जहां जाओ वहां दूर दूर उस, पर यह गति। हाय "भामिनी तें भौंड़ी करी मानिनी तें मौड़ी करी कौड़ी करी हीरा तें कनौड़ी करी कुलतें" तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को जी चाहता है। बस अब मैं गाली दूंगी। और क्या कहूं बस आप आप ही हो; देखो गाली में भी तुम्हें मैं मर्म वाक्य कहूंगी— झूठे, निर्दय, निर्घृण, "निर्दय हृदयकपाट" बखेड़िये और निर्लज्ज ये सब तुम्हें सच्ची गालियां हैं; भला जो कुछ करनाही नहीं था तो इतना क्यों झूठ बके? किसने बकाया था? कूद कूद कर प्रतिज्ञा करने बिना क्या डूबी जाती थी? झूठे ? झूठे!! झूठे!!! झूठे ही नहीं वरंच विश्वासघातक; क्यों इतनी छाती ठोंक और हाथ उठा उठा कर लोगों को विश्वास दिया? आप ही सब मरते चाहे जहन्नुम में पड़ते, और उस पर तुर्री यह है कि किसी को चाहै कितना भी दुःखी देखैं आप को कुछ घृणा तो आती ही नहीं, हाय हाय कैसे कैसे दुखी लोग हैं—और मज़ा तो यह है कि सब धान बाइस पसेरी। चाहे आप के वास्ते दुःखी हो, चाहे अपने संसार के दुःख से आप को, दोनों उल्लू फंसे हैं। इसी से तो "निर्दयहृदय कपाट" यह नाम है। भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया? किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था? कुछ न होता तुम्ही तुम रहते बस चैन था केवल आनन्द था फिर क्यों यह विषमय संसार किया। बखेड़िये! और इतने बड़े कारखाने पर बेहयाई

परजेमिरे को। नाम बिके, लोग झूठा कहैं, अपने मारे फिरें, आप भी अपने मुंह झूठ बनें, पर वाहरे शुद्ध बेहयाई और पूरी निलज्जता। बेशरमी हो तो इतनी तो हो। क्या कहना है लाज को जूतों मार के पीट पीट के निकाल दिया है। जिस मुहल्ले में आप रहते हैं उस मुहल्ले में लाज की हवा भी नहीं जाती। जब ऐसे हो तब ऐसे हो। हाय! एक बार भी मुंह दिखा दिया होता तो मतवाले मतवाले बने क्यों लड़ लड़ कर सिर फोड़ते। अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो, काहे को ऐसे बेशरम मिलेंगे, हुकमी बेहया हो, कितनी गाली दूं बड़े भारी पूरे हो, शरमाओगे थोड़े ही कि माथा खालो करना सुफल हो। जाने दो—हम भी तो वैसीही निर्लज्ज और झूठीं हैं। क्यों न हों। जस दूलह तस बनी बराता। पर इस में भी सूल उपद्रव तुम्हाराही है, पर यह जान रखना कि इतना और कोई न कहैगा क्योंकि निफ़ारसी नेतिनेति कहैंगे, सच्ची थोड़े ही कहैंगे। पर वहतो कहो कि यह दुखमय पचड़ा ऐसा ही फैला रहैगा कि कुछ ते भी होगा या न ते होय। हम को क्या? पर हमारा तो पचड़ा छुड़ाओ। हाय मैं किस से कहती हूं। कोई सुनने वाला है। जंगल में मोर नाचा किसने देखा। नहीं नहीं वह सब देखता है, वा देखता होता तो अब तक न मेरी खबर लेता। पत्थर होता तो वह भी पसीजता। नहीं नहीं मैंने प्यारे को इतना दोष व्यर्थ दिया। प्यारे तुम्हारा दोष कुछ नहीं। यह सब मेरे कर्म्मों का दोष है। नाथ मैं तो तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूं। प्यारे क्षमा करो। मेरे अपराधों की ओर न देखो अपनी ओर देखो (रोती है)।

सा०।—हाय हाय सखियो यह तो रोय रही है।

का०सं०।—सखी प्यारी रोवे मती। सखी तोहि मेरे सिरकी सौंह जो रोवे।

सा०।—सखी मैं तेरे हाथ जोड़ूं मत रोवै। सखी हम सबन को जीव भर्यो आवै है।

वि०।—सखी जो तू कहैगी हम सब करैंगी। हम भले ही प्रिया जी की रिस सहैंगी पर तोसूं हम सब काहू बात सों बाहर नहीं।

सा०।—हाय हाय! यह तो मानै ही नहीं (आंसू पोंछ कर) मेरी प्यारी मैं हाथ जोड़ूं हा हा खाऊं मानि जा।

का०सं०।—सखी यासों मति कछू कहो। आओ हम सब मिलि कै बिचार करैं जासों याको काम होय।

वि० ।—सखी हमारे तो प्राणताईं यापैं निछावर हैं पर जो कछु उपाय सूझै ।

चं० ।—(रो कर) सखी एक उपाय मुझे सूझा है जो तुम मानो ।

मा० ।—सखी क्यों न मानैंगी तू कहै क्यों नहीं ।

चं० ।—सखी मुझे यहां अकेली छोड़ जाओ ।

मा० ।—तौ तू अकेली यहां का करैगी ?

चं० ।—जो मेरी इच्छा होगी ।

मा० ।—भलो तेरी इच्छा का होयगी हमहूं सुनैं ?

चं० ।—सखी वह उपाय कहा नहीं जाता ।

मा० ।—तौ का अपनो प्रान देगी । सखी हम ऐसी भोरी नहीं हैं के तोहि अकेली छोड़ जायंगी ।

वि० ।—सखी तू व्यर्थ प्राण देन को मनोरथ धारै है तेरे प्राण तोहि न छोड़ैंगे । जो प्राण तोहि छोड़ जायंगे तो इनकों ऐसो सुन्दर शरीर फिर कहां मिलैगो ।

का०मं० ।—सखी ऐसी बात हम सूं मति कहै. और जो कहै सो २ हम करिबे कों तयार हैं, और या बात को ध्यान तू अपने मन सें मति करि । जब ताईं हमारे प्राण हैं तब ताईं तोहि न मरन देंयगी पीछे भलेई जो होय सो होय ।

चं० ।—(रो कर) हाय ! मरने भी नहीं पाती । यह अन्याय ।

मा० ।—सखी अन्याय नहीं यही न्याय है ।

का०मं० ।—जान दे माधवी वासों मति कछू पूछै । आओ हम तुम मिल कै सलाह करैं अब का करनो चाहिए ।

वि० ।—हां माधवी तूही चतुर है तू ही उपाय सोच ।

मा० ।—सखी मेरे जी में तो एक बात आवै है । हम तीनि हैं सो तीनि काम बांटि लें । प्यारी जू के मनाइवे को मेरो जिम्मा । यही काम सब में कठिन है । और तुम दोउन में सों एक याके घरकेन सों याकी सफ़ाई करावै और एक लाल जू सों मिलिवे को कहै ।

का०मं० ।—लाल जी सों मैं कहूंगी । मैं विन्हें बहुती लजाऊंगी और जैसे होयगो वैसे यासों मिलाऊंगी ।

मा० ।—सखी वेऊ का करैं । प्रिया जी के डर सों कछू नहीं कर सकैं ।

वि० ।—सो प्रिया जी को जिम्मा तेरो हुई है ।

मा० ।—हां हां प्रिया जी को जिम्मां मेरो।

बि० ।—तौ याके घर को मेरो।

मा० ।—भयो फिर का। सखी काहू बात को शोच मति करै। उठि।

चं० ।—सखियो व्यर्थ क्यों यत्न करती हो। मेरे भाग्य ऐसे नहीं हैं कि कोई काम सिद्ध हो।

मा० ।—सखी हमारे भाग्य तो सीधे हैं। हम अपने भाग्य बल सों सब काम करैंगी।

का०मं० ।—सखी तू व्यर्थ क्यों उदास भई जाय है। जब तक सांसा तब तक आसा।

मा० ।—तौ सखी बस अब यह सलाह पक्की भई। जब ताईं काम सिद्ध न होय तब ताईं काहुवै खबर न परै।

बि० ।—नहीं खबर कैसे परैगी।

का०मं० ।—(चन्द्रावली का हाथ पकड़ कर) लै सखी अब उठि। चलि हिंडोरें झूलि।

मां० ।—हां सखी अब तौ अनमनोपन छोड़ि।

चं० ।—सखी छूटा ही सा है पर मैं हिंडोरे न झूलूंगी। मेरे तो नेत्र आप ही हिंडोरे झूला करते हैं।

पल पटुलीपैं डोर प्रेमकी लगायचारु आसाहीके खंभ दोय गाढ़कै धरत हैं।
झूमका ललितकाम पूरन उछाह भयौ लोकबदनामी झूमिझालर झरत हैं॥
हरीचन्द आंसू दृग नीर बरसाइ प्यारे पिया गुन गान सो मलार उचरत हैं।
मिलन मनोरथ के झोंटन बढ़ाइ सदा बिरह हिंडोरे नैन झूल्योई करत हैं॥

और सखी मेरा जी हिंडोरे पर उदास होगा।

मां० ।—तौ सखी तेरी जो प्रसन्नता होय। हम तौ तेरे सुख की गांहक हैं।

चं० ।—हा! इन बादलों को देख कर तो और भी जी दुखी होता है।

देखि घनस्याम घनस्यामकी सुरतिकरि जियमैं बिरहघटा घहरि घहरि उठै।
त्योंहींइन्द्रधनु बगमालदेखि बनमालमोतीलर पीकीजिय लहरिलहरि उठै॥
हरीचंद मोर पिकधुनिसुनि बंसीनाद बांकीछबि बार बार छहरिछहरि उठै।
देखि देखिदामिनि की दुगुनदमकपीतपटछोरे मेरे हियफहरि फहरि उठै॥

हाय! जो बरसात संसार को सुखद है वह मुझे इतनी दुखदाई हो रही है।

मा० ।—तौ न दुखदायिनी होयगी । चल उठि हर चलि ।

का०म० ।—हां चलि ।

(सब जाती हैं)

॥ जवनिका गिरती है ॥

॥ इति वर्षा वियोग विपत्ति नाम तृतिय अंक ॥

चौथा अंक ।

॥ स्थान चन्द्रावली जी की बैठक ॥

खिड़की में से यमुना जी दिखाई पड़ती हैं । पलंग बिछी हुई परदे पड़े हुए इतरदान पानदान इत्यादि सजे हुए ।

(* जोगिनी आती है)

जो० ।—अलख ! अलख ! आदेश आदेश गुरु को ! अरे कोई है इस घर में ?—कोई नहीं बोलता । क्या कोई नहीं है ? तो अब मैं क्या करूं ? बैठूं । का चिन्ता है । फकीरों को कहीं कुछ रोक नहीं । उस में भी हम प्रेम को जोगी । तो अब कुछ गावैं !

(बैठकर गाती है)

" कोई एक जोगिन रूप कियें ।
भौंहैं बंक छकोहैं लोयन चलि चलि कोयन कान छियें ॥
सोभा लखि मोहत नारीनर वारि फेरि जल सबहि पियें ।
नागर मनमथ अलख जगावत गावत कांधे बीन लियें ॥ १ ॥"

बनी मन मोहिनी जोगिनियां ।
गल सेली तन गेरुआ सारी केस खुले सिर बेंदी सोहिनियां ॥
माते नैन लाल रंग डोरे मद बोरे मोहैं सबन छलिनियां ।
हाथ सरंगी लिये बजावत गाय जगावत बिरह अगिनियां ॥ २ ॥

---

* गेरुआ सारी गहिना सब ज़नाना पहिने, रंग सांवला । सिंदूर का लम्बा टीका बेड़ा । बाल खुले हुए । हाथ में सरंगी लिये हुए । नेत्र लाल । अत्यन्त सुन्दर । जब जब गावैगी सरंगी बजाकर गावैगी ।

१ काफी । २ चैतीगौरी वा पीलू खेमटा ।

जोगिन प्रेम की आई ।
बड़े बड़े नैन छुए कानन लौं चितवन मद अलसाई ॥
पूरी प्रीति रीति रस सानी प्रेमी जन मन भाई ।
नेह नगर मैं अलख जगावत गावत बिरह बधाई ॥ ३ ॥
जोगिन आंखन प्रेम खुमारी ।
चंचल लोयन कोयन खुभि रही काजर रेख ढरारी ॥
डोरे लाल लाल रस बोरे फैली सुख उंजियारी ।
हाथ सरंगी लिये बजावत प्रेमिन प्रान पियारी ॥ ४ ॥
जोगिन मुख पर लट लटकाई ।
कारीघूंघर वारी प्यारी देखत सब मन भाई ॥
छूटे केस गेरुआ बागे सोभा दुगुन बढ़ाई ।
सांचे ढरी प्रेम की मूरति अंखियां निरखि सिराई ॥

(नेपथ्य में से पैंजनी की झनकार सुनकर)

अरे कोई आता है। तो मैं छिप रहूं। चुप चाप सुनूं। देखूं यह सब क्या बातैं करती हैं।

(जोगिन जाती है, ललिता आती है)

ल०।—हैं अब तक चन्द्रावली नहीं आई। सांझ हो गई, न घर में कोई सखी है न दासी, भला कोई चोर चकार चला आवै तो क्या हो। (खिड़की की ओर देखकर) अहा! यमुनाजी की कैसी शोभा हो रही है। जैसा वर्षा का बीतना और शरद का आरंभ होना वैसाही वृन्दावन के फूलों की सुगन्धि से मिले हुए पवन की झकोर से यमुना जी का लहराना कैसा सुन्दर और सुहावना है कि चित्त को मोहे लेता है। आहा! यमुना जी की शोभा तो कुछ कहीही नहीं जाती। इस समय चन्द्रावली होती तो यह शोभा उसे दिखाती। वा वह देखही के क्या करती उलटा उस का विरह और बढ़ता (यमुनाजी की ओर देख कर) निस्सन्देह इस समय बड़ीही शोभा है।

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
झुके कूल सों जल परसनहित मनहुं सुहाये ॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज सोभा ।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥

मनु आतप बारन तीर कौं सिमिटि सबै छाये रहत ।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥
कहूं तीर पर कमल अमल सोभित बहु भांतिन ।
कहुं सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पांतिन ॥
मनु हग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा ।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ॥
कै करि कै कर बहु पीय कौं टेरत निज ढिग सोहई ।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥
कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।
कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उच्चारत ॥
कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झांईं ।
कै ब्रज हरिपद परस हेत कमला बहु आईं ॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रज मण्डल बगरे फिरत ।
कै जानि लच्छमी भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ॥
तिनपैं जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति ।
जल मैं मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति ॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ावत देखि सुन्दर सो सोभा ॥
सो को कवि जो छवि कहि सकै ताछन जमुना नीर की ।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छवि इकसी नभ तीर की ॥
परत चन्द्र प्रतिबिम्ब कहूं जल मधि चमकायो ।
लोल लहर लहि नचत कबहुं सोई मन भायो ॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
कै तरङ्ग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो ॥
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है ।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है ॥
कबहुं होत सत चन्द कबहुं प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ॥
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ।

कै बाल गुडी नभ में उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ॥
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुंन जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ॥
कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत ।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत ॥
कूजत कहुं कलहंस कहूं मज्जत पारावत ।
कहुं कारंडव उड़त कहूं जल कुक्कुट धावत ॥
चक्रवाक कहुं बसत कहूं बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहूं पियत कहूं भ्रमरावलि गावत ॥
कहुं तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिधि पच्छी करत ।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥
कहूं बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आगम हेत पांवड़े मनहुं बिछाये ।
रत्नरासि करि चूर कूल में मनु बगराये ॥
मनु मुक्त मांग सोभित भरी , श्यामनीर चिकुरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर मैं , ब्रज निवास लखि हिय हरसि ॥

(चन्द्रावली अचानक आती है)

चं० ।—वाह वाहरी बहिना आजु तो बड़ी कबिता करी । कबिताई की मोट की मोट खोलि दीनी । मैं सब छिपें छिपें सुनती ।

(दबे पांव से योगिन आकर एक कोने में खड़ी हो जाती है)

ल० ।—भली भली बीर तोहि कबिता सुनिबे की सुधि तो आई हमारे इतनोई बहुत है ।

चं० ।—(सुनते ही स्मरण पूर्व्वक लम्बी सांस लेकर) ।

सखीरी क्यौं सुधि मोहि दिवाई ।
हौं अपने ग्रह कारज भूलि भूलि रही बिलमाई ॥
फिर वहै मन भयो जात अब मारिहौं जिय अकुलाई ।
हौं तबही लौं जगत काज की जब लौं रहौं भुलाई ।

व० ।—चल जान दे दूसरी बात कर।

जो० ।—(आप ही आप) निस्सन्देह इस का प्रेम पक्का है, देखो मेरी सुधि आतेही इस के कपोलों पर कैसी एक साथ ज़रदी दौड़ गई। नेत्रों में आंसुओं का प्रवाह उमग आया। मुंह सूख कर छोटासा हो गया। हाय! एकही पल में यह तो कुछ की कुछ हो गई। अरे इस की तो यही गति है।

छरीसी छकीसी जड़ भईसी जकीसी घर हारीसी बिकीसी सो तोसबही घरीरहै
बोले तें न बोले दृग खोले नाहिं डोले बैठी एकटक देखैसो खिलौनासी धरी रहै॥
हरीचन्द औरी घबरात समुझायें हाय हिचकि हिचकि रोवै जीवति मरी रहै।
याद आयें सखिन रोवावै दुख कहि कहि तौलौं सुख पावै जौलौं मुरछि परि रहै॥

अब तो मुझ से रहा नहीं जाता। इस से मिलने को अब तो सभी अंग व्याकुल हो रहे हैं।

चं०(ललिता की बात सुनी अनसुनी करके बांये अंग का फरकना देखकर आप ही आप) अरे यह असमय में अच्छा सगुन क्यों होता है (कुछ ठहर कर) हाय आशा भी क्या ही बुरी वस्तु है और प्रेम भी मनुष्य को कैसा अन्धा कर देता है। भला वह कहां और मैं कहां—पर जी इसी भरोसे पर फूला जाता है कि अच्छा सगुन हुआ है तो ज़रूर आवैंगे (हंसकर) हैं=उन को हमारी इस वखत फिकिर होगी। मान न मान, मैं तेरा मिहमान मन को अपनेही मतलब की सूझती है। मेरी पिय मोहि बात न पूछै तऊ सोहागिन नाम (लम्बी सांस लेकर) हा! देखो प्रेम की गति! यह कभी आशा नहीं छोड़ती। जिस को आप चाहो वह चाहै झूठ मूठ भी बात न पूछै पर अपने जी को यह भरोसा रहता है कि वे भी ज़रूर इतना ही चाहते होंगे,(कलेजे पर हाथ रख कर) रहो रहो क्यों उमगे आते हो धीरज धरो वे कुछ दीवार में से थोड़े ही निकल आवैंगे।

जो० ।—(आप ही आप होगा प्यारी ऐसा ही होगा। प्यारी मैं तो यहीं हूं। यह मेराही कलेजा है कि अंतर्यामी कहला कर भी अपने लोगों से मिलने में इतनी देर लगती है। (प्रगट सामने बढ़कर) अलख! अलख!॥

[दोनों आदर करके बैठाती हैं]

ल० ।—हमारे बड़े भाग जो आपुसी महात्मा के दर्शन भये।

चं० ।—(आप ही आप) न जानैं क्यौं इस योगिन की ओर मेरा मन आप से आप खिंचा जाता है।

जो० ।— भलो हम अतीतन को दर्शन काहा यौंहीं नित्यही घर घर डोलत फिरैं।

ल० ।— कहां तुम्हारो देस है।

जो० ।— प्रेम नगर पिय गांव।

ल० ।—कहा गुरू कहि बोलहीं।

जो० ।— प्रेमी मेरो नांव।

ल० ।—जोगलियो केहि कारनैं।

ल० ।— अपने पिय के काज।

ल० ।—मंत्र कौन

जो० ।— पियनामइक।

ल० ।— कहातज्यौ

जो० ।— जगलाज।

ल० ।—आसन कित

जो० ।— जितही रमे।

ल० ।— पन्थ कौन

जो० ।— अनुराग।

ल० ।—साधन कौन

जो० ।— पियामिलन।

ल० ।— गादी कौन

जो० ।— सुहाग।

नैन कहैं गुरु मन दियो , विरह सिद्धि उपदेस ।
तब सौं सब कछु छोड़िहम , फिरत देस परदेस ॥

चं० ।—(आपही आप) हाय! यह भी कोई बड़ी भारी वियोगिनि है तभी इस की ओर मेरा मन आप से आप खिंचा जाता है।

ल० ।—तौ संसार को जोग तो औरही रकम को है और आप को तो पन्थही दूसरो है। तौ भला हम यह पूछैं कि का संसार के और जोगी लोग वृथा जोग साधैं हैं।

जो० ।—यामैं का सन्देह है सुनो (सारङ्गी छेड़ कर गाती)।

पचि मरत हथा सब जोग जोग गिरधारी ।
सांची जोगिन पिय बिना वियोगिन नारी ॥
विरहागिन धूनी चारो ओर लगाई ।
बंसी धुनि को मुद्रा कानो पहिराई ॥
अंसुअन की सेली गल में लगत सुहाई ।
तन धूर जमी सोइ अंग भभूत रमाई ॥
लट उरझि रहीं सोई लटकाई लटकारी ।
सांची जोगिन पिय बिना वियोगिन नारी ॥
गुरु विरह दियो उपदेस सुनो व्रज बाला ।
पिय बिछुरन दुख का बिछाओ तुम मृगछाला ॥
मन के मन के की जपो पिया की माला ।
विरहिन की तो हैं सभी निराली चाला ॥
पीतम से लगी लौ अचल समाधि न टारी ।
सांची जोगिन पिय बिना वियोगिन नारी ॥
यह है सुहाग का अचल हमारे बाना ।
असगुन की मूरति खाक न कभी चढ़ाना ॥
सिर सेंदुर दे कर चोटी गूथ बनाना ।
कर चूरी मुख में रंग तमोल जमाना ॥
पीना प्याला भर रखना वही खुमारी ।
सांची जोगिन पिय बिना वियोगिन नारी ॥
है पंथ हमारा नैनों के मत जाना ।
कुल लोक वेद सब औ परलोक मिटाना ॥
शिवजी से जोगी को भी जोग सिखाना ।
हरिचन्द एक प्यारे से नेह बढ़ाना ॥
ऐसे वियोग पर लाख जोग बलिहारी ।
सांची जोगिन पिय बिना वियोगिन नारी ॥

चं० ।—(आपही आप) हाय हाय इस का गाना कैसा जी को बेधे डालता है। इस के शब्द का जीपर एक ऐसा विचित्र अधिकार होता है कि वर्णन के बाहर है। या मेरा जी ही चोटल हो रहा है। हाय हाय! ठीक प्रान प्यारे की सो इस की आवाज है। [बल पूर्वक आंसुओं को रोक

कर और जी बहला कर] कुछ इस से और गवाऊं। (प्रगट) योगिन जी कष्ट न हो तो कुछ और गाओ। (कह कर कभी चाव से उस की ओर देखती है और कभी नीचा सिर करके कुछ सोचने लगती है।)

जो० ।—(मुसका कर) अच्छा प्यारी ! सुनो (गाती है)

जोगिन रूप सुधा की प्यासी ।

बिनु पिय मिलें फिरत बनही बन छाई मुखहिं उदासी ॥
भोग छोड़ि धन धाम काम तजि भई प्रेम बनवासी ।
पिय हित अलख अलख रट लागी पीतम रूप उपासी ॥
मन मोहन प्यारे तेरे लिये जोगिन बनबन बन छान फिरी ।
कोमल से तन पर खाक मली ले जोग स्वांग सामान फिरी ॥
तेरे दरसन कारन डगर डगर करती तेरा गुन गान फिरी ।
अब तो सूरत दिखला प्यारे हरिचन्द बहुत हैरान फिरी ॥

चं० ।—(आप ही आप) हाय यह तो सभी बातें पते की कहती है। मेरा कलेजा तो एक साथ ऊपर को खिंचा आता है। हाय ! 'अब तो सूरत दिखला प्यारे'।

जो० ।—तो अब तुम को भी गाना होगा। यहां तो फ़कीर हैं। हम तुम्हारे सामने गावें तुम हमारे सामने न गाओगी (आप ही आप) भला इसी बहाने प्यारी की अमृत बानी तो सुनेंगे। (प्रगट) हां। देखो हमारी यह पहिली भिक्षा ख़ाली न जाय हम तो फ़कीर हैं हमसे कौन लाज है।

चं० ।—भला मैं गाना क्या जानूं। और फिर मेरा जी भी आज अच्छा नहीं है गला बैठा हुआ है। (कुछ ठहर कर) नीची आंख कर के और फिर मुझे संकोच लगता है।

जो० ।—(मुसक्या कर) वाह रे संकोच वाली। भला मुझ से कौन संकोच है। मैं फ़िर रूठ जाऊंगी जो मेरा कहना न करेगी।

चं० ।—(आपही आप) हाय हाय ! इसकी कैसी मीठी बोलन है जो एक साथ जी को छीने लेती है। ज़रा से झूठे क्रोध से जो इस ने भौंहें तनेनी की हैं वह कैसी भली मालूम पड़ती हैं। हाय ! प्राणनाथ कहीं तुम्हीं तो जोगिन नहीं बन आए हो (प्रगट) नहीं नहीं रूठो मत मैं क्यों न गाऊंगी। जो भला बुरा आता है सुना दूंगी, पर फिर भी कहती हूं

आप मेरे गाने से प्रसन्न न होंगी। ऐ मैं हाथ जोड़ती हूं मुझे न गवाओ (हाथ जोड़ती है)।

ल० ।—वाह तुझे नये पाहुने को बात अवश्य माननी होगी। ले मैं तेरे हाथ जोड़ूं हूं, क्यौं न गावैगी। यह तो इसमे बहाना बता जो न जानती हो।

चं० ।—तो तूही क्यौं नहीं गाती। दूसरों पर हुक्म चलाने को तो बड़ी मुस्तैद होती है।

जो० ।—हां हां सखी तुही न पहिले गा। ले मैं सरंगी से सुर की आस देती जाती हूं।

ल० ।—यह देखो। जो बोलै सो घी को जाय। मुझे क्या मैं अभी गाती हूं।

(रागबिहाग गाती है,)

अलख गति जुगल पिया प्यारी की।
को लखि सकै लखत नहिं आवै तेरी गिरिधारी की ।
बलि बलि बिछुरनि मिलनि हंसनि रुठनि नितहीं यारी की ॥
त्रिभुवन की सब रति गति मति छवि या पर बलिहारी की ।

चं० ।—(आप ही आप) हाय ! यहां आज न जाने क्या हो रहा है। मैं कुछ सपना तो नहीं देखती । मुझे तो आज कुछ सामानहीं दूसरे दिखाई पढ़ते हैं। मैंरे तो कुछ समझ ही नहीं पड़ता कि मैं क्या देख सुन रही हूं। क्या मैं ने कुछ नशा तो नहीं पिया है। अरे यह योगिन कहीं जादूगर तो नहीं है। (घवड़ानीसी होकर इधर उधर देखती है)।
(इस की दशा देख कर ललिता सकपकाती और जोगिन हंसती है)

ल० ।—क्यौं ? आप हंसती क्यौं है ?

जो० ।—नहीं यौंहीं मैं इस को गीत और सुनाया चाहती हूं पर जो यह फिर गाने का करार करे।

चं० ।—(घवड़ाकार) हां मैं अवश्य गाऊंगी आप गाइए (फिर ध्यानापन्नित सी हो जाती है)।

जो० ।—(सारंगी बजा कर गाती है) (संकरा)।

तू केहि चितवति चकित मृगीसी।
केहि ढूंढत तेरो कहा खोयो क्यौं अकुलाति लखाति ठगीसी ॥
तन सुधि करु उघरत री आंचर कौन ख्याल तू रहति खगीसी ।
उतर न देत जकीसी बैठी मद पीया कै रैन जगीसी ॥

६

धौंकि चौंकि चितवति चारहु दिस सपने पिय देखति उमगीसी ।
भूलि बैखरी मृग छौनो ज्यों निज दल तजि कहुं दूर भगीसी ॥
करति न लाज हाट घर बर की कुलमरजादा जाति डगीसी ।
हरीचंद ऐसिहि उरझी तौ क्यौं नहिं डोलत संग लगीसी ॥
तू केहि चितवति चकित मृगीसी ।

चं० ।—(उन्माद से) डोलूंगी डोलूंगी संग लगी (स्मरण कर के लज्जा कर आप ही आप) हाय हाय ! मुझे क्या हो गया है । मैं ने सब लज्जा ऐसी धो बहाई कि आये गये भीतर बाहर वाले सब के सामने कुछ बक उठती हूं भला यह एक दिन के लिये आई बिचारी योगिन क्या कहैगी ? तौ भी धीरज ने इस समय बड़ी लाज रक्खी नहीं तो मै—राम—राम—नहीं नहीं मैंने धीरे से कहा था किसी ने सुना न होगा । अहा ! संगीत और साहित्य में भी कैसा गुन होता है कि मनुष्य तन्मय हो जाता है। उस पर भी जले पर नोन । हाय ! नाथ हम अपने उन अनुभव सिद्ध अनुरागों और बढ़े हुये मनोरथों को किस को सुनावैं जो काव्य के एक एक तुक और संगीत की एक एक तान से लाख लाख गुन बढ़ते हैं और तुम्हारे मधुर रूप और चरित्र के ध्यान से अपने आप ऐसे उज्वल सरस और प्रेममय होजाते हैं मानो सब प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। पर हा ! अंत में करुणा रस में उन की समाप्ति होती है क्योंकि शरीर की सुधि आते ही एक साथ बेबसी का समुद्र उमड़ पड़ता है ।

जो० !—वाह अब यह क्या सोच रही हो। गाओ ले अब हम नहीं मानैंगी।

ल० ।—हां सखी अब अपना बचन सच कर।

च० ।—[अर्द्धोन्माद की भांति] हां हां मैं गाती हूं

[कभी आंसू भर कर, कभी कई बेर, कभी ठहर कर, कभी भाव बता कर, कभी बेसुर तालही, कभी ठीक ठीक, कभी टूटी आवाज से पागल की भांति गाती है]

मन की कासों पीर सुनाऊं
बकनो वृथा और पत खोनी सबै चवाई गाऊं ॥
कठिन दरद कोऊ नहिं हरि है धरि है उलटो नाऊं ।
यह तो जो जानै सोइ जानै क्यौं करि प्रगट जनाऊं ॥
रोम रोम प्रति नैन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊं ।

बिना सुजान सिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊं ॥
मरमिन सखिन वियोग दुखिन क्यों कहि निज दसा रोआऊं ।
हरीचंद पिय मिलें तो पग परि गहि पटुका समुझाऊं ॥
(गाते गाते बेसुध हो कर गिरा चाहती है कि एक बिजली सी
चमकती है और योगिन श्रीकृष्ण बनकर उठा कर गले
लगाते हैं और नेपथ्य में बाजे बजते हैं)

ल० ।—(बड़े आनन्द से) सखी बधाई है लाखन बधाई है। ले होश में
आजा। देख तो कौन तुझे गोद में लिये है

चं० ।—(उन्माद को भांति भगवान के गले में लपट कर)

पिय तोहि राखौंगी भुजन में बांधि।
जान न देहौं तोहि पियारे धरौंगो हियेसों नाधि ॥
बाहर गर लगाइ राखौंगी अन्तर करौंगी समाधि ।
हरीचन्द छूटन नहिं पैहौ लाल चतुरई साधि ॥
पिय तोहि कैसे हिय राखौं छिपाय।
सुन्दर रूप लखत सब कोऊ यहै कसक जिय आय ॥
नैनन में पुतरी करि राखौं पलकन ओट दुराय ।
हियरे में मनहूं के अन्तर कैसे लेउं लुकाय ॥
मेरो भाग रूप पिय तुमरो छीनत सौतैं हाय ।
हरीचन्द जीवन धन मेरे छिपत न क्यौं इत धाय ॥
पिय तुम और कहूं जिन जाहु।
लेन देहु किन मों रंकिन कों रूप सुधा रस लाहु ।
जो जो कहौ करौं सोइ सोई धरि जिय अमित उछाहु ।
राखौं हिये लगाइ पियारे किन मन माहिं समाहु ।
अनुदिन सुन्दर बदन सुधानिधि नैन चकोर दिखाहु ।
हरीचन्द पलकन की ओटैं छिनहु न नाथ दुराहु ॥
पिय तोहि कैसे बस करि राखौं।
तुव दृग में तुव हिय में निज हियरो केहि विधि नाखौं ।
कहा करौं का जतन बिचारौं बिनती केहि विधि भाखौं ।
हरीचन्द प्यासी जनमन की अधर सुधा किमि चाखौं ॥

भगवान्।—तौ प्यारी मैं तोहि छोड़ि कै कहां जाउंगो तू तौ मेरी स्वरूप ही है। यह सब प्रेम की सिच्छा करिवे कौं तेरी लीला है।

ल०।—अहा! इस समय जो मुझे आनन्द हुआ है उस का अनुभव और कौन कर सकता है। जो आनन्द चन्द्रावली को हुआ है वही अनुभव मुझे भी होता है। सच है युगल के अनुग्रह बिना इस अकथ आनन्द का अनुभव और किस को है।

चं०।—पर नाथ ऐसे निठुर क्यों हो? अपनों को तुम कैसे दुखी देख सकते हो? हा! लाखों बातें सोची थीं कि जब कभी पाऊंगी तो यह कहूंगी, यह पूछूंगी पर आज सामने कुछ नहीं पूछा जाता!

भ०।—प्यारी मैं निठुर नही हूं। मैं तौ अपुने प्रेमिन को विना मोल को दास हूं। परन्तु मोहि निहचै है वौ हमारे प्रेमिन कौं हमसौं हू हमारो विरह प्यारो है। ताही सौं मैंहूं बचाय जाऊं हूं। या निठुरता मैं जे प्रेमी हैं विनको तो प्रेम और बढ़ै और जे कच्चे हैं विनकी बात खुल जाय। सो प्यारी यह बात हूं दूसरेन की है। तुमारी का तुम और हम तो एक ही हैं। न तुम हम सौं जुदो हौ न प्यारी जू सौं। हमनें तो पहिले ही कही कै यह सब लीला है। (हाथ जोड़ कर) प्यारी छिमा करियौ हम तौ तुम्हारे सबन के जनम जनम के रिनियां हैं। तुमसौं हम कभू उरिन होईवेई के नहीं (आंखों में आंसू भर आते हैं)।

चं०।—(घबड़ा कर दोनों हाथ छुड़ा कर आंसू भर के) बस बस नाथ बहुत भई इतनी न सही जायगी। आप के आंखों में आंसू देख कर मुझ से धीरज न धरा जायगा (गले लगा लेती हैं)

(विशाखा आती है)

वि०।—सखी बधाई है। स्वामिनी ने आज्ञा दई है कै प्यारे सौं कही दै चन्द्रावली की कुंज मैं सुखेन पधारौ।

चं०।—(बड़े आनन्द से घबड़ा कर ललिता विशाखा से) सखियौं मैं तौ तुम्हारे दिये पीतम पाये हैं (हाथ जोड़कर) तुमारो गुन जनम जनम गाऊंगी

वि०।—सखी पीतम तेरो तू पीतम की हम तौ तेरी टहलनी हैं यह सब तौ तुम सबन को लीला है। या मैं कौन बोलै और बोलै हू कहा जो कछू समझै तौ बोलै—या प्रेम की तौ अकथ कहानी है। तेरे प्रेम को

परिलेख तो प्रेम की टकसाल होयगो और उत्तम प्रेमिन को छोड़ि और काहू की समझही में न आवैगो। तू धन्य तेरो प्रेम धन्य या प्रेम के समझिवे वारे धन्य और तेरे प्रेम को चरित्र जो पढ़े सो धन्य। तो मैं और स्वामिनी मैं भेद नहीं है ताहू मैं तू रस को पोषक ठैहरी। बस अब हमारी दोउन की यही विनती है कै तुम दोऊ गलबांहीं दै कै विराजौ और हम युगल जोड़ी को दर्शन करि आज नेत्र सफल करें।

(गलबांही देकर जुगल स्वरूप बैठते हैं)

दोनों।—नीके निरखि निहारि नैन भरि नैनन को फल आजु लहौरी
जुगल रूप छवि अमित माधुरी रूप सुधा रस सिंधु बहौरी
इनहीं सो अभिलाख लाख करि इक इनहीं कों नितहि चहौरी
जो नरतनहि सफल करि चाहो इनहीं के पद कंज गहौरी
करत प्रान संसार जाल तजि वरु बदनामी कोटि सहौरी
इनहीं के रसमत्त मगन नित इनहीं के ह्वै जगत रहौरी
इनके बल जग जाल कोटि अघ छन सम प्रेम प्रभाव दहौरी
इनहीं कों सरवस करि जानो यह मनोरथ जिय उमहौरी
राधा चंद्रावली कृष्ण ब्रज जमुना गिरिवर मुखहिं कहौरी
जनम जनम यह कठिन प्रेम व्रत हरीचंद इक रस निबहौरी

भ०।— प्यारी! और जो इच्छा होय सो कहौ काहे सों कै जो तुम्हें प्यारो है सोई हमैं हूं प्यारो है।

चं०।—नाथ और कोइ इच्छा नहीं हमारी तो सब इच्छा की अवधि आप के दर्शन ही ताईं है तथापि भरत को यह वाक्य सफल होय।

परमारथ स्वारथ दोउ कहं संग मेलि न सानैं।
जे आचारज होइं धरम निज ते पहिचानैं॥
बृन्दाविपिन विहार सदा सुख सों थिर होई।
जन वल्लभी कहाई भक्ति बिनु हो नंह कोई॥
जगजाल छांड़ि अधिकार लहि कृष्ण चरित सबही कहै।
यह रतन दीप हरि प्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै॥

(फूल की वृष्टि होती है, बाजे बजते हैं और जवनिका गिरती है)

॥ इति परमफल चतुर्थ अंक॥

विद्यासुन्दर ।

एक मनोहर संयोगान्त नाटक ।

द्वितीय बार का उपक्रम

विद्या सुन्दर की कथा बंग देश में अति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि चौर कवि जो संस्कृत में चौर पंचाशिका का कवि है यही सुन्दर है। कोई इस चौर पंचाशिका को वररुचि की बनाई मानते हैं। जो कुछ हो विद्यावती की आख्यायिका का मूल सूत्र वही चौर पंचाशिका है। प्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय ने इस उपाख्यान को बंग भाषा में काव्य स्वरूप में निर्माण किया है और उस की कविता ऐसी उत्तम है कि बंग देश में आबाल वृद्ध बनिता सब उस को जानते हैं। महाराज यतीन्द्र मोहन ठाकुर ने उसी काव्य का अवलम्बन कर के जो विद्यासुन्दर नाटक बनाया था उसी की छाया ले कर आज पन्द्रह बरस हुए यह हिन्दी भाषा में निर्मित हुआ है। विशुद्ध हिन्दी भाषा के नाटकों के इतिहास में यह चौथा दूसरा नाटक है। निवाज का शकुन्तला या ब्रजवासीदास का प्रबोध चन्द्रोदय नाटक नहीं काव्य है। इस से हिन्दी भाषा में नाटकों की गणना की जाय तो महाराजरघुराज सिंह का आनन्द रघुनन्दन और मेरे पिता का नहुष नाटक यही दो प्राचीन ग्रन्थ भाषा में वास्तविक नाटकाकार मिलते हैं ये नाम को तो देवमाया प्रपंच, समयसार इत्यादि कई भाषा ग्रन्थों के पीछे नाटक शब्द लगा दिया है। इन के पीछे शकुन्तला का अनुवाद राजा लक्ष्मण सिंह ने किया है। यदि पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थों को ब्रजभाषा मिश्र होने के कारण हिन्दी न मानो तो विद्यासुन्दर नाटक गुणों में अद्वितीय न होने पर भी द्वितीय है। पश्चिमोत्तर देश की मान्य गवर्मेन्ट ने इस की एक सौ पुस्तक ले कर इस का मान बढ़ाया है। पूर्व आवृत्ति का अत्यन्ताभावही इसकी पुनरावृत्ति का कारण है।

यह दूसरी आवृत्ति उसी को समर्पित है जिस से इस ग्रन्थ से त्रिपथगा घनिष्ट सम्बन्ध हैं। प्रथम विद्या मानो उसकी द्वितीया संतति सम्पत्ति है, द्वितीय एक देशी कथा भाग और तृतीय हमारा सम्बन्ध।

काशी। चैत्र। १९३९]　　　　　　　　　　[हरिश्चन्द्र।

प्रथम अंक।

स्थान—राजभवन।

राजा और मंत्री का प्रवेश।

राजा।—(चिंता सहित) यह तो बड़ा आश्चर्य है कि इतने राजपुत्र आए पर उन में मनुष्य एक भी नहीं आया, इन सभों का केवल राजवंश में जन्म तो है पर वास्तव में पशु हैं, जो मैं ऐसा जानता तो अपनी कन्या को ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा न करने देता, पर अब तो उसे मिटा भी नहीं सकता, अब निश्चय हुआ कि हमारी विद्या की विद्या केवल दोष कारिणी हो गई हा—क्यों मंत्री तुम कोई उपाय सोच सकते हो?

मंत्री।—महाराज आप जो आज्ञा करते हैं सो सच है लक्ष्मी और सरस्वती दोनों एक स्थान पर नहीं रहतीं इस से ऐसा भाग्य शील वर मिलना अत्यन्त कठिन है—इन दिनों मैंने सुना है कि कांचीपुरी के राजा गुणसिन्धु का पुत्र सुन्दर, युवराज अत्यन्त सुन्दर, अनेक शास्त्रों में शिक्षित और बड़ा कवि है और उस ने अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में जीता है।

राजा।—क्या गुणसिन्धु राजा को ऐसा गुणवान पुत्र हो और उस का समाचार हम अब तक न जानें?

मंत्री।—महाराज मैंने निश्चय सुना है कि वह अपूर्व सुन्दर और अद्वितीय पंडित है इस में मैं अनुमान करता हूं कि जिस ने संसार की सब विद्या पाई है वही हमारी राजकुमारी विद्या को भी पावेगा, यद्यपि ईश्वर की इच्छा और होनहार अत्यन्त प्रबल है तथापि हम को निश्चिन्त हो के बैठ रहना उचित नहीं है, इस कहने का अभिप्राय यह है कि आप कांचीपुर में किसी को समाचार लेने के हेतु भेजिये।

राजा।—ठीक है, तो अब विलंब क्यों करते हो शीघ्र ही वहां किसी को भेजना चाहिये (द्वार की ओर देख कर) कोई है गंगा भाट को अभी बुला लाओ।

(प्रतिहारी आ कर)

प्रतिहारी।—जो आज्ञा महाराज (जाता है.)

राजा।—(खेद पूर्वक) विद्यावती का यह केवल अदृष्ट है कि अब तक कहीं विवाह नहीं ठहरता, देखें क्या होता है।

मंत्री।—महाराज, आज तक कोई कन्या क्वारी नहीं रही। सीता और द्रौपदी इत्यादि जिन के बड़े कठिन प्रण थे उन का तो विवाह होई गया। जब ईश्वर कन्या उत्पन्न करता है तो उस का वर भी उसी के साथ उत्पन्न कर देता है अतएव आप को सोच करना न चाहिये।

(प्रतिहारी के सहित गंगा भाट का प्रवेश)

गंगा भाट।—

बीरसिंह महाराज की , दिन दिन हीं जय होय ।
तेज बुद्धि बल नित बढ़े , शत्रु रहें नहिं कोय ॥

राज।—कविराज! अब तक तुम ने अनेक देश में भ्रमण किया और अनेक राजपुत्रों को यहां ले आए परन्तु उन में सुपात्र एक भी न आए, अब हम सुनते हैं कि कांचीपुर के राजा गुणसिन्धु के पुत्र सुन्दर ने अनेक विद्या उपार्जन की है इस से हम सोचते हैं कि वही हमारी विद्या के योग्य भी होगा, इस से तुम वहां शीघ्र गमन करो और राजपुत्र को अपने संगही लेते आओ तो अति उत्तम हो जिस में विलम्ब न हो क्योंकि राजकन्या विवाह योग्य हो चुकी है।

भाट।—महाराज यह कौन बात है, मैं अभी जाता हूं।

(जाता है)

राजा।—[मंत्री से] गुणसिन्धु राजा को एक पत्र भी देना उचित है तुम यह सब वृत्तान्त इस रीति से लिख दो कि जिस में हमारा सब कार्य सिद्ध होजाय और गंगा भाट के यात्रा की सब वस्तु शीघ्रही सिद्ध कर दो जिस में उसे विलम्ब न हो—अब वेला ढल चली हम भी रनवासे को जाते हैं।

मंत्री।—जो आज्ञा।

॥ जवनिका गिरती है ॥

दूसरा गर्भाङ्कः।

स्थान एक उद्यान।

सुन्दर आता है।

सुन्दर।—[स्वगत] वर्धमान की शोभा का वर्णन मैंने जैसा सुना था उस से कहीं बढ़ कर पाया। आहा कैसे सुन्दर २ घर बने हैं, कैसी चौड़ी

चौड़ी सुन्दर स्वच्छ सड़क है, वाणिज्य की कैसी वृद्धि हो रही है, दुकानें अनेक स्थान की अनेक प्रकार की सब वस्तुओं से पूर्ण हो रही हैं, सब लोग अपने २ काम में लगे हैं और बहुतेरे लोग नदी के प्रवाह की भांति इधर उधर दौड़ रहे हैं, स्थान स्थान पर पहरेदार लोग सावधानी से पहरा दे रहे हैं, प्रजा लोग सुख से अपना कालक्षेप करते हैं, निश्चय यहां का राजा बड़ा भाग्यमान है—यद्यपि हमारे पिता की राजधानी भी अत्यन्त अपूर्व है परन्तु इस स्थान सा तो मुझे पृथ्वी में कोई स्थान ही नहीं दिखाई देता। इस का वर्द्धमान नाम बहुत ठीक है क्योंकि इस में रूप और धन दोनों की वृद्धि है (हंसकर) परन्तु हमारा अभिलाष भी वर्द्धमान हो तो हम जानैं (चारो ओर देखकर) वाह यह उद्यान भी कैसा मनोहर है, इस के सब वृक्ष कैसे फले फूले हैं और यह सरोवर कैसे निर्मल जल से भरा हुआ है मानो सब वृक्षों ने अपने अनेक रंग के फूलों की शोभा देखने को इस उद्यान के बीच में एक सुन्दर आरसी लगा दी है। पक्षी भी कैसे सुन्दर स्वर से बोल रहे हैं मानो पुकारते हैं कि इस से सुन्दर संसार में और कोई उद्यान नहीं है। आहा कैसा मनोहर स्थान है? हम इस बकुल के कुंज में थोड़ा विश्राम करेंगे (बैठता है) अहा हमारी प्राणप्यारी त्रिभुवन मोहनी विद्या का अंग स्पर्श कर के आता है नहीं तो ऐसी मधुर सुगन्ध इस में न होती (कुछ सोच कर के) यह तो सब ठीक है—परन्तु जिस काम के हेतु मैं यहां आया हूं उस का तो कुछ सोच ही नहीं किया? यहां मैं किसी को जानता भी नहीं कि उस से कुछ उपाय पूछूं क्योंकि मैं तो यहां छिप के आया हूं (चिन्तानाट्य करता है)

(एक चौकीदार आता है)

चौकीदार।—(स्वगत) ई के हो भाई? कोई परदेसी जान पड़ाला, हमहन के कुछ घूस फूस देई की नाहीं भला देखी तो सही (प्रकाश) कौन है?

सुन्दर।—हम एक परदेसी हैं।

चौ०।—सो क्या हमें नहीं सूझता, पर कहां रहते हो।

सुं०।—हमारा घर दक्षिण है।

चौ०।—दक्षिण तो जमराज के घर तक सभी है तुम किस दक्षिण में रहते हो।

सु० ।—सों नहीं, हमारा घर इतनी दूर नहीं है।
चौ० ।—तो फिर कहते क्यों नहीं कि तुमारा घर कहां है।
सुं० ।—कांचीपुर ।
चौ० ।—काशी कांची जो सुनते हैं सोई काञ्ची ?
सुं० ।—काशी दूसरा नगर है कांची दूसरा, काशी कांची एकही कैसी ?।
चौ० ।—तो फिर यहां क्यों आए हो।
सुं० ।—यहां विद्या प्राप्ति के अर्थ आए हैं।
चौ० ।—कौन विद्या ?
सुं० ।—जो विद्या सब में प्रधान है।
चौ० ।—सब में प्रधान विद्या ? सब में प्रधान विद्या तो चोरी है।
सुं० ।—(मुसक्याकर) तुम्हारे यहां यही विद्या प्रधान होगी।
चौ० ।—(सोंटा उठा कर पैतरे से चलता हुआ) हांरे यही तो हमारा काम है कि जो इस विद्या के पंडित हों उन्हे हम वैसा पुरस्कार दें।
सुं० ।—क्या पुरस्कार देता है ?।
चौ० ।—इस विद्या के पुरस्कार के हेतु एक यंत्र बना है जिस का नास, काठ तुडुम, हर, और चोर शत्रु, है।
सुं० ।—कैसा है ?।
चौ० ।—दो बड़े२ काठ एकत्र कर के चोर भाई का पांव उस के भीतर डाल, देते हैं (सुन्दर का दहिना पैर बल से खींच कर अपने दोनों जांघ में रख कर दबाता है) अब जब तक हमारी पूजा न दोगे तब तक न छूटोगे।
सुं० ।—(चौकीदार को बल पूर्वक लात मारता है और चौकीदार पृथ्वी पर गिरता है) लो तुमारी यही पूजा है।
चौ० ।—(उठ कर के) हांहां बचा अभी तुम को दूसरा पुरस्कार नहीं दिया चार पांच कोड़े तुम्हारी पीठ पर लगें तब जानो।
सुं० ।—बस अब बहुत भई, मुंह सम्हाल के बोलो, नहीं तो एक मूका ऐसा मारूंगा कि पृथ्वी पर लोनेने लगोगे और दक्षिण दिशा में यमराज के घर की ओर गमन करोगे। जिस के हेतु तुम इतना उपद्रव करते हो सो मै जानता हूं परन्तु धमकी दिखाने से तो में एक कौड़ी भी न दूंगा और तुम को भी परदेशियों से झगड़ा करना उचित नहीं है (कुछ देता है) इसे लो और अपने घर चल दो।

चौ० ।—(आनन्द से लेकर) नहीं २ हम ने आप को जाना नहीं, निसंदेह आप बड़े योग्य पुरुष हैं, हम आशीर्वाद देते हैं कि आप अनेक विद्या लाभ करें राजकुमारी विद्या भी आप को मिलै (हंसता हुआ जाता है)

सुं० ।—आज बहुत बचे, नहीं तो यह दुष्ट बहुत कुछ दुःख देता, जिस काम को चलो उस में पहिले अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं, देखें अब क्या होता है (पेड़ के नीचे बैठ जाता है)

(हीरा मालिन आती है)

ही०मा० ।—(आश्चर्य से) अरे यह कौन है हाय २, ऐसा सुन्दर रूप तो न कभी आखों देखा न कानों सुना, इस की दोनों हाथ से बलैया लेने को जी चाहता है, लोग सच कहते हैं कि चन्द्रमा को सिंगार न चाहिये, हम को तो जान पड़ता है कि चन्द्रमा ही पृथ्वी पर उतर के बैठा है क्या कामदेव इस रूप की बराबरी कर सक्ता है ? ऐसी कौन स्त्री है जो इस को देख के धीरज धरैगी,—हम सोचते हैं कि यह कोई परदेशी है क्योंकि इस नगर में ऐसा कोई नहीं है जिस को हीरा मालिन न जानती हो हाय २ इस के मा बाप का कलेजा पत्थर का है कि ऐसे सुकुवार सुन्दर पुरुष को घर से निकलने दिया, निश्चय इस को स्त्री नहीं है, नहीं तो ऐसे पति को कभी न छोड़ती, जो कुछ हो एक बेर इस से पूछना तो अवश्य चाहिये (पास जाकर, हंसती हुई) क्यों जी तुम कौन हो ? हम को तो कोई परदेसी जान पड़ते हो ।

सु० ।—(स्वगत) अब यह कौन आई (प्रकाश) हमारा घर दक्षिण है और विद्या को खोजते २ यहां तक आये हैं ।

ही०मा० ।—उतरे कहां हो ?

सु० ।—अभी कहां उतरे हैं, क्योंकि हम इस नगर में किसी को नहीं जानते इसी हेतु अब तक उतरने का निश्चय नहीं किया और इसी वृक्ष की ठंढी छाया में विश्राम करते हैं और सोचते हैं कि अब कौन उपाय करें— तुम कौन हो ?

ही०मा० ।—हम राजा के यहां की मालिन हैं, हमारा नाम हीरा है, हमारा घर यहां से बहुत पास है—भैया हमारा दुःख कुछ मत पूछो (पास बैठ जाती है) हमारे दोनो कुल में कोई नहीं है, यमराज सब को तो लेगये पर न जानैं हम को क्यों भूलगये (लम्बी सांस लेती है) पर

रानी और राजकुमारी हम पर बड़ी दया रखती हैं और उन्हीं के पास जाकर हम अपना जी बहलाती हैं, अभी तो आपने अपने रहने का निश्चय कहीं नहीं किया है (रुककर) हमें कहने में लाज लगती है क्योंकि हमारे यहां बड़ी २ अटारी तो हैं नहीं केवल एक झोपड़ी है जो आप दुःखिनी जान कर हम से बचना न चाहियें तो चलिये हम सेवा में सब भांति लगी रहेंगी।

सुं०।—(स्वगत) तो इस में हमारी क्या हानि? जो रहने का ठिकाना होगा तो काम का भी ठिकाना हो रहैगा, क्योंकि यह रात दिन रनिवास में आती जाती है इन से वहां के सब समाचार मिलते रहैंगे और ऐसे कामों में जहां अच्छा बिचवई मिला तहां उस के सिद्ध होने में विलम्ब नहीं होता (प्रकाश) अब इस से बढ़कर हमारा क्या उपकार होगा कि इस परदेश में हम को आप से आप रहने को घर मिले, तुमने हम पर बड़ी कृपा किया आज से तुम हमारी मौसी और हम तुम्हारे भांजे हुए।

ही०मा०।—यह हमारे भाग्य की बात है कि आप ऐसा कहते हो और यों तो आप हमारे बाप के भी अन्नदाता हो। दया करके जो चाहो सो पुकारो, तो हम आज से तुम को बेटा कहेंगी—हाय २ इस का मुंह कैसा सूख गया है, तो अब बेटा अपने घर चलो, हमारा जो कुछ है सो सब तुम्हारा है।

सुं०।—हां चलो।

जवनिका गिरती है।

तृतीय गर्भांक।

स्थान हीरा मालिन का घर।

सुन्दर और हीरा मालिन आती हैं।

सुं०।—रनिवास का समाचार मैंने सब सुना, तो मौसी राजा को क्या केवल एकही कन्या है?

ही०मा०।—हां बेटा, केवल एकही कन्या है, पर वह कुछ सामान्य कन्या नहीं है, मानो कोई देवता की कन्या आप से पृथ्वी पर जनमी है, और राजा रानी उसको वैसाही प्यारभी करती हैं। घर में सबसे विशेष उन

को बड़ी प्यारी है यहाँ तक कि उस को प्राण से भी अधिक समझते हैं।

सं०।—भला मौसी वह राज कन्या कैसी है?

हो०मा०।—बेटा उस की कथा कोई एक मुंह से नहीं कह सक्ता (गाती है)

(राग सोरठ तिताला)

कहो वह कैसे बरनै रूप। नख सिख लौं सबही विधि सुन्दर सोभा अतिहि अनूप॥ नैन धरे को कौन सफल जो नैन न देख्यौ वाहि॥ कोटि चन्द हू लाज करत हैं तनिक विलोकत जाहि॥ २॥ घुंघुरारे सटकारे कारे बिथुरे सुथरे केस॥ एड़ी लौं लांबे अति सोभित नव जलधर के भेस॥ ३॥ लचकोली कटि अतिहि पातरी चालत झोंका खाय। अति सुकुमार सकल अंग वाकी कवि सों नहिं कहि जाय॥ ४॥ दिन दिन जोवन बढ़त उमग अति पूरि रहे सब गात। लाज भरी चितवन चितचोरत जब मुसुकाइ जंभात॥५॥ तरुनाई अंगराई अंग अंग नैन रहत ललचाय। मनु जग जुवजन जीतन एकहि विधिना रची बनाय॥६॥

बेटा हम उस का क्या वर्णन करैं क्योंकि वह शोभा देखते ही बन आती है कुछ कही नहीं जाती, उस की प्रतिज्ञा तो तुमने सुनीही होगी—? अब अधिक क्या कहैं।

सु०।—हां मौसी यह सब बात तो हम जानते हैं; पर हम चाहते हैं कि एक बेरा राजसभा में जाकर विद्या से विद्या की परीक्षा करैं जो जीत गये तो सब काम सिद्ध भया और जो हार गये तो कुछ लाज नहीं क्योंकि हमैं इस नगर में कोई पहिंचानता नहीं—भला एक दिन मौसी हमारे हाथ की गुथी माला तू वहां ले जा सकती है?

ही०मा०।—(हंसकर) वाह बेटा तुम क्या माला बनाने भी जानते हो? तुम लोगों का तो यह काम नहीं है, क्या माला गूथ कर राजकन्या के गले के हार हुआ चाहते हो।

सु०।—नहीं मौसी हम केवल एक प्रकार की माला गूथने जानते हैं जिसे तुम देखलेना जो अच्छी बनै तो राजकन्या के पास लेजाना।

ही०मा०।—(हंसकर) अच्छा, कल तुम माला गूथना, देखैं कैसी बनती है। अब रात बहुत गई, उठो और कुछ भोजन करके सो रहो।

जवनिका गिरती है ।

चतुर्थ गर्भांक ।

स्थान, विद्या का मंदिर ।

विद्या बैठी हुई है ।

डाली हाथ में लिये हीरा मालिन आती है ।

ही०मा० ।—(हंसकर) राजकुमारी कहां है ? (सामने देख कर) अहा यहां बैठी है, आज मुझ को इस माला गूथने में बड़ी देर लगी, इस से मैं दौड़ी आती हूं, यह माला लीजिये और आज का अपराध क्षमा कीजिये ।

वि० ।—चल बहुत बातें न बना, जो रात भर चैन करैगी तो सवेरे जल्दी कैसे आ सकेगी, तेरा शरीर बूढ़ा होगया है पर चित्त अभी बारही बरस का है । इतना दिन आया अब तक मैंने पूजा नहीं की, पर तुझे क्या तू तो अपने रंग में रंग रही है, मेरी पूजा हो या न हो ।

ही०मा० ।—वाह२ बाल पके दांत टूटे पर अभी हम बारही बरस थी की बनी हैं—आप धन्य है, हम ने तो आज बड़े परिश्रम से माला गूथी कि राजकुमारी उस को देख कर अत्यन्त प्रसन्न होगी, उस के बदले आप ने हम को गाली दी, सच है अभागी को कहीं भी सुख नहीं है, अब हम ने अपना कान पकड़ा । अब की बार क्षमा कीजिये, ऐसा अपराध फिर कभी न होगा—यह माला लीजिये ।

वि० ।—(माला हाथ में लेती है) तभी ? आज तो माला बड़ी सुन्दर है (पत्ते की पुड़िया में फूल का धनुषबान देख कर (क्यों रे इस में यह फूल के धनुषबान कहां से आये, क्या तू हम से ठठोली करती है—सच बतला यह माला किस ने बनाई है ?

ही०मा० ।—मेरे बिना कौन बनावैगा

वि० ।—नहीं २ तू तो नित्यही बनाती थी पर ऐसी माला तो किसी दिन नहीं बनी, आज निश्चय किसी दूसरे ने बनाई है ।

ही०मा० ।—मैं तो एक बेर कह चुकी कि हमारे घर में दस बीस देवर जेठ तो बैठे नहीं हैं कि बना देंगे (आकाश देख कर) अब सांझ होती है हम को आज्ञा दो ।

वि०।—वाह २ आज तो आप मारे अभिमान के फूली जाती हैं, ऐसा घर पर कौन बैठा है जिस के हेतु इतनी घबड़ाती है, बैठ—तुझे मेरी सौगन्द है, बता यह माला किसने बनाई है ? (मालिन का अंचरा पकड़ के खींचती है)।

ही॰मा०।—नहीं भाई नहीं मैं कुछ न कहूंगी जड़ काट के पल्लव सींचने से क्या होगा, बैठे बैठाये दुःख कौन मोल ले क्योंकि प्रीत करनी तो सहज है पर निबाहना कठिन है, इस हेतु इस से दूरही रहना उचित है।

वि०।—वाह २ तू बड़ा हठ करती है एक छोटी सी बात मैंने पूछी सो नहीं बताती, क्या मुझ से भी छिपाने की कोई बात है जो नहीं बतलाती।

ही॰मा॰।—मैं तो तुम्हारे लिये प्राण देती हूं और भगवान से नित्त मनाती हूं कि हमारी राजकुमारी को सुन्दर वर मिले, जिसे देख देख के मैं अपनी आंख ठंढी करूं और आप उस के बदले मुझ पर क्रोध करती हो। इसी के जतन में तो मैं रात दिन लगी रहती हूं।

वि०।—तो खुलकर क्यों नहीं कहती ? आधी बात कहती हैं आधी नहीं कहती, व्यर्थ देर करती है।

ही॰मा॰।—सुनिये दक्षिण देश के कांचीपुर के गुणसिन्धु राजा का नाम आपने सुनाही होगा, उस का पुत्र सुंदर जिसे ले आने के हेतु राजा ने गंगाभाट को भेजा था यहां आप से आप आया है।

वि॰।—(घबड़ा कर) कहां कहां (फिर कुछ लज्जित) होकर नहीं क्या सचमुच यहां आया है ?

ही॰मा०।—(हंस कर) मैं उस को बड़े यत्न से लाई हूं क्योंकि मैं सर्वदा खोजा करती थी कि मेरी बेटी को दूलहा चांद का टुकड़ा मिले तो मैं सुखी हूं सो मैं ने कहीं से खोज कर उसे अपने घर में रक्खा है पर यहां तो वही दशा है " जाके हित चोरी करो सोई बनावे चोर "

वि॰।—तो फिर वे छिप के क्यों आए हैं।

ही०मा॰। आप की प्रतिज्ञा तो संसार में सब पर विदितही है सो प्रत्यक्ष बाद करने में जो कोई हारे तो प्रेम भंग होय और परस्पर संकोच लगे इस हेतु छिप के आये हैं।

वि॰।—उन का रूप कैसा है।

हो०मा० ।—उन का रूप वर्णन के बाहर है ।

(गाती है) राग—बिहाग)

कहै को चन्द्र बदन की शोभा । जाकों देखत नगर नारि कों सहजहिं में मन लोभा ॥ मनु चन्दा आकास छोड़ि कै भूमि लखन कों आयो । कैधौं काम बाम के कारन अपुनो रूप छिपायो ॥ भौंह कमान कटाच्छ बान से अलक भ्रमर घुंघुरारे । देखते ही बेधत हैं मन मृग नहिं बचि सकत बिचारे ॥

वि० ।—तो भला उन को एक बेर किसी उपाय से देख भी सकते हैं ?

हो०मा० ।—वाह वाह यह तुम ने अच्छी कही । पहिले राजा रानी से कहैं वह देख सुन के जांच लें पीछे तुम देखना ।

वि० ।—नहीं ऐसा न होने पावे, पहिले मैं देख लूं तब और कोई देखे ।

हो०मा० ।—मैं कैसे पहिले तुम्हें दिखला दूं यह राजा का घर है चारोओर चौकी पहरा रहता है यहां मक्खी तो आही नहीं सकती भला वह कैसे आ सकते हैं जो कोई जान जायगा तो क्या होगा ।

वि० ।—सो मैं कुछ नहीं जानती जैसे चाहो वैसे एक बेर मुझ को उन का दर्शन करा दो । तू आप चतुर है कोई न कोई उपाय सोच लेना और जो तू मेरा मनोर्थ पूरा करैगी तो मैं भी तेरा मनोर्थ पूरा कर दूंगी ।

हो०मा० ।—यह तो मैं भी समझती हूं पर मैं सोचती हूं कि किस रीति से उसे लेआऊं, हां एक उपाय यह तो है कि वह इस वृक्ष के नीचे ठहरैं और तुम अपनी अटारी पर से देख लो ।

वि० ।—हां ठीक हैं यह उपाय बहुत अच्छा है । पर कब आज या कल ? ।

हो०मा० ।—कल उन को लाऊंगी (हंस कर)—एक बात मैं कहे देती हूं कि उन को एक बेर देख के फिर भूल न जाना ।

वि० ।—भूल जाऊंगी—हाय ? ।

(गाती है) (ठुमरी)

मेरे तन अति बाढ़ी बिरहपीर अब नहिं सहि जाई हो । अब कोऊ उपाय मोहिं नहिं लखाय दुख कासों कहों कछु कहि न जाय मनहीं मैं बिरह की अगिनि बरै धूआं न दिखाई हो ॥ दईमारी लाज बैरिन से आज कहो आवत मेरे कौन काज पिय बिन मेरा जियरा तड़पै कछु नाहि बसाई हो ॥

(राग बिहाग)

चढ़ावत गो पैं काम कमान ।
बेधत है जिय मारि मारि कै तानि श्रवन लगि बान ।
पिया बिना निसिदिन डरपावत मोहि अकेली जान ।
तुमरे बिनु को धीर धरावै पीतम चतुर सुजान ॥ १ ॥

ही०मा० ।—(हंस कर) वाह वाह यह अनुराग हम नहीं जानती थीं ।

(गाती है) (राग—कलिंगड़ा)

अहो तुम सोच करो मति प्यारी ।
तुम्हरो प्रीतम तुमहिं मिलै हैं करि अनेक उपचारी ॥
अति कुम्हलाने कमल बदन कों प्रफुलित करि हौं वारी ।
चन्दहिं जो चाहै तो लाऊं यह तो बात कहारी ॥

वि० ।—तो मैं छत पर उस की आसा देखूंगी ।

॥ जवनिका गिरती है ॥

॥ प्रथम अंक समाप्त हुआ ॥

॥ दूसरा अंक ॥

प्रथम गर्भाङ्क

स्थान विद्या का महल

(विद्या बैठी है और चपला पंखा हांकती है और सुलोचना पान का डब्बा लिये खड़ी है)

सुलोचना ।—(बीड़ा देकर) राजकुमारी एक बात पूछूं पर जो बताओ ।

वि० ।—क्यों सखी क्यों नहीं पूछती, मेरी ऐसी कौन सी बात है जो तुम लोगों से छिपी है ।

सुलोचना ।—और कुछ नहीं मुझे केवल इतना पूछना है कि कई दिन से तुमारी ऐसी दशा क्यों होरही है, सर्वदा अनमनी सी बनी रहती हो, और खान पान सब छूट गया है, और दिन २ शरीर गिरा पड़ता है, रात दिन मुंह सूखा रहता है, इस का कारण क्या है ?

वि० ।—(मुंह नीचा कर लाज से चुप रह जाती है)

सुलोचना ।—(बीड़ा देकर) यह तो मैं पहिलेही जानती थी कि तुम न कहोगी ।

वि० ।—नहीं सखी मैं क्यों न कहूंगी पर तू क्या उस का कारण अब तक नहीं जानती ?

सुलो० ।—जो जानती तो क्यों पूछती ।

वि० ।—हीरा मालिन जो उस दिन माला लाई थी वह क्या तूने नहीं देखीथी ?

सुलो० ।—हां देखी तो थी, तो उस से क्या ।

वि० ।—और उस दिन छत पर से मैं जिसे वृक्ष तले देखने गई थी उसे तू ने नहीं देखा था ।

सुलो० ।—हां सो सब जानती हूं ।

वि० ।— तो अब नहीं क्या जानती ?

सुलो० ।—तो फ़िर उस में इतना सोच विचार क्यों चाहिये केवल एक बेर बड़ी रानी जी से कहने से सब काम सिद्ध हो जायगा ।

चपला ।—वाह २ क्या इसी बात का इतना सोच विचार था, तो मैं अभी जाती हूं (जाना चाहती है)

वि० ।—नहीं २ ऐसा काम कभी न करना, नहीं तो सब बात बिगड़ जायगी ।

चप० ।—क्यों इस में दोष क्या है ।

सुलो० ।—और फिर यह न होगा तो होगा क्या ?

वि० ।—सखी मेरी प्रतिज्ञा ने सब बात बिगाड़ रक्खी है ?

चप० ।—क्यों ?

वि० ।—मा से कह देने से फिर उन के संग विचार करना पड़ेगा, और उस में जो मैं जीती तौभी अनुचित है क्योंकि मैं अपना प्राण धन सब उन से हार चुकी हूं और फिर उन से विवाह भी कैसे होगा, और वह जीते तो इस बात का लोगों को निश्चय कैसे होगा कि गुणसिन्धु राजा के पुत्र यही हैं और निश्चय बिना तो विवाह भी नहीं हो सक्ता, इस से मेरा जी दुबधे में पड़ा है—और जिस दिन से मैंने उन्हे देखा है उस दिन से अपने आपे में नहीं हूं क्योंकि उस मनमोहन रूप को देखकर मैं कुल और लाज दोनों छोड़ चुकी हूं और उस विषय में जो २ उमंग उठते हैं वह कहने के बाहर हैं और सखियो तुम लोग भी तो स्त्री हो, अपने ऐसा जी सब का समझो । हाय, मुझे कोई उपाय नहीं दिखाता ।

(गाती है) (राग सोरठा)

सखी हम कहा करैं कित जायं । बिनु देखे वह मोहिनि मूरति नैना नाहिं

अर्थांयं ॥ १ ॥ कछु न सुहात धाम धन गेह सुख मात पिता परिवार। बसति एक हिय में उन की छवि नैनन वही निहार ॥ २ ॥ बैठत उठत सयन सोवत निसि चलत फिरत सब ठौर। नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और ॥ ३ ॥ हमरे तो तन मन धन प्यारे मन वच क्रम चित मांहिं। पै उन के मन की गति सजनी जानि परत कछु नांहिं ॥ ४ ॥ सुमिरन वही ध्यान उन को ही मुख में उन को नाम। दूजी और नाहिं गति मेरी बिनु पिय और न काम ॥ ५ ॥ नैना दरसन बिनु नित तलफैं श्रवन सुनन कों प्रान। बात करन कों मुख तलफैं गर मिलिबें को ये प्रान ॥ ६ ॥

सुलो०।—हां इन बातों को तो मैं समझती हूं पर कर क्या सक्ती हूं क्योंकि कोई उपाय नहीं दिखाता हम तो तेरे दुःख से दुखी और तेरे सुख से सुखी हैं जो किसी उपाय से यह सुख होय तो हम सब अपने शरीर बेंचकर भी उसे कर सक्ती हैं, परंतु यह ऐसी कठिन बात है कि इस का उपायही नहीं।

चप०।—इस में क्या संदेह, आज दिन राजा के प्रताप से सब देश थर २ कांपता है और द्वारों पर चौकीदार यमदूत की भांति खड़े रहते हैं, तब तब फिर ऐसी भयानक बात कैसे हो सक्ती है।

वि०।—(लम्बी सांस लेकर) हाय सखी अब मैं क्या करूंगी जो शीघ्रही कोई उपाय न होगा तो प्राण कैसे बचैंगे यह प्रीत दइमारी बड़ी दुखद होती है।

(गाती है) (राग विहाग)

बावरी प्रीति करौ मति कोय। प्रीति किये कौने सुख पायो मोहि सुनाओ सोय ॥ १ ॥ प्रीति कियो गोपिन माधव सों लोक लाज भय खोय। उन कों छोड़ि गये मथुरा को बैठि रहीं सब रोय ॥ २ ॥ प्रीति पतंग करत दीपक सों सुन्दरताकहं जोय। सो उलटो तेहि दाह करत है पच्छ नसावत दोय ॥ ३ ॥ जानि बूझि के प्रीति करी हम कुल मरजादा धोय। अब तो प्रीतम रंगी रंग मैं होनी होय सो होय ॥ ४ ॥

हीरा मालिन ने हम को बचन तो दिया है कि किसी भांति उसे एक वेर तुझ से मिला दूंगी, पर देखूं अब वह क्या उपाय करती है।

(एक सुरंग का मुंह खुलता है और उस में से सुन्दर निकलता है)

(सब सखी घबड़ा कर एक दूसरी का मुंह देखती हैं और विद्या लाज से मुंह नीचे कर लेती है)

चप० ।—अरे यह कौन है और कहां चला आता है !

सुलो० ।—सोई तो मैं घबड़ाती हूं कि यह कौन है और कहां से आया है, अब मैं चोर २ कह कर पुकारती हूं जिस में सब चौकादार लोग दौड़ कर हम लोगों को बचावैं।

वि० ।—(हाथ से पुकारने का निषेध करके धीरे से) नहीं २ मैं समझती हूं कि यह चोर नहीं है मेरा चितचोर है कोई जाकर उस से पूछो।

चप० ।—भला देखो मेरी छाती कैसी धड़कती है इस से मैं तो नहीं पूछने की (सुलोचना से) सुलोचना तू जा कर पूछ था यह कौन है।

सुलो० ।—(सुंदर से) तुम कौन हो और बिराने घर में क्यों घुस आये हो सच बतलाओ क्योंकि हम लोगों का डर से कलेजा कांपता है इस से कहो कि तुम देवता हो, या दानव हो, या मनुष्य हो।

सु० ।—(मुसका कर) नहीं सखो डरने का क्या काम है? न मैं देवता हूं, न दानव, मैं तो साधरण मनुष्य हूं, और कांचीपुर के महाराज गुणसिन्धु का पुत्र हूं और मेरा नाम सुन्दर है, भाट के मुख से तुम्हारी राजकन्या के बिचार का समाचार सुन के यहां आया हूं परन्तु विचार तो दूर रहै तुम्हारी सभा में अविचार बहुत है।

चप० ।—(धीरे से) सखी यह तो वही है।

सुलो० ।—क्यों हमारी सभा में अविचार कौन सा है?

सु० ।—और अविचार किस को कहते हैं? जो कोई परदेशी अतिथि आवे तो न तो उस का आदर होता है और न कोई उसे बैठने को कहता है।
(विद्या संकेत से चपला से बैठाने को कहती है और सुन्दर बैठता है)
(और विद्या लज्जा से वस्त्र से अपना सब शरीर ढांक लेती है)

सु० ।—(सुलोचना से) सखो विद्यावती के गुण की मैंने जैसी प्रशंसा सुनी थी उस से भी अधिक आश्चर्य गुण देखने में आये।

सुलो० ।—ऐसे आप ने कौन आश्चर्य गुण देखे?

सु० ।—जाल में चन्द्रमा को फसाना, बिजली को मेघ में छिपाना, और वस्त्र से कमल को सुगंधि को मिटाना, यह सब बात तुम्हारी राजकन्या कर सकती है।

सुलो० ।—(हंसकर) यह आप कैसी बातें कहते हैं, क्या ये बातें हो सकती हैं।

सु० ।—जो नहीं हो सकती तो तुम्हारी राजकन्या ने अंचल से मुख क्यों छिपा लिया?

सुलो० ।—(हंस कर) आप बड़े सुरसिक और पंडित हैं इस से मैं आप की बात का उत्तर नहीं दे सकती " दीपक की रवि के उदय बात न पूंछे, कोय " पर हां जो लज्जा न करती तो हमारी सखी कुछ उत्तर देती।

सुं० ।—(हंस कर) तो आज तुम्हारी राजकन्या हम से हार गई।

सुलो० ।—क्यों हार क्यों गई ?

सुं० ।—और हारने के माथे क्या सींग होती है मुझे देख कर लाज के मारे वह कुछ उत्तर नहीं दे सकती इसी से हार गई।

सुलो० ।—(हंस कर) आप को सब कहना शोभा देता है।

वि० ।—(सखी से) सुलोचने, तुझे कुछ उत्तर देने नहीं आता तू क्यों नहीं कहती कि हमारी विद्यावती ने विद्या के विचार का प्रण किया था कुछ चोरी विद्या के विचार का प्रण नहीं किया था, आप सेन दे कर घुस आये और अब बातें बनाते हैं।

सुं० ।—(हंस के) हां इस देश के विचार की चाल ही यही है और उलटे हमी चोर बनाये जाते हैं मैंने क्या अपराध किया था कि उस दिन वृक्ष के नीचे घंटों खड़ा किया गया और तुम्हारी राजकुमारी ने हमारा तन मन धन सब लूट लिया अब कहो पहिले चोरी का आरंभ किस ने किया, वही बात भई कि उलटा चोर कोतवाल को डाड़ैं।

वि० ।—और सुनो! यह चोर नहीं हैं बड़े साधू हैं। सच है साधू न होते तो सेन देने की विद्या कहां सीखते! यह कर्म साधुओं ही के तो हैं—सखियो आज तुमने बड़े महात्मा का दर्शन किया निश्चय तुमारे सब पाप कट गये क्योंकि शंख बजाने वाले साधू तो बहुत देखे थे पर सेन लगाने वाले आज ही देखने में आये।

सुं० ।—(हंस कर) इस में क्या सन्देह है, सखियो तुम परीक्षा करलो कि हम में सब साधुओं के लक्षण हैं कि नहीं ? देखो मैं अपने चोर को ढूंढ़ता २ यहां तक आया और उसे पाकर उस को पकड़ने और धन फेर लेने के बदले और भी जो कुछ मेरे पास बच गया है भेंट किया चाहता हूं, परंतु जो यह लें।

वि० ।—(धीरे) दीजिए।

सुं० ।—(प्रसन्न होकर) सखियो तुम साक्षी रहना मन और प्राण तो इन चोरी करके ले लिया एक देह बच गई है इसे मैं अपनी ओर से अर्पण

करता हूं (विद्या से) प्यारी मैं यहां केवल इसी हेतु आया था सो तुम ने मुझे अपना करलिया है, अब इसका निबाह करना, (हाथ बढ़ाता है)

वि० ।—(लाज से) यह मैंने कब कहा था ।

सुलो० ।—[विद्या से हंस कर] सखी अब तेरी ये बातें न चलेंगी आज के विचार में तो तू हार गई ।

च० ।—इस में क्या संदेह है, यहां न्याय के विचार का क्या काम है जो रस के विचार में जीते सो जीता क्योंकि न्याय का विचार करके स्त्री को जीतना यह भी एक अविचार है ।

सुलो० ।—(हंस कर विद्या से) सखी अब विलम्ब क्यों करती है क्योंकि राज पुत्र तुझे अपना शरीर समर्पण करके पाणिग्रहण के हेतु हाथ फैलाये हुए हैं इस से या तो तुम उस की बनो या उसे अपना करो क्योंकि आज से हम उस में और तुम में कुछ भेद नहीं समुझतीं और हस्तकमल के संग अपना हृदयकमल भी राजपुत्र के अर्पण करें क्योंकि अच्छे काम में विलम्ब न करना चाहिए ।

सुं० ।—[प्रसन्नता से विद्या का हाथ अपने हाथ में लेकर] अहाहा ऐसा भी कोई दिन होगा ।

सुलो० ।—अब होने में विलम्ब क्या है ? परन्तु मैं यह बिन्ती करती हूं कि हमारी राजकुमारी अत्यन्त सीधी और सच्ची है क्योंकि इस ने पहिले ही जान पहिचान में आप का विश्वास करके अपना तन मन धन आप के अर्पण किया परन्तु आप सुरसिक और पंडित हैं इस से इस धन की रक्षा का कोई उपाय कीजियेगा [फूल की माला से दोनों का हाथ बांधती है] हम भगवान् से प्रार्थना करती हैं कि तुम दोनों सर्वदा इसी फूल की माला की भांति आपुस में प्रेम के डोरे में बंधे रहो ।

सुं० ।—सखी हम भी हृदय से एवमस्तु कहते हैं ।

च० ।—राजनन्दिनी तो इस समय कुछ कहने ही की नहीं पर मैं उस की ओर से कहती हूं कि ऐसा ही हो ।

सुलो० ।—ऐसी नई बहू की प्रतिनिधि कौन नहीं होना चाहती ?

च० ।—चल तुझे तो ऐसी ही बातें सूझती हैं ।

सुलो० । अब नये दुलहा दुलहिन को दूर २ बैठाना उचित नहीं है इस से कृपा कर के दोनों एक पास बैठो जिसे देखकर हमारी आंखें सुखी हों ।

सुं० ।—(हंस कर के) ठीक है (विद्या के पास बैठता है और विद्या कटाक्ष से देखती है)

सुलो० ।—(हंस कर) सखी सब बातें हो चुकीं तो अब गान्धर्व विवाह की कुछ रीतें बची क्यों जाती हैं और हमारी आज्ञा करने में तुझे क्या लज्जा है अब तुम दोनों माला का अदला बदला करो जिसे देख कर हम सुखी हों।

(सुन्दर के यत्न से दोनों परस्पर माला बदलते हैं और सखी लोग आनन्द से ताली बजाती हैं)

वि० ।—(मन ही मन) विधाता क्या सचमुच आज ऐसा दिन हुआ है कि मैं सपना देखती हूं—नहीं यह सपना है।

च० ।—हमारे नेत्र आज सुफल हुये।

सुलो० ।—(आनन्द से गाती है)

आजु अति मोहि अनन्द भयो।
बहुत दिवस की इच्छा पूजी सब दुख दूर गयो ॥
यह सोहाग की राति रसीली सब मिलि मंगल गाओ ।
जनम लिये को आज मिल्यो फल अंखियां निरखि सिराओ ॥
दिन दिन प्रेम बढ़ो दोउन को सब अति ही सुख पावैं ।
चिरजीवो दुलहा अरु दुलहिन दोउ कर जोरि मनावैं ॥

सुं० ।—अहाहा कैसा मधुर गीत है सखी जो तुझे कष्ट न हो तो एक गीत और गा।

सुलो० ।—वाह ऐसे आनन्द के समय में और मैं गीत न गाऊं, तिस में नये जमाई की पहिली आज्ञा न मानती तो सर्वथा अनुचित है।

च० ।—सखी हमारी राजनन्दिनी ने उस दिन जो गीत बनाई थी सो क्यों नहीं गाती ? क्यों नये बर उस गीत से निश्चय बड़े प्रसन्न होंगे।

(विद्या आंखों से निषेध करती है)

सुलो० ।—हां सखी बहुत ठीक कहा (विद्या से) क्यों सखी इन में दोष क्या है तू क्यों निषेध करती है अब तो मैं निश्चय वही गीत गाऊंगी। (चपला ताल देती है और सुलोचना गाती है)

(राग देस)

जहां पिय तहीं सबै सुख साज। बिनु पिय जीवन व्यर्थ सखी री यद्यपि सबै समाज॥ जो अपुनो पीतम संग नाहीं सुरपुर कौने काज। निरज-न बनहू में पीतम के संग सुरपुर को राज॥ १॥

सुं०।—वाह २ बहुत अच्छा गीत गाया, जैसे मेरे कान में अमृत की धारा की वर्षा हुई, सखी सुरपुर सुख आज मुझे यथार्थ अनुभव होता है।

सुलो०।—(हंस कर) क्या मेरे गाने से!—जो होय अब रात बहुत गई और नई बहू के मिलाप में पहिलेही दिन बहुत विलम्ब करना योग्य नहीं।

सुं०।—हां सखी अब जाता हूं [अंगूठी उतार कर दोनों सखियों को देता है] यह हमारे सन्तोष का चिन्ह सर्वदा अपने पास रखना।

सुलो०।—(लेती है) यद्यपि यह अंगूठी सहज ही बहुमूल्य है परन्तु आप के सन्तोष का चिन्ह होने से और भी अमूल्य हो गई और इसे हम सर्व-दा बड़े प्यार से अपने पास रक्खेंगी।

च०।—आप का प्रसादी फूल भी हमें रत्न के समान है।

सुलो०।—तो अब उठिये।

सु०।—तुम आगे चलो हम लोग भी आते हैं।

सुलो०।—(उठ कर) इधर से आइये।

(सुलोचना और चपला आगे २ उन के पीछे विद्या का हाथ पकड़े हुए सुन्दर चलता है और जवनिका गिरती है)

दूसरा गर्भांक।

स्थान विद्या का मन्दिर।

(विद्या और मालिन बैठी हैं)

वि०।—कहो उन के लाने का क्या किया, लम्बी चौड़ी बातें ही बनाने आती हैं कि कुछ करना भी आता है?

मा०।—भला इस में मेरा क्या दोष है मैंने तो पहिले ही कहा था कि यह काम छिपा कर न होगा, जब मैंने कहा कि मैं रानी से कहूं तौ भी तुमने मना किया और उलटा दोष भी मुझी को देती हो उस दिन तुम ने कहा कि उन से कहो वे कोई उपाय आप सोच लेंगे उस का उन ने

यह उत्तर दिया कि "मौसी मैं परदेशी हूं इस नगर की सब बातें। नहीं जानता और राजा के घर में चोरी से घुस कर बच जाना भी साधारण कर्म नहीं है जब तुम्हीं कोई उपाय नहीं सोच सकती तो मैं क्या सोचूंगा और अब मुझे मनुष्यों का कुछ भरोसा नहीं है इस से मैं अब देवकर्म करूंगा सो तू घर में एक अग्नि का कुंड बना दे और रात भर मेरा पहरा दिया कर" वे तो यों कहते हैं पर देखूं उन का देवता कब सिद्ध होता है—भला वह तो चाहे जब हो एक नई और सुनने में आई है जिस से जी में तो रुलाई आती है और ऊपर से हंसी आती है।

वि०।—क्या कोई और भी नई बात सुनने में आई है ?

हो०मा०।—हां, मैंने सुना है कि राजसभा में कोई सन्यासी आया है।

वि०।—तो फिर क्या।

हो०मा०।—मैं सुनती हूं कि वह विचार में सब सभा को तो जीत चुका है और अब कहता है कि मैं राजकुमारी से शास्त्रार्थ करूंगा।

वि०।—ऐसा कभी हो सकता है कि मैं सन्यासी से विचार करूं।

हो०मा।—क्यों नहीं, क्या प्रण करने के समय तुमने यह प्रतिज्ञा थोड़ी ही की थी कि सन्यासी को छोड़कर मैं प्रण करती हूं अब तो जैसा राजकुंवर वैसा ही सन्यासी।

वि०।—तो मैं तो उस से विचार नहीं करने की।

हो०मा०।—अब नहीं कहने से क्या होता है विचार तो करना ही होगा और फिर इस में दोष क्या है जैसा तुम्हारा दिव्य राजा के कुल में जन्म है वैसा ही दिव्य सन्यासी वर मिल जायगा, मैंने तो चन्द्रमा का टुकड़ा वर खोज दिया था पर तू कहती है कि रानी से उस का समाचार ही मत कहो तो अब मैं कौन उपाय करूं—अच्छा है जैसी तुम्हारी चोटी है कुछ उस से भी लम्बी उस की डाढ़ी है सिर पर बड़ी भारी जटा है और सब अंग में भभूत लगाए हैं, ऐसे जोगी नित्य नित्य नहीं आते—अहाहा कैसा अद्भुत रूप है।

(गाती है) (राग देस)

अरे यह जोगी सब मन माने। लम्बी जटा रंगीले नैना जंत्र मंत्र सब जाने॥ कामदेव मनु काम छोड़ि के जोगी ह्वै बौराने। या जोगिया की मैं बलिहारी जग जोगिन कियो जाने॥ अरे यह जोगी०—॥ १ ॥

ऐसा रसिक जोगी वर मिलता है अब और क्या चाहिये।

वि०।—चल तू भी चूल्हे में जा और जोगी भी।

ही०मा०।—ऐसा कभी न कहना मैं भले चूल्हे में जाऊं पर सन्यासी बिचारा क्यों चूल्हे में जायगा भला यह तो हुआ पर अब मैं यह पूछती हूं कि एक भले मानस के लड़के को मैंने आस दे कर घर में बैठा रक्खा है उस की क्या दशा होगी और मैं उस से क्या उत्तर दूंगी क्योंकि तुम तो महादेव जी की सेवा में जाओगी पर वह बिचारा क्या करेगा—और क्या होगा तुम सन्यासी को ले कर आनन्द करना और वह बिचारा आप सन्यासी हो कर हाथ में डंड कमंडल ले कर तुम्हारे नाम से भीख मांग खायगा।

वि०।—चल—लुच्ची—ऐसी दशा शत्रु की होय—मैं तो उसे उसी दिन वर चुकी जिस दिन उसका आगमन सुना और उसी दिन उसे तन मन धन दे चुकी जिस दिन उस का दर्शन किया इस से अब प्रश्न कहां रहा और बिचार का क्या काम है।

ही० मा०।—पर मन के लड्डू खाने से तो काम नहीं चलेगा क्योंकि मन से हम ने इन्द्र का राज कर लिया इस से क्या होता है, सपने की सम्पति किस काम की कि जब आंख खुली तो फिर वही टूटी खाट—राजा यह बात कैसे जानेंगे और रानी इस बात को क्या समझती हैं कि मेरी कन्या का गन्धर्व विवाह हो चुका है और जब सन्यासी से ब्याह देंगी तब तुम क्या करोगी और वह तब कहां जायगा॥

वि०।—हां तुम तो इस बात से बड़ी प्रसन्न हो ० तुम्हारी क्या बात है० मैंने कई बार कहा कि उस को एक बार मुझ से और मिलादे पर तू उसे कब छोड़ती है ० अरी पापीन जमाई को तो छोड़ देती पर तौभी तू धन्य है कि इतनी बूढ़ी हुई और अभी मद नहीं उतरा जब बुढ़ापे में यह दशा है तो चढ़ते यौवन में न जाने क्या रही होगी।

ही०मा०।—सच है उलटा उराहना तो मुझे मिलैहीगा क्योंकि अब तो सब दोष मुझे लगेगा, तुम को सब बात में हंसी सूझती है पर मुझे ऐसा दुःख होता है कि उस का वर्णन नहीं होता।

जो विधि चन्दहिं राहुबनायो। सोइ तुम कहं सन्यासी लायो॥

इस दुःख से प्राण त्याग करना अच्छा है—मेरी तो छाती फटी जाती है—

यह मैंने जो सुना सो कहा अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने मैंने जो सुना सो कहा।

वि०।—नहीं नहीं मैं तो तेरे भरोसे हूं जो तू करगी सो होगा—भला उन से भी एक बेर यह समाचार कह दे।

(चपला आती है)

च०।—राजकुमारी पूजा का समय हुआ।

वि०।—चलो सखी मैं अभी आई।

(चपला जाती है)

हो०मा०।—तो मैं आज जाकर उस से यह वृत्तान्त कहती हूं इस पर वह जो कहेगा सो मैं कल तुम से फिर कहूंगी।

वि०।—ठीक है कल अवश्य इस का कुछ उपाय करेंगे।

(जवनिका गिरती है)

तीसरा गर्भांक।

स्थान—विद्या का मंदिर।

(विद्या अकेली बैठी है और सुन्दर आता है)

वि०।—आज मेरे बड़े भाग्य हैं कि आप सांझ ही आये।

सु०।—(पास बैठकर) प्यारी मुझे जब तेरे मुखचन्द्र का दर्शन हो तभी सांझ है।

वि०।—परन्तु प्राणनाथ यह दिन सर्व्वदा न रहैंगे चार दिन की चांदनी है।

सु०।—हां यह तो मैं भी कहता हूं।

वि०।—क्यों ?

सु०।—क्योंकि जब सैं "बैठिए" तो कभी नहीं सुनता और "जाइए" प्राय: सुनता हूं तो अवश्य ऐसा होगा।

वि०।—वाह वाह ! अब तो आप बहुत ही हंसी करना सीखे हैं—कहिये की उपास में यह विद्या आई है (पान का डब्बा देती है) लीजिये इसे छूके शुद्ध कर दीजिये।

सु०।—पहिले आप तो मुझे पवित्र कीजिये पीछे मैं जब आप शुद्ध होजाऊं-गा तब इसे भी पवित्र कर सकूंगा।

वि०।—भला यल बात तो हुई आज सवेरे मालिन आई थी उस का समाचार आप जानते हैं।

सु० ।—हां सो तो वह नित्य सवेरे आती है आज विशेष क्या हुआ क्या उस को किसी ने एक दो धौल लगाई।

वि० ।—भला मेरे सामने ऐसा कभी हो सकता है और फिर वह ऐसी डरपोकनी है कि जो उस को कोई मारता तो वह तुरंत रानी से जाकर सब समाचार कह देती तौभी तो बुरा होता।

सु० ।—तो उस से बहुत चौकस रहना चाहिए।

वि० ।—नहीं ! इस का कुछ भय नहीं है पर एक दूसरी बात जो मैंने सुना है उस का बहुत भय है।

सु०।—क्या कोई दूसरा उपद्रव हुआ।

वि० ।—एक बड़े पंडित सन्यासी आए हैं वह मुझ से विचार किया चाहते हैं।

सु० ।—(विषाद से) अरे यह बड़ा उपद्रव हुआ—मैं उस सन्यासी को जानता हूं क्योंकि जब मैं वर्द्धमान को आता था तो वह मुझे मार्ग में मिला था, वह निश्चय बड़ा पंडित है इस से उस को विचार में जीतना कठिन है।

वि० ।—तब क्या होगा।

सुं० ।—होगा क्या "चोर का धन बटपार लूटै" ✓

बि० ।—भगवान ऐसा न हो कि मुझे उस से विचार करना हो।

सुं० ।—जो महाराज विचार करने की आज्ञा देंगे तो करनाही होगा।

वि० ।—हां यह तो ठीक है—हाय हाय मैं बड़े द्विविधे में पड़ रही हूं कि क्या करूंगी।

सुं० ।—तुम्हें किस बात का सोच है पुराना कपड़ा उतारा नया पहिना, सोच तो मुझे है।

वि० ।—(उदास होकर) चलो सब समय हंसी नहीं अच्छी होती "पुराना उतारा नया पहिना" यह तो पुरुषों का काम है स्त्री बिचारी तो एक बेर जिस की हुई जन्म भर उसी की हो रहती है।

सुं० ।—(हंस कर) ऐसा मत कहो क्योंकि स्त्रियों के चरित्र अत्यन्त विलक्षण होते हैं।

वि० ।—मैं तो नये पुरुषों का मुख भी नहीं देखने पाती मैं नई पुरानी क्या जानूं आपही नित्य नई नई स्त्री को देखते हैं आप जानैं।

सुं० ।—तो क्या हुआ इतने दिन तक राजसुख भोग किया अब जोगिन का सुख भोग करना।

वि० ।—यह बात कैसे हो सकती है कि जिस के वियोग में एक पलक प्रलय सा जान पड़ता है उस को छोड़ कर मैं जोगिन हूंगी—हा! मैं सन्यासिनी हूंगी—हे भगवान तूने कर्मों में क्या क्या लिखा है (अत्यन्त शोच करती है और लंबी सांसें लेती है)।

सुं०।—(हंस कर) और जो वह सन्यासी हमी होयं।

वि०।—यह बात कैसी।

सुं०।—नहीं मैंने एक बात कही जो वह सन्यासी हमीं होयं।

वि०।—तो फिर तुम्हारे लिये तो मैं जोगिन आप ही हो रही हूं इस में क्या कहना है—जो यह बात सच होय तो शीघ्र हो कहो तुम्हें मेरी सौगन्द है—जब से मैंने उस का समाचार सुना है तब से मुझे रात दिन नींद नहीं आती।

सुं०।—(हंस कर) जो तुम्हें दुःख होता है तो मैं कहता हूं पर किसी से कहना मत, अपनी सखियों से भी न कहना—देखो मैं राजसभा देखने को सन्यासी बन के गया था और मैंने विचारा कि यहां विचार की चरचा निकालें देखें क्या फल होता है।

वि०।—हाय हाय अब मेरे प्राण में प्राण आए—अरे तू बड़ा बहुरूपिया है और मुझे बड़े बड़े नखरे आते हैं पुरुष में तो यह दशा है जो स्त्री होता तो न जाने क्या करता—चल तू बड़ा छलिया है—हाय हाय मुझे कैसा धोखा दिया भला तूने यह विद्या कहां सीखी (कुछ ठहरकर) हां तब तब क्या हुआ?

सुं०।—तब क्या हुआ सो तो तुम जानती होगी पर राजा ने कुछ निश्चय नहीं किया।

वि०।—यह बड़ा आनन्द हुआ मानो आज मेरी छाती पर से एक बोझा उतर गया, मुझे आज रात को नींद सुख से आवैगी कल मैंने मालिन से हंसी में यह बात उड़ा तो दीथी पर भीतर मेरा जी ही जानता था और मैंने आप भी कई बेर कहना चाहा पर सोचती थी की कैसे कहूं।

(सुलोचना आती है)

सुलो०।—राजकुमारी रात बहुत गई जो बहुत जागैगी तो कल दिन को जी आलस में रहैगा।

वि०।—नहीं सखी अब जाती हूं (सुलोचना जाती है और विद्या सुंदर

भी उठकर चलते हैं) पर एक बेर मुझे भी उस रूप का दर्शन करा देना क्योंकि मुझे भी तो योगिन बनना है ।

मुं० ।—प्यारी उस प्रेम के जोगी की जोगिन होना तुम्हीं को शोभा देता है ।

वि० ।—नाथ तुम जो कहो सो सब उचित है ।

(जवनिका पतन)

दूसरा अङ्क समाप्त हुआ ।

तीसरा अङ्क ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

स्थान—राजमार्ग ।

(विमला और चपला आती है)

विमला ।—वाहरे वाहरे कैसी दौड़ी चली जाती है—देख कर भी अहाली दिये जाती है ।

चपला ।—(देखकर) नहीं बहिन नहीं मैंने तुम्हे नहीं देखा क्षमा करना ।

विम० ।—भला मैंने क्षमा तो किया पर अपनी कुशल कहो ?

च० ।—कुशल मैं क्या कहूं उस दिन के तो समाचार तूने सुने ही होंगी ।

विम० ।—कौन समाचार राजकन्या के—बड़े घर की बात ? ।

च० ।—अरे चुप चुप भाई धीरे धीरे—जो कोई सुनले तो कहै कि यह सब ऐसेही रनवास की बातें कहती फिरती होंगी ।

विम० ।—हां तो फिर रानी ने सब बात जान कर क्या कहा ।

च० ।—कहैंगी क्या अपना सिर ? राजकुमारी को बुलाकर बड़ी ताड़ना किया और हम लोगों पर जो क्रोध किया उस का तो कुछ पारही नहीं है और राजा से जाकर सब कह दिया राजा ने और भी दस बीस बात सुनाया क्रोध से लाल होकर कोतवाल को आज्ञा दी कि नंगी शस्त्र लेकर रात भर राजकुमारी के महल के चारो ओर घूमा करो और किसी प्रकार से उस चोर को पकड़ो ।

विम० ।—(घबड़ा कर) तब क्या हुआ ?

च० ।—उसी समय से कोतवाल ने हम लोगों के महल में बड़ा उपद्रव मचा

रक्खा है और कहां तक कहें कई चौकीदार भी बन २ के विद्या के सोने के महल में रात भर बैठे रहे, पर जिस के हेतु इतना उपद्रव हुआ वह अभी यह समाचार नहीं जानता और फिर उस की क्या दशा होगी, इस सोच से विद्यावती रात भर रोती रही यद्यपि हम लोगों ने बहुत समझाया परन्तु उस को धीरज कहां, इसी विपत में सब रात कटी।

विम०।—फिर सवेरे क्या हुआ सो कहो ?

च०।—फिर क्या हुआ सो तो मैं ठीक २ नहीं जानती पर कोतवाल सवेरे उठ के चले गये और विद्या ने मुझ से कहा कि तू सोध ले कि अब क्या होता है।

विम०।—सो तूने कुछ सोध पाई ?

च०।—अब तक तो कुछ सोध नहीं मिली, लोगों के मुंह से ऐसा सुनती हूं कि चोर पकड़ गया और एक आपत्ति यह भी न है कि मैं तो किसी से पूछ भी नहीं सक्ती परंतु कोतवाल इत्यादिक बड़े प्रसन्न हैं इससे जाना जाता है कि चोर पकड़ गया—मैंने पहिले ही कहा था कि इस काम को छिपा के करना अच्छी बात नहीं है (नेपथ्य में कोलाहल होता है) अरे यह क्या है, यह तो कोतवाल का शब्द जान पड़ता है और मानो सब इसी ओर आते हैं तो अब हम लोग किनारे खड़ी हो जायं जिससे वह सब हमें न देखें (दोनों एक ओर खड़ी हो जाती हैं)

(नेपथ्य में फिर कोलाहल होता है और कोई गाता है) (हाथ बंधे हुए सुन्दर और मालिन को ले कर चौकीदार आते हैं)

१ चौ०।—चल रे चल।

२ चौ०।—आज इस का पांव फूल गया है, जिस दिन सुरंग खोद कर राजकुमारी के महल में गया था उस दिन पैर नहीं फूले थे आज आप "गजगति" चलते हैं।

सु०।—क्यों व्यर्थ बकता है, राजा के पास तो सब चलते ही हैं, वह जो समझेगा सो उचित दंड देगा, फिर तुमको अपनी तीन छटांक पकाये बिना क्या डूबी जाती है।

१ चौ०।—अहा मानो हमारे राजपुत्र आये हैं, देखो सब लोग मुंह सम्हाल के बोलो कहीं अप्रसन्न न हो जांय और उन को अच्छत चन्दन से पूजा करो—लुच्चा, जिस दिन सेन लगाया था उस दिन आदर कहां गया था

आज आप बड़े पण्डित बने हैं, चल चुपचाप आगे चला चल नहीं तो—.

२ चौ०।—सुनो भाई बहुत शब्द मत करो, कोतवाल ने कहदिया है कि चुप चाप जाना हम पीछे२ आते हैं और सब लोग मंगही महाराज के यहां जांयगे, इस से जब तक वह न आवें तब तक यहां चुपचाप खड़े रहो।

३ प०।—अच्छा, आइये चोर जो यहां ठहरीये राजकन्या के महल में जाने का समय गया, अब कारागार में चलने का समय आया (सब बैठते हैं)

२ चौ०।—देखो भाई भला यह तो परदेसी है पर इस रांड़ मालिन को क्या सूझी कि इस ने ऐसा साहस किया।

१ चौ०।—अरे यह छिनाल बड़ी छत्तीसी है, इस को तुम ने समझा है क्या—ऐसा मन होता है कि रांड़ की जीभ पकड़ के खींच लें (हीरा के पास जाता है)

ही०मा०।—दोहाई महाराज की दोहाई महाराज की हे धर्मदेवता तुम साक्षी रहना, देखो यह सब मुझे अकेली पाकर मेरा धर्म लिया चाहते हैं दोहाई राजा की।

१ चौ०।—वाह वाह, चुप रह।

(धूमकेतु कोतवाल आता है)

धू०के०।—क्यारे तुम लोगों क्या शब्द कर रक्खा है?

ही० मा०।—दोहाई कोतवाल की, वह सब जो चाहते हैं सो गाली देते हैं, हाय इस राज्य में स्त्रियों का ऐसा अपमान, महाराज धूमकेतु आप तो पंडित हैं, आप इस का विचार क्यों नहीं करते?

१ चौ०।—महाराज! यही रांड सब कुकर्म की जड़ है और तिस पर ऐसी २ बातें बनाती है।

ही०मा०।—एक मैं ही दुष्कर्म करती हूं और तुम साधू हो, देखो कोतवाल हम तो कुछ नहीं करते, और तुम सब हमारी प्रतिष्ठा बिगाड़ते हो।

धू०के०।—(हंसकर) हां हां! मैं तेरी सब प्रतिष्ठा समझता हूं, पर यहां इस से क्या? सब लोग महाराज के पास चलें जो वह चाहेंगे सो करेंगे।

ही०मा०।—अरे कोतवाल बाबा इस बुढ़िया को क्यों पकड़े लिये जाते हो, बुढ़िया के मारने से क्या लाभ होगा मुझे अपने बाप की सौगन्द जो मैं कुछ जानती हूं—भगवान् साक्षी है कि मैं किसी पाप में रही हूं।

सं०।—मौसी इतनी शीघ्रता क्यों करती है? सब लोग महाराज के पास

चलते हैं जो महाराज उचित समझैंगे सो करैंगे।

ही०मा०।—(क्रोध से) अरे दुष्ट तेरी मौंसी कौन है ? इसी के पीछे तो हमारा सब कुछ नाश हुआ, अब तेरा होमकुंड क्या हुआ और तेरे इष्ट देवता कहां गये ? अरे तू बड़ा जालिया है और तू ने मुझे बड़ा धोखा दिया अब मैं आज पीछे अपने घर में किसी परदेसी को न उतारूगीं।

धू०को०।—अब भले ही न उतारना, पर इस उतारने का फल तो भुगतना ही पड़ेगा।

ही०मा०।—(रोती है) हाय मैं हाथ जोड़ के कहती हूं कि मैं इस विषय में कुछ नहीं जानती दोहाई भगवान की मैं कुछ नहीं जानती (कोतवाल से) अरे वेटा ? तुम्हारे मा बाप मुझे बड़े प्यार से रखते थे, सो तुम अपने मा बाप के पुख पर मुझे छोड़ दो और इस ने जैसा कर्म किया है वैसा दंड दो ? दोहाई कोतवाल की मैं बिना अपराध मारीजाती हूं।

धू०को०।—इस से क्या होता है ? अब तुम दोनों को महाराजके पास ले चलते हैं और उन की आज्ञा से एक संगही बंदीगृह में छोड़ देंगे (सुंदर का हाथ पकड़ कर कोतवाल जाता है और हीरा को खींच कर चौकीदार लोग ले जाते हैं)

विम०।— अब सच मुच चोर पकड़ा गया।

च०।—जो आंख से देखती है उस का पूछना क्या ?

विम०।—पर भाई ऐसा रूप तो न आंखों देखा और न कानो सुना, यह तो राजकन्या को योग्य ही है इस में उस ने अनुचित क्या किया, क्योंकि जैसी सुन्दर वह है वैसाही यह भी है, "उत्तम को उत्तम मिलै मिलै नीच को नीच"।

च०।—पर उस निर्दई विधाता से तो सही नहीं गई।

वि०म०।—सोई तो, आहा जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रसै—हा—विधाता बड़ा कपटी है।

च०।—सखी अब और कुछ मत कह क्योंकि इस कथा के सुने से मेरी छाती फटी जाती है और राजकन्या का दुख स्मर्ण करके मुझ से यहां खड़ा नहीं रहा जाता, देखैं और क्या २ होता है।

विम०।—तो फिर कब मिलैगी ?

च०।—जो जीती रहूंगी तो शीघ्रही फिर मिलूंगी (दोनो जाती हैं)

(जवनिका गिरती है।)

दूसरा गर्भाङ्क

स्थान—विद्या का मंदिर ।

विद्या शोच में बैठी है।

चपला और सुलोचना आती हैं

च० ।—(धीरे से) सखी मुझ से तो यह दुःख की कथा न कही जायगी तूही आगे चल कर कह ।

सुलो० ।—तो तुम मत कहना पर संग चलने में क्या दोष है जो विपति आती है सो भोगनी ही पड़ती है।

च० ।— चल।

(दोनों विद्या के पास जाती हैं)

वि० ।—(घबड़ा कर) कहो सखी कहो क्या समाचार लाई हो ?

सुलो० ।—सखी क्या कहूं कुछ कहा नहीं जाता मेरे मुख से ऐसे दुख की बात नहीं निकलती। हाय—हम इसी दुःख देखने को जीती हैं—सखी जिस प्रीतम के सुख से तू सुखी रहती थी वह आज पकड़ा गया—हाय उस के दोनों कोमल हाथों को निरदइ कोतवाल ने बांध रक्खा है—हाय—उस को यह दशा देखकर मेरी छाती क्यों नहीं फट गई।

वि० ।—(घबड़ा कर) अरे सचही ऐसा हुआ—हाय—फिर क्या हुआ होगा हाय—(माथे पर हाथ मार कर) हा विधाता तेरे मन में यही थी—(मूर्छा खाती है और फिर उठ कर) हाय —प्राणनाथ बन्धन में पड़े हैं और मैं जाती हूं—हाय— ।

धिक है वह देह औ गेह सखी जिहिं के बस नेह को टूटनो है ।
उन प्रान पियारे बिना यह जीवहि राखि कहा सुख लूटनो है ॥
हरिचन्द जू बात ठनी जिय में नित की कलकानि ते छूटनो है ।
तजि और उपाय अनेक सखी अब तो हम को विष घूंटनो है ॥

सखी अब मैं किस के हेतु जीऊंगी—आओ हम तुम मिललें क्योंकि यह पिछला मिलना है फिर मैं कहां और तुम कहां—सखी जो प्राण-प्यारे जीते बचें तो उन से मेरा संदेसा कह देना कि मैं ने तुम्हारी प्रीति का निबाह किया कि अपना प्राण दिया पर मुझे इतना शोच रहगया

कि हाय मेरे हेतु प्राणप्रीतम बांधे गये—पर मेरे इस बात का निबाह करना कि मेरे दुःख मे तुम दुखी न होगा—हाय—मेरी छाती वज्र की है कि अब भी नहीं फटती (रोती है और मुर्छा खाकर गिरती है)

सुलो० ।—(उठाकर) सखी इतनी उदास न हो और रो रो कर प्राण न दे—यद्यपि जो तू कहती है सो सब सत्य है पर जब ईश्वर ही फिर जाय तो मेरा तेरा कौन वश है। हाय—बादल मे कोई बिजली भी नहीं गिरता कि हम को दुःख न देखना पड़े—सखी धीरज धर—सखी धीरधर।

वि० ।—(रोकर) सखी मन नहीं मानता हाय—बिसासी विधाता ने क्या दिखा कर क्या दिखाया हाय—अब मैं क्या करूंगी—और कैसे दिन काटूंगी।

"मेलि गरे मृदु बेलिसी बांहन कौन सी चाहन छाहन डोलिहौं ।
कासो सुहास बिलास मुबारक हीके हुलासन सों हंसी बोलिहौं ॥
औनन प्याइहौं कौन सुधा रस कासौं बिथा को कथा गढ़ि छोलिहौं ।
प्यारे बिना हौं कहा लखिहौं सखियां दुखियां अंखियां जब खोलिहौं" ॥

सखी केवल दुःख भोगने को जन्मी हूं क्योंकि आज तक एक भी सुख नहीं मिला—क्या विधाता की सब उलटी रीति है कि जिस वस्तु से मुझे मन माना प्रीतम मिला अब मैं कभी दुःखी न हूंगी सो आशा आज पूरी हो गई—हाय अब मुझे जन्म भर दुःख भोगना पड़ा।

सुलो० ।—सखी यह सब कर्म्म के भोग हैं नहीं तो तुम राजा की कन्या हो तुम्हारे तो दुःख पास न आना चाहिये पर क्या करें—सखी तू तो आप बड़ी पंडिता है—मैं तुझे क्या समझाऊंगी पर फिर भी कहती हूं कि धीरज धर।

वि० ।—सखी मैं यद्यपि समझती हूं पर मेरा जी धीरज नहीं धरता—कर्म्म के भोग न होते तो यह दिन क्या देखना पड़ता—हाय—जो पिता माता प्राण देकर सन्तान की रक्षा करते हैं उन्हीं पिता माता ने मुझे जन्म भर रंडापे का दुःख दिया (रोती है)

च० ।—सखी अब इन बातों से और भी दुःख बढ़ैगा इस से चित्त से यह बातें उतार दे और किसी भांति धीरज धर के जी को समझा।

वि० ।—सखी मैं तो समझती हूं पर मन नहीं समझता—हाय—और जिस का सर्वस नाश हो जाय वह कैसे समुझे और कैसे धीरज धरे—हाय !

हाय! प्रान बड़े अधम हैं कि अब भी नहीं निकलते (लंबी सांस लेती है और रोती है)

सुलो०।—पर एक बात यह भी तो है कि अभी राजा ने न जाने क्या आज्ञा दिया—बिना कुछ क्षण इतना दुःख उचित नहीं न जाने राजा छोड़ दे।

वि०।—राजसभा में क्या होगा केवल हमारे शोकानल में पूर्णाहुति दी जायगी और क्या होगा—हाय—प्राणनाथ इस अभागिनी के हेतु तुम्हें बड़े दुःख भोगने पड़े।

सुलो०।—जो तू कहे तो मैं छत पर से देखूं कि सभा में क्या होता है।

वि०।—जो तेरे जो में आवे और जिस से मेरा भला हो सो कर।

सुलो०।—चपला चल हम देखें तो क्या होता है।

च०।—चल (दोनों जाती हैं)

वि०।—अब मैं यहां बैठी बैठी क्या करूंगी और मन को कैसे समझाऊंगी हे भगवान मेरे अपराधों को क्षमा कर—मैं बड़ी दीन हूं मैं ने क्या ऐसा अपराध किया है कि तू मुझे दुःख दे रहा है। नहीं भगवान का क्या दोष है सब दोष मेरे भाग्य का है (हाथ जोड़ कर) हे दीनानाथ, हे दीनबन्धु, हे नारायण, मुझ अबला पर दया करो—और जो मैं पतिव्रता हूं और जो मैं ने सदा निश्छल चित्त से तुम्हारी आराधना किया हो तो मुझे इस दुःख से पार करो।

(नेपथ्य में)

अरे राजकाज के लोगों ने बड़ा बुरा किया कि बिना पहिचाने कांचीपुरी के महाराज गुणसिंधु के पुत्र राजकुमार सुंदर को कारागार में भेज दिया—क्या किसी ने उसे नहीं पहिचाना मैं अभी जाकर महाराज से कहता हूं कि यह तो वही है जिस के बुलाने के हेतु आप ने मुझे कांचीपुर भेजा था।

वि०।—(हर्ष से) अरे—यह कौन अमृत की धार बरसाता है—अहा भगवान ने फिर दिन फेरे क्या? अब मैं भी छत पर चल कर देखूं कि सभा में क्या होता है।

(जवनिका गिरती है)

तीसरा गर्भाङ्क

स्थान—राजभवन

राजा सिंहासन पर बैठा है ।

(मंत्री पास है और कुछ दूर पर गंगा भाट खड़ा है)

राजा ।—मंत्री, गंगा भाट ने जो कहा सो तुम ने सुना ?

मंत्री ।—महाराज सब सुना ।

रा० ।—तब फिर उन को चोर जान कर कारागार में भेज देना बुरा हुआ ।

मं० ।—महाराज पहिले यह कौन जानता था कि यह राजा गुणसिन्धु का पुत्र है केवल चोर समुझ कर उसे दंड दिया गया ।

रा० ।—पर जब से मैं ने उसे देखा तभी से मुझ को संदेह था कि आकार से यह कोई बड़ा तेजस्वी जान पड़ता है और मैं सच कहता हूं कि उस की मधुर मूर्ति और तरुण अवस्था देखकर मुझे बड़ा मोह लगता था—जो कुछ हो अब तो विलम्ब मत कर और शीघ्रही आप जाकर उसे ले आ क्योंकि कोतवाल अभी कारागार तक न पहुंचा होगा ।

मं० ।—जो आज्ञा महाराज मैं अभी जाता हूं (जाने चाहता है)

रा० ।—पर केवल सुन्दर को लाना और कोतवाल इत्यादिक को मत लाना ।

मं० ।—जो आज्ञा (जाता है)

रा० ।—क्यों कविराज तुम उसे अच्छी भांति पहिचानते हो कि नहीं ?

गंगा० ।—महाराज मैं भली भांति पहिचानता हूं और पृथ्वीनाथ विना जाने मैं कोई बात निवेदन भी तो नहीं कर सकता ।

रा० ।—तो गुणसिन्धु राजा का पुत्र वही है ?

गं० ।—महाराज इस में कोई संदेह नहीं ।

रा० ।—तुम जो न कहते तो बड़ा अनर्थ होता यह भी हमारे भाग्य की बात है कि ईश्वर ने धर्म बचा लिया । पर मंत्री के आने में इतना विलम्ब क्यों हुआ इस से तुम जाकर देखो तो सही ।

गं० ।—जो आज्ञा (जाता है) ।

रा० ।—(आप ही आप) इतना विलम्ब क्यों लगा ? (शरीर हिलाकर) विद्यावती के संग जो इस का गांधर्व विवाह हुआ वह अच्छाही हुआ क्योंकि नीच कुल में विवाह करने से तो मरना अच्छा होता है, परन्तु

हमारी विद्यावती ने कुछ अयोग्य नहीं किया यह एक भाग्य की बात है नहीं तो मैं अपने हाथ से कन्या को जन्मभर का दुःख दे चुका था, अहा भगवान ने बहुत बचाया (द्वार की ओर देख कर) मंत्री अब तक नहीं आया (नेपथ्य में पैर का शब्द सुन कर) जान पड़ता है कि सब आते हैं (गंगा भाट आता है)

गं० ।—महाराज कांचीराजपुत्र को मन्त्री आदर पूर्वक ले आते हैं (मंत्री और सुन्दर आते हैं)

रा० ।—(सुन्दर का मुख चूमकर) यहां आओ पुत्र यहां [हाथ पकड़ कर अपने सिंहासन पर बैठाता है] बेटा मैंने तुझ को आज तक अनेक दुःख दिये इस दोष को मैं स्वीकार करता हूं और यह मांगता हूं कि तुम आज से इन बातों को भूल जाओ।

सु० ।—[हाथ जोड़ कर] महाराज ! आप का क्या दोष है यह तो आप ने मुझे उचित दंड दिया था, यह केवल मेरे यौवन का दोष था कि मैंने आप के यहां अनेक अपराध किए सो मैं हाथ जोड़ कर मागता हूं कि आप मुझे क्षमा करें।

रा० ।—(मंत्री से) मंत्री रनिवास में से विद्यावती को शीघ्रही ले आओ।

मं० ।—जो आज्ञा (जाता है)

रा० ।—बेटा मैं ने तुम को जितना दुःख दिया है उस के बदले तो मैं तुम्हारा कुछ भी संतोष नहीं कर सकता पर मैं इतना कहताहूं कि तू ने विद्यावती से जो गंधर्व विवाह किया है उस में मैं प्रसन्नता पूर्वक सम्मति प्रगट करता हूं जिस से अवश्य तुम को बड़ा संतोष होगा।

सुं० ।—(हाथ जोड़कर) महाराजआपकी कृपा ही से मुझ को बड़ा संतोष हुआ।

(मंत्री आता है)

रा० ।—मंत्री क्या विद्यावती आई ?

मं० ।—महाराज अभी आती है।

रा० ।—(सुन्दर से) बेटा तुम ने पकड़े जाने के समय अपना नाम क्यों नहीं बताया नहीं तो इतना उपद्रव क्यों होता ?

सुं० ।—महाराज जो मैं नाम बतलाता तो भी मेरी बात कौन सुनता और सभासद जानते कि यह प्राण बचाने को झूठी बातें बनाता है और फिर

चत्री के निष्कलङ्क कुल में उत्पन्न हो कर ऐसे बुरे कर्म में अपना नाम प्रगट करने से प्राण त्याग करना उत्तम है।

(सुलोचना और चपला के संग विद्या नीची आंख किये हुए आती है)

वि० ।—(धीरे से) सखी मैं पिता को मुंह कैसे दिखाऊंगी ?

सुलो० ।—(धीरे से) जब पिता ने बुला भेजा है तो कौन सी लज्जा है।

रा० ।—आ मेरी प्यारी बेटी इधर आ, आज तक मैंने तुझे अनेक दुख दिये थे पर वे सब दुःख आज सम्पूर्ण हो गये (उठ कर और विद्या का हाथ पकड़ कर) प्यारे यह लो वीरसिंह का सर्वस्व धन मैं तुम्हें आज समर्पण करता हूं (विद्या का हाथ सुन्दर के हाथ में देता है और नेपथ्य में बाजा बजता है और आनन्द के शब्द से रङ्गभूमि भर जाती है) यह बात तो कहना सर्वथा अनुचित है कि इस कन्या पर प्रीति रखना क्योंकि जो परस्पर अत्यन्त नेह न होता तो इतना दुःख क्यों सहते परन्तु ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूं कि आज से फिर तुम्हें कोई दुःख न हो और सर्व्वदा अखण्ड सुख करो और शीघ्रही एक बालक हो जिस के देखने से हमारा हृदय और आंखें शीतल हों।

[दोनों दण्डवत करते हैं]

सुं० ।—महाराज आप की दया से मेरे सब दुःख दूर हुए पर यह शंका है कि मैं आप की प्रसन्नता के हेतु कोई योग्य सेवा नहीं कर सका।

गं० ।—आज आनन्द भयो अति ही विपदा सब की दुरि दूरि नसाई ।
मोद बढ्यो परजागन को दुख को कहूं नाम न नेकु लखाई ॥
मङ्गल छाइ रह्यो चहुं ओर असीसत हैं सब लोग लुगाई ।
जोरी जियो दुलहा दुलही को बधाई बधाई बधाई बधाई ॥

सुं० ।—महाराज आपने मुझे यद्यपि सब सुख दिया तथापि एक प्रार्थना और है।

राजा ।—कहो ऐसी कौन वस्तु है जो तुम को अदेय है।

सुं० ।—[हाथ जोड़ कर] महाराज ने यद्यपि मालिन को प्राण दान दिया है परन्तु देश से निकाल देने की आज्ञा है सो अब उस के सब अपराध क्षमा किये जांय।

रा० ।—[हंस कर] जो तुम कहते हो सोई होगा [मंत्री से] मन्त्री मालिन के सब अपराध क्षमा हुए इस से अब उसे कोई दण्ड न दिया जाय।

मं० ।—जो आज्ञा।

रा० ।—[मन्त्री से] मन्त्री अब तुम शीघ्रही व्याह के सब मङ्गलसाज सजो जिस में नगर में कहीं शोच का नाम न रहैं क्योंकि पुरवासियों को दुल-हा दुलहिन के देखने की बड़ी अभिलाषा है और मैं वर वधू को लेकर रनिवास में जाता हूं।

मं० ।—महाराज हम लोगों का जीवन आज सुफल हुआ।

(मन्त्री और भाट एक ओर से जाते हैं और राजा और विद्यासुन्दर दूसरी ओर से और उन के पीछे सखी जाती हैं)

[जवनिका पतन होती है]

नेपथ्य में मङ्गल का बाजा बजता है

इति।

भारतजननी ।

गीतिरूपक

वंग भाषा की "भारतमाता" के आशय के अनुसार

भारतजननी ।

(सूत्रधार आता है)

(भैरव ताल इकताला)

सू० ।—जगत पिता जग जीवन जागो मङ्गल मुख दरसाओ ।
तुव सोए सबहीं मनु सोए तिन कहं जागि जगाओ ॥
अब बिनु जागे काज सरत नहिं आलस दूरि बहाओ ।
हे भारत भुवनाथ भूमि निज बूड़त आनि बचाओ ॥

भारत भूमि और भारत सन्तान की दुर्दशा दिखाना ही इस भारतजननी की इति कर्तव्यता है और आज जो यह आर्य्यवंश का समाज इस खेल देखने को प्रस्तुत है उस में से एक मनुष्य भी यदि इस भारतभूमि के सुधारने में एक दिन भी यत्न करें तो हमारा परिश्रम सफल है।

(जाता है)

स्थान—बड़ा भारी खंड़हर ।

(एक टूटे देवालय की सहन में एक मैली साड़ी पहिने बाल खोले भारतजननी निद्रित सी बैठी है, भारतसन्तान इधर उधर सो रहे हैं)

(भारत सरस्वती आती है सफेद चन्द्रजोत छोड़ी जाय)

(गातीहुई, ठुमरी)

भा०स० ।—क्यों माता मुख मलिन होय रही जिय में कहा उदासी ।
क्यों घर छोड़ि त्यागि आभूषण बैठी ह्वै बनवासी ॥
कहां गई वह मुख की सोभा कित वह तेज गंवायो ।
कित वह श्री बल बुधि उछाह सब कछु नहिं आज लखायो ॥
कहां गयो वह राजभवन कित धवल धाम बिनसाए ।
कहं वह ओज प्रताप नसानो वैभव कितहि दुराए ॥
सदा प्रसन्न तेज जुत मुख तुव बाल अरक छवि छाजे ।
सो दिन ससि सम पीत बरन ह्वै आजु तेज बिन राजे ॥
धूरि भरी तुव अलक देखि कै मेरो जिय अकुलाई ।
छत्र चंवर नित ढुरत जौन मुख तहं मनु छुटत हवाई ॥
कित सब बेद पुरान शास्त्र उपबेद अङ्ग सह भागे ।

दरमन दुरे किते जिनके बल तुव प्रताप जग जागी ॥
आजु न कोऊ सङ्ग अकेली दीन होइ बिलखाई ।
बैठी क्यों इत जननि कहो क्यों बुधि गुन ज्ञान नसाई ॥ १ ॥

(भारत माता के पास जाकर कई बेर जगा कर)

(परज कलिङ्गड़ा)

क्यों बोलत नहिं सुख माय बचन जिय व्याकुल बिनु तुव अमृत बयन ।
क्यों रूस रही अपराध बिना नहिं खोलत क्यों तुम जुगल नयन ॥
बिनती न सुनत हित जिय न गुनत भई मौन कियो जागत ही सयन ।
सुख खोलो बोलो बलि बलि गई दिनही में काहे करत रयन ॥
बिछुरत अब तौ फिर कठिन मिलन ले जात जवन मोहि करि कै जयन ॥

(अन्त का तुक गाते और रोते रोते भारत सरस्वती जाती है)

(भारत दुर्गा आती है लाल चन्द्रजोत छूटै)

(राग बसन्त)

भा० दु० ।—भारतजननी जिय क्यों उदास । बैठी इकल्ली कोउ नाहिं पास ॥
किन देखहु यह रितुपति प्रकास । फूलीं सरसों बन करि उजास ॥
खेतन में पकि रहे लखहु धान । पियरान लगे भरि स्वाद पान ॥
रितु बदलि चली देखहु सुजान । अबहूं तौ चेतौ धारि ज्ञान ॥
भयो सुखद सिसिर को माय अन्त । लखिसबहिनमिलिगायोबसन्त ॥
तब क्यों न बांधि कङ्कन समन्त । साजत केसरिया भूमि कन्त ॥

(होली)

भारत में मची है होरी ॥

इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी ।
अपनी अपनी जय सब चाहत होड़ परी दुहुं ओरी ॥
द्वन्द सखि बहुत बढ़ोरी ॥ १ ॥
धूर उड़त सोइ अबिर उड़ावत सब को नयन भरोरी ।
दीन दसा अंसुअन पिचकारिन सब खिलार भिंजयोरी ॥
भींजि रहे भूमि लटोरी ॥ २ ॥
भइ पतझार तत्व कहुं नांहीं सोइ बसन्त प्रगटो री ॥
पीरे मुख भई प्रजा दीन ह्वै सोइ फूली सरसों री ॥
सिसिर को अन्त भयो री ॥ ३ ॥

ढोरहिं नभ कोउ न सूझत ग्रास सोई बीत्यो री ।
कुहू कहत कोकिल ताही तें महा अंधार छयो री ॥
रूप नहिं काहू लख्यो री ॥ ४ ॥
हारे भाग अभाग जीत लखि विजय निसान हयो री।
तन उत्साह औ धन बुधि बल सब फगुआ माहिं लयोरी ॥
नेम कछु रहि न गयो री ॥ ५ ॥
नारी ठकत कुफार जीति दल तासु न सोच लयोरी ।
सुनहु हारी काफिर आधी मिच्छित सबहि भयोरी ॥
उत्तर काहू न दयोरी ॥ ६ ॥
उठो उठो भैया क्यौं हारौ अपुनो रूप सुमिरोरी ।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करो री ॥
दीनता दूर धरो री ॥ ७ ॥
कहां गए छत्री किन उन के पुरुषारथहि हरोरी ।
चूड़ी पहिरे स्वांग बनि आए धिक धिक सबन कह्योरी ॥
भेस यह क्यौं पकरोरी ॥ ८ ॥
धिक वह मात पिता जिन तुम सो कायर पुत्र जन्यो री ।
धिक वह घरी जनम भयो जामैं यह कलंक प्रगटोरी ॥
जनमत हि क्यौं न मरो री ॥ ९ ॥
खान पियन अरु लिखन पढ़न सों काम न कछू चलोरी ।
आलस छोड़ी एक मत ह्वै कै सांची बुद्धि करोरी ।
समय नहिं नेकु बचोरी ॥ १० ॥
उठो उठो सब कामरन बांधी शस्त्रन सान धरोरी ।
विजय निसान बजाइ बावरे आगेइ पांव धरोरी ॥
छबीलिन रंग रंगोरी ॥ ११ ॥
आलस में कछु काम न चलिहै सब कछु तो बिनसोरी ।
किन गयो धन बल राज पाट सब कोरो नाम बचोरी ॥
तऊ नहिं सुरत करोरी ॥ १२ ॥
कोकिल एहि विधि बहु बकि हारौ काहू नाहिं सुनी री ।
मेटो सकल कुमेटी थोथी पोथी पढ़त मरोरी ॥
काज नहिं तनिक सरो री ॥ १३ ॥

चालिस दिन इमि खेलत बीते खेल नहीं निपटो री ।
भयो पङ्क अति रङ्ग को तामै गज को जूथ फंसोरी ।
न कोउ विधि निकसो सकोरी ॥ १४ ॥

खेलत खेलत पूनम आई भारी खेल मचोरी ।
चलत कुमकुमा रंग पिचकारी अरु गुलाल की झोरी ।
बजत डफ राग जसोरी ॥ १५ ॥

होरी सब ठांवन लै राखो पूजत लै लै रोरी ।
घर के काठ डारि सब दीने गावत गीतन गोरी ॥
झूमका झूमि रहो री ॥ १६ ॥

तेज बुद्धि बल धन अरु साहस उद्यम सूर पनो री ।
होरी में सब स्वाहा कीनो पूजन होत भलो री ॥
करत फेरी तब कोरी ॥ १७ ॥

फिर धुरहरी भई दूसरे दिन जब अगिन बुझोरी ।
सब कछु जरि गयो होरी में तब धुरहि धूर बचो री ॥
नाम जसघण्ट परोरी ॥ १८ ॥

फूक्यौं सब कछु भारत नै कछु हाथ न हाय रहो री ।
तब रोअन मिस चैती गाई भली भई यह होरी ।
भलो तेहवार भयोरी ॥ १९ ॥

(रोती हुई भारतजननी की ठोढ़ी पर हाथ रख कर)

[राग चैती]

अब हम जात हो परदेसवां कठिन फिर होइ हैं मिलनवां हो राम । अरे सुखहू न कोई बोले कोई न आदर देय मोरे रामा । अरे सपनेहु न मोर पियरवा रे भुजभर मोहि लेय ॥ अरे अबहू न सोचत लोगवा मति सब गई बौराय हो रामा । हमरे बिन जरि जरि मरिहैं करि करि कै हाय ॥ हम रूसि चली परदेसवां फिर नहिं आवन होय हो राम । अरे बिन आदर तनिको पाए जात बिदेस हम रोय ॥

[रोते रोते हाथ की तलवार को दो टुकड़े तोड़कर भारत दुर्गा जाती

[भारत लक्ष्मी आती है] [हरी चन्द्रजोत छूटैं]

[सोरठ गाकर]

भा० ल० ।—मलिन मुख भारत माता तेरो ।

वारि भारत दिन रैन नैन सो लखि दुख होत घनेरो ।
तुव सुख ससि देखत मन जलनिधिबाढ़त रह्यो चहुं फेरो ।
सोइ सुख आशु बिलोवात दुख सों फट्यो जात हिय मेरो ॥

मलार ।

लखौ किन भारत बासिन की गति ।
मदिरा मत्त भए से सोअत ह्वै अचेत तजि सब मति ।
घन गरजै जल बरसै इन पर बिपति परै किन आई ॥
ये वजमारे तनिक न चौंकत ऐसो जड़ता छाई ।
भयो घोर अन्धियार चहूंदिसो ता लहं बदन छिपाए ॥
निरलज परे खोइ आपुनपौ जागतहू न जगाए ॥
कहा करैं इत रहि कै अब जिय तासों यहै बिचारा ।
छोड़ि मूढ़ इन कहे अचेत हम जात जलधि के पारा ।

(अन्त का तुक गाते गाते और रोते रोते भारत लक्ष्मी का प्रस्थान)

भारत माता ।—(आंखें खोल कर) हाय क्या हुआ ? क्या लक्ष्मी अन्तर्ध्यान हो गई ? हा ! मैं ऐसी पापिनी हूं कि नैनों के सामने पर भी उसे आंख भर न देखा, भली भांति उसे पहिचान भी न सकी (चिन्ता से) नहीं नहीं अन्तर्ध्यान नहीं हुई, अभी तो हमको बहुत कुछ कह रही थी बहुत उर-हना देती थी और बहुत प्रबोध करती थी फिर क्यों कुछ कहते कहते और रोते रोते दूर चली गई ? क्या कहा ! (सोच के) "जाउं जलधि के पारा" हाय (रोने लगी) फिर हमारी और हमारे सन्तति की लक्ष्मी बिना क्या गति होगी ? (सोच से) तो क्या इन लड़कों को जगा दें ? क्या सब वृत्तान्त इन से कह दें ? नहीं जगाने का काम नहीं ये सब चिरकाल से गाढ़ निद्रा में सो रहे हैं, इन्हें सोनेही दें (सोच कर) नहीं नहीं भला यह कुछ सोते थोड़ेही हैं इन्हें तो अज्ञानान्धकार में पड़ने के कारण दिग्भ्रम होरहा है और इसी हेतु नेत्र निमीलित कर इस दशा में पड़े हैं। हाय ! मेरे बेटे अन्न जल न मिलने के कारण पिपासाकुलित सर्प की भांति बराबर दीर्घ श्वास ले रहे हैं। हाय मैं कैसी पापिनी, क्रूरकर्मा, नृशंस हृदया हूं कि अपने सन्तति की ऐसी दशा देख कर भी जीती हूं। हा बिधाता ! मेरे प्राण शतधा हो कर अभी क्यों नहीं विदीर्ण हो जाते, माता का हृदय [illegible] । जान पड़ता है कि अभी